महेंदुलाल गर्ग विज्ञान ग्रंथावली—४

धातु विज्ञान

लेखक

डा० दयास्वरूप

पी-एच० डी०, एम० आइ० एम०, एम० आई० एंड एस० आई०, नुफील्ड फेलो

अध्यक्ष

खनन एवं धातु विज्ञान महाविद्यालय

काशी हिंदू विश्वविद्यालय



प्रकाशक

नागरीप्रचारिणी सभा

काशी

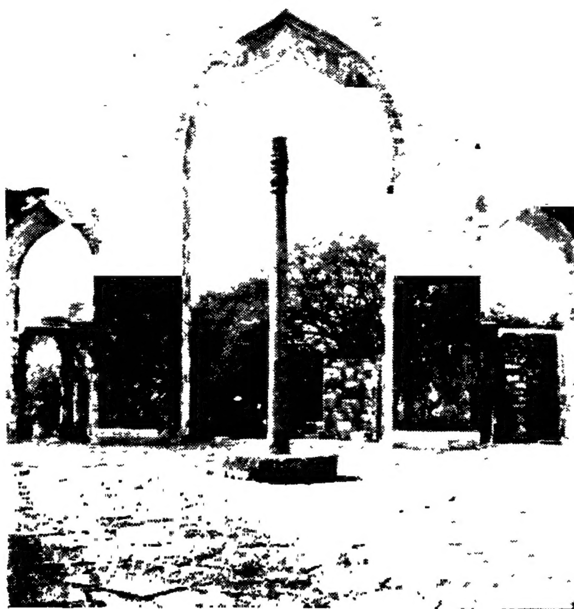
संवत् २००८

प्रथम संस्करण
२००० प्रतियाँ

मूल्य ६)

मुद्रक—वासुदेव

आर्यभूषण प्रेस, ब्रह्माघाट, बनारस।



दिल्ली का लौह स्तम्भ

कुतुब मीनार के पास स्थित यह लौह स्तम्भ कई शताब्दियों पूर्व निर्मित हुआ था। वर्षा, तूफान आदि प्राकृतिक विध्वंसकों के निरन्तर आक्रमण के बावजूद इस पर न तो मोर्चा लगा है और न कहीं धब्बा पड़ा है। वर्तमान शताब्दी में लौह उद्योग ने अत्यधिक उन्नति की है पर कुछ समय पूर्व तक संसार के धातु वैज्ञानिक इतने उत्तम कोटि का लोहा नहीं बना सके थे। दिल्ली का लौह स्तम्भ प्राचीन भारतीय धातु वैज्ञानिकों की श्रेष्ठता का गौरवशाली स्मारक है।

ग्रंथावली का परिचय

स्वर्गीय श्री महेंदुलालजी गर्ग, जिनकी पुण्य-स्मृति में यह ग्रंथावली प्रकाशित हो रही है, हिंदी के उन इनेगिने उत्साही और प्रतिष्ठित सेवियों में थे जिन्होंने प्रारंभिक दिनों में उत्तमोत्तम ग्रंथों का प्रणयन कर स्वयं उसका भंडार भरा तथा जिनकी प्रेरणा और उत्साहवर्धन से अनेक नवीन लेखक हिंदी सेवा की ओर अग्रसर हुए। उनके सुयोग्य पुत्र उत्तर प्रदेश के कृषि विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर श्री प्यारेलाल गर्ग ने सभा को इस अनुष्ठान के लिये १०००) प्रदान किए हैं। इससे हिंदी में विज्ञान विषयक उत्तमोत्तम ग्रंथ प्रकाशित किए जायँगे। पुस्तकों की बिक्री से जो आय होगी वह भी ग्रंथावली की अभिवृद्धि और संपुष्टि में व्यय की जायगी और इस प्रकार यह योजना दिवंगतात्मा का चिरस्थायी स्मारक बनी रहेगी।

प्रस्तावना

धातु विज्ञान विषय पर राष्ट्रभाषा में लिखी गई प्रथम पुस्तक आपके हाथ में है। यह विज्ञान के चरमोत्कर्ष एवं उद्योग धंधों की उन्नति का युग है। प्रगतिशील विदेशी भाषाओं में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक विषयों पर सहस्रों ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। नित्य नई नई पुस्तकें निकल रही हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि इस क्षेत्र में हिंदी में केवल इनी-गिनी पुस्तकें हैं।

धातु विज्ञान का विषय महत्वपूर्ण है। भारत-भूमि में बहुतेरी धातुओं के खनिज विद्यमान हैं। उनका निष्कर्षण एवं शोधन भी हो रहा है। खनन एवं शोधन के लिये आवश्यक इंजीनियरों का निर्माण भी गत २५ वर्षों से काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हो रहा है परंतु धातुओं के संबंध में जन-साधारण का ज्ञान अत्यंत सीमित है। इसका प्रधान कारण है राष्ट्रभाषा तथा प्रादेशिक भाषाओं में तत्संबंधी पुस्तकों का अभाव। प्रस्तुत पुस्तक राष्ट्रभाषा में इस कमी की पूर्ति का प्रथम प्रयास है।

इस पुस्तक का लेखन आरंभ होने के पूर्व दो समस्याएँ सामने आईं—एक विषय के चुनाव के संबंध में तथा दूसरी भाषा के संबंध में। एक और समस्या उठी कि पुस्तक किस प्रकार के लोगों के लिये लिखी जाय—विद्यार्थियों के लिये पाठ्य-पुस्तक के रूप में अथवा जन-साधारण के लिये। हिंदी में इन दोनों में से किसी वर्ग के लिये धातु विज्ञान पर कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है। अतः यही उचित प्रतीत हुआ कि प्रस्तुत पुस्तक पाठ्य-पुस्तक का काम दे पर साथ ही यह जन-साधारण के लिये भी उपयोगी हो।

धातु विज्ञान की उच्च शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय के 'कालेज आफ माइनिंग एंड मेटलर्जी' में दी जाती है। कुछ समय से बंगलोर, कलकत्ता आदि स्थानों में भी धातु विज्ञान की शिक्षा का प्रबंध हुआ है। विभिन्न इंजीनियरिंग कालेजों में भी यह विषय पढ़ाया जाता है। इन विद्यालयों में

इंटरमीजिएट (साइंस) पास विद्यार्थी प्रथम वर्ष में भरती किए जाते हैं। इनके मान और आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक रची गई है।

पुस्तक की भाषा के संबंध में दो शब्द निवेदन कर देना आवश्यक है। भाषा सरल रखी गई है। उर्दू और अंग्रेजी के चालू शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग हुआ है। पाठकों को किसी-किसी स्थल पर विशेषतः लिंग और वचन के प्रयोग में अंग्रेजी के प्रभाव की झलक दिखाई दे सकती है। अपने मंतव्य को सुस्पष्ट करने के लिये कई स्थलों पर जान-बूझकर क्रियापदों को एकवचन न रखकर बहुवचन कर दिया गया है। हिंदी में संज्ञा या विशेषण के बाद 'करना' शब्द जोड़कर क्रिया बनाने का प्रचलन है। इससे क्रिया में दो शब्द हो जाते हैं। भाषा संक्षिप्त नहीं रह जाती। आवश्यकता इस बात की है कि संज्ञा या विशेषण में ही किंचित परिवर्तन कर उसे क्रिया का रूप दे दिया जाय। 'शोधन', 'गरम', 'ठंढा' आदि से शोधना, गरमाना, ठंढाना आदि क्रियाएँ बनाई जानी चाहिए। इच्छा रहते हुए भी प्रस्तुत पुस्तक में इस प्रकार की संक्षिप्त क्रियाओं के प्रयोग करने का साहस नहीं हुआ। वैज्ञानिक पुस्तकों के लिये इस प्रकार की सुविधा प्राप्त होना आवश्यक है। आशा है कि हिंदी के कुछ प्रतिष्ठित और साहसी लेखक इस दिशा में दूसरों का पथ प्रदर्शन करेंगे।

राष्ट्रभाषा में पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का कार्य तेजी से चल रहा है। भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, गणित, ज्योतिष आदि विषयों में पहिले ही बहुत से शब्द विभिन्न संस्थाओं तथा व्यक्तियों द्वारा रचे जा चुके हैं। परंतु धातु विज्ञान सम्बन्धी शब्दावली का अभाव है। इस पुस्तक में संकलित एवं स्वनिर्मित पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। संभव है कि ये शब्द पूर्णरूपेण उपयुक्त न हों, अतः हिंदी शब्दों के साथ-साथ यथास्थान अंग्रेजी के शब्द भी कोष्ठक में लिख दिए गए हैं। कहीं-कहीं अंग्रेजी के बहु-प्रचलित शब्द (जैसे टेबुल, पिग, इंगट, ब्लास्ट आदि) ज्यों के त्यों रहने दिए गए हैं।

सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० रघुवीर जी ने हाल ही में अनेक विषयों के पारिभाषिक शब्द रचे हैं। उन्होंने रासायनिक तत्त्वों के संकेत भी बनाए हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनके कई पारिभाषिक शब्दों को सहर्ष ग्रहण किया गया है। उनकी शब्दावली अत्यंत उपयोगी होते हुए भी अभी तक सर्वमान्य नहीं हुई है। अतः इस पुस्तक में रासायनिक तत्त्वों के संकेत तथा बहुत से पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी के ही रहने दिए गए हैं। आशा है कि शीघ्र ही हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाओं के विद्वान् मिलकर राष्ट्रभाषा में सर्वमान्य शब्दावली का निर्माण कर लेंगे। तब इस पुस्तक के दूसरे संस्करण में प्रामाणिक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जायगा।

अपने सहयोगी प्रोफेसर हीरालाल जी गुप्त से मुझे बहुत सहायता मिली है। मैं उनका कृतज्ञ हूँ। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के सुझाव पर इस पुस्तक का लेखन आरंभ हुआ। वही इसका प्रकाशन भी कर रही है। मैं सभा का आभारी हूँ। जिन पुस्तकों से चित्र लिए गए हैं उनके लेखक और प्रकाशक धन्यवाद-के पात्र हैं।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
ज्येष्ठ, २००८ } दयास्वरूप

विषय-सूची

—०—



स्वर्गीय जमशेदजी नसरवानजी टाटा

प्राचीन भारत में धातु विज्ञान ने अत्यधिक उन्नति की थी। पर बाद में धीरे धीरे इस विज्ञान का ह्रास होता गया और भारत का स्थान धातु उद्योग में नगण्य-सा हो गया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रसिद्ध उद्योगपति स्वर्गीय जमशेदजी नसरवानजी टाटा ने टाटा लोहा और इस्पात कंपनी की नींव डाली। इस कम्पनी की स्थापना से भारत में आधुनिक लौह उद्योग की स्थापना हुई। भारतीय उद्योग धन्धे के इतिहास में स्वर्गीय जे० एन० टाटा का नाम अमर हो गया है।

अध्याय १

धातुएँ और उनका महत्त्व

मानव-सभ्यता के इतिहास में धातुओं का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। पाषाण-युग के पश्चात् धातु-युग का आरंभ हुआ। अस्त्र-शस्त्र यंत्र और वस्तु-विनिमय के माध्यम के रूप में धातुएँ अधिकाधिक लोकप्रिय बनती गईं और आज धातुएँ हमारी सभ्यता का आधार बन गई हैं। सुई से लेकर भीमकाय एंजिन और जहाज, लुहार की छेनी से लेकर बड़े बड़े स्वयं-संचालित यंत्र, कील से लेकर बड़े बड़े पुल, सब के सब, किसी न किसी धातु के बने हैं। व्यवसाय, शिल्प, शल्य, आवागमन, निवास, विद्युत् और रेडियो सभी क्षेत्रों में धातु की महिमा प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

मानव जीवन के अस्तित्व के लिये धातुएँ भले ही अनिवार्य न हों, वास्तव में आदि मानव बहुत काल तक बिना धातुओं के व्यवहार के जीवित रहे—पर वर्तमान युग के सभ्य जीवन के लिये वे अत्यंत आवश्यक बन गई हैं। आजकल किसी भी राष्ट्र की शक्ति और प्रगति उसकी धातु उत्पादन की क्षमता के द्वारा नापी जाती है। कृषि के पश्चात् धातुओं का उत्पादन ही संसार का सबसे बड़ा व्यवसाय है।

हमारा भारतवर्ष प्राचीन काल से ही धातु के उत्पादन और सदुपयोग में अग्रणी रहा है। मोहेन-जो-दारो (सिंध) की खुदाई में निकली ७००० वर्ष पुरानी वस्तुएँ तथा दिल्ली का लौह स्तंभ इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हमारी खनिजात्मक संपत्ति विशाल है। हमारे देश में प्रायः सभी धातुएँ न्यूनाधिक परिमाण में पाई जाती हैं। हमारी लोहे की खानें दुनिया की श्रेष्ठतम और सबसे बड़ी खानों में से हैं। अनुमानतः १०,०००,०००,००० टन लोहे की खनिज यहाँ की भूमि में विद्यमान है। अलुमीनियम और मैंगेनीज आदि धातुएँ भी पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। खनिजात्मक संपत्ति विशाल होते हुए भी दुर्भाग्यवश यहाँ धातुओं का उत्पादन इस समय नितांत अपर्याप्त है।

प्रमुख धातुओं में लोहा और इस्पात का स्थान सर्वोपरि है। संसार में प्रति वर्ष १५ करोड़ टन लोहा और इस्पात, २५ लाख टन ताँबा, २० लाख टन

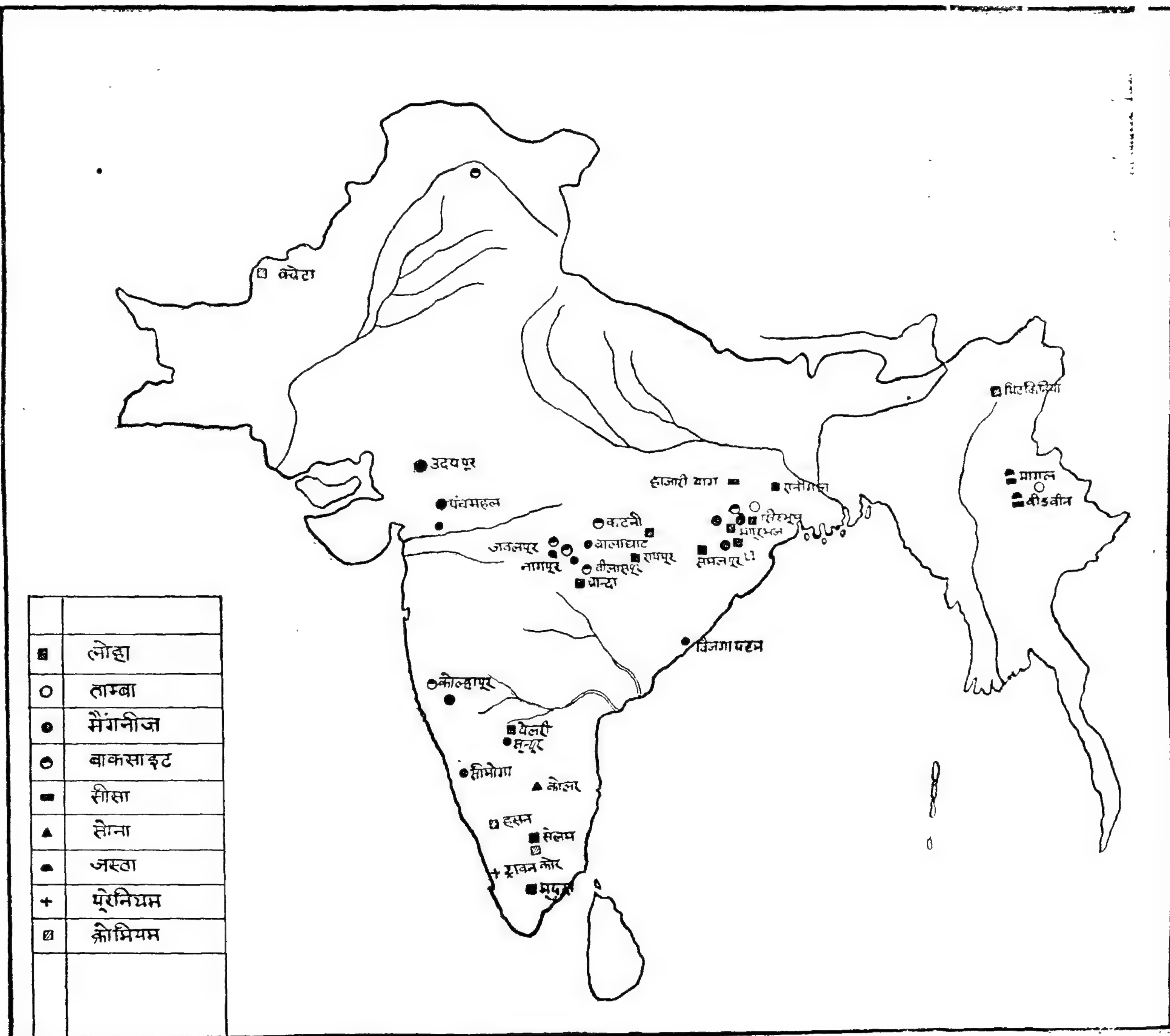
जस्ता, २० लाख टन सीसा और १० लाख टन अलुमीनियम बनता है। अन्य धातुएँ कम परिमाण में मिलती हैं।

लोहा और इस्पात (Iron and Steel)—

लोहा संसार की सबसे प्रमुख धातु है। आधुनिक सभ्यता का समूचा ढाँचा इसी पर खड़ा है। सुलभ गुणों से पूर्ण अन्य कोई धातु इतने अधिक परिमाण में और इतनी सस्ती नहीं होती। लोहे में अत्यधिक भौतिक और यांत्रिक (Mechanical) गुण विद्यमान हैं। अतः घरेलू और औद्योगिक क्षेत्रों में इसके असंख्य उपयोग होते हैं। दूसरी धातुओं के संबंध में यह बात लागू नहीं होती। लोहे में सर्वाधिक चुंबकत्व होता है और विद्युत का संपूर्ण यंत्र-विज्ञान (Electrical Engineering) इसी चुंबकत्व पर आधारित है। लोहे और इस्पात की कठोरता इच्छानुसार एक सीमा तक घटाई बढ़ाई जा सकती है। वर्तमान युग के आश्चर्यजनक अन्वेषण और सफलताएँ पूर्णतः लोहे और इस्पात के उपयोग पर निर्भर हैं। जहाज, पुल, रेलवे, यातायात के इंजिन, विद्युत् केंद्र तथा नाना भाँति के यंत्र, लोहा और इस्पात के महत्त्व के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। इनकी गणना से हमारी जीवन-चर्या में लोहे और इस्पात का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है इसका थोड़ा अनुमान लगाया जा सकता है। वास्तव में प्रतिदिन के व्यवहार में आनेवाली शायद ही ऐसी कोई वस्तु हो जो इस धातु से या इसकी सहायता से न बनाई गई हो।

लोहे और कोयले की प्रचुर परिमाण में उत्पत्ति के बिना कोई भी देश औद्योगिक क्षेत्र में प्रमुख स्थान नहीं पा सकता ; यदि पा भी जाय तो उसे स्थायी नहीं रख सकता। इंग्लैंड की औद्योगिक और समुद्री प्रभुता उसके लोहे और कोयले की अपार राशि पर ही आधारित रही है। इस्पात के व्यवसाय में पहले संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, पश्चात् जर्मनी, उससे आगे बढ़ गए। जर्मन-भूमि में अधिक परिमाण में लोहा नहीं है। फलतः उसकी दृष्टि लोरेन पर गई और जर्मनी ने उसको सन् १८७० में फ्रांस से लड़कर जीत लिया। लेकिन फ्रांस लोरेन को कैसे छोड़ देता ? प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर लोरेन पुनः उसके अधिकार में आ गया। जापान की भूमि में भी अधिक लोहा नहीं है अतः उसने चीन से लड़कर कोरिया हड़प कर लिया और वहाँ लोहे और इस्पात का अत्यधिक उत्पादन करने लगा।

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका विश्व के लोहे के उत्पादन का लगभग ४० प्रतिशत उत्पादन करता है। उसकी खनिजात्मक संपत्ति भी असीम है। अमेरिका



धातु-खनिजों के उत्पत्ति-केंद्र

के पश्चात् (और द्वितीय महायुद्ध तक) दूसरा स्थान जर्मनी का था। वह १५ प्रतिशत उत्पन्न करता था। अपने देश की लोहे और इस्पात की कतरन, टुकड़ैल इत्यादि (Scrap) तथा सीमा पार से मँगाई हुई खनिज (Ore) से वह इतना माल तैयार करता था। रूस भी लगभग जर्मनी के बराबर उत्पादन करता है। उसके बाद इंग्लैंड, फ्रांस और जापान का स्थान है। भारतवर्ष संसार के लोहे और इस्पात का केवल एक प्रतिशत भाग उत्पन्न करता है।

पहले भारत की ऐसी हीन दशा नहीं थी। दो सहस्र वर्ष पूर्व भारत इस उद्योग में अग्रणी था। यहाँ संसार का श्रेष्ठतम इस्पात तैयार होता था। दिल्ली के समीप स्थित लौह-स्तंभ इसका प्रमाण है। दमिश्क (Damascus) की प्रसिद्ध तलवारें यहीं के इस्पात से बनती थीं। धीरे धीरे यहाँ के उद्योग का ह्रास होता गया और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से बड़े पैमाने पर लौह-उत्पादन के क्षेत्र में भारत नगण्य-सा हो गया। टाटा कंपनी तथा स्टील कार्पोरेशन ऑफ बंगाल की स्थापना से अब पुनः इस दिशा में उत्थान होने लगा है और शीघ्र ही टाटा कंपनी की बराबरी के दो और कारखाने खुलनेवाले हैं। आर्थिक दृष्टि से भारत के लौह उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है।

ताँबा (Copper)

लौहज पदार्थों के बाद ताँबे का स्थान आता है। सोने को छोड़कर यही एक मात्र रंगीन धातु है। ताँबा और ताँबे से बने धातु-संकरों का उपयोग विभिन्न रूपों में किया जाता है। शायद ही ऐसा कोई उद्योग हो जिसमें किसी न किसी रूप में ताँबा-मिश्रित धातुओं का उपयोग न होता हो। चाँदी को छोड़कर यही विद्युत् का सर्वोत्तम संचालक है। संसार में उत्पन्न होनेवाले कुल ताँबे का आधे से अधिक भाग विद्युत् उद्योग में खर्च होता है। ताँबा अधिकांशतः तार, छड़ें और पत्तियाँ बनाने के काम में आता है। ताँबे से बने धातुसंकर भी इस काम में आते हैं। पीतल ताँबे से ही बनता है।

सामान्य इंजीनियरिंग, रेलवे यातायात के यंत्र (automobiles) और जहाज बनाने के काम में तथा नलियों, तारों, छड़ों, पत्रों और चद्दरों के रूप में ताँबे का उपयोग प्रचुर परिमाण में किया जाता है। गत कुछ वर्षों में नए नए और उच्च गुणों से पूर्ण ताँबे के धातुसंकरों के निर्माण में पर्याप्त प्रगति हुई है। तापोपचार (heat treatment) द्वारा इन संकर धातुओं

की कठोरता बहुत अधिक बढ़ाई जा सकती है। यह गुण अनुशीलनीय और महत्त्वपूर्ण है। ताँबे की कठोरता-वृद्धि निकट भूत तक लुप्त कला थी। किसी समय मिस्र देश के धातुविज्ञ इस कला को जानते थे। अब इसका पुनः अन्वेषण हुआ है और ताम्र-बेरीलियम का धातुसंकर इतना कठोर किया जाता है कि वह इस्पात को भी काट सकता है। यह धातुसंकर पत्थर से टकराने पर चिनगारी नहीं उत्पन्न करता, इसलिये इसके औजार गैसयुक्त खदानों और वायुयानों के काम में लाए जाते हैं।

ताँबे के दूसरे धातुसंकर जिनका औद्योगिक क्षेत्र में बहुत उपयोग होता है, ये हैं :—पीतल, काँसा, जर्मन सिल्वर, गन मेटल, डेल्टा मेटल, और घंटी बनाने की धातु, इत्यादि। ताँबा एक महत्त्वपूर्ण रण-सामग्री है, क्योंकि कारतूसें पीतल या ताम्र-निकल से बनती हैं और दोनों में ताँबा मौजूद रहता है। जिन युद्धरत राष्ट्रों के पास ताँबा नहीं होता उन्हें दूसरे देशों के आयात पर निर्भर रहना पड़ता है। विभिन्न देशों के ताँबे का वार्षिक उत्पादन और खपत निम्नलिखित सूची में दी गई है। भारतवर्ष प्रति वर्ष ७००० टन ताँबा उत्पन्न करता है और उसकी खपत उत्पादन से चौगुनी है।

संसार में ताँबे का उत्पादन

देश	सन् १९४१	सन् १९४३	सन् १९४५
सं० रा० अमेरिका	९५८००० टन	१०९१००० टन	७७५००० टन
चिली	५१३००० ,,	५६०००० ,,	अज्ञात
कनाडा	३२१००० ,,	२८८००० ,,	,,
उत्तरी रोडेशिया	२७०००० ,,	२७६००० ,,	,,
बेल्जियन कांगो	१७९००० ,,	१७३००० ,,	,,
समस्त संसार	२०९०००० ,,	३०६०००० ,,	२४००००० ,,

अलुमीनियम (Aluminium)

यह धातु-परिवार का सबसे छोटा शिशु है। गत अर्धशताब्दी में इस धातु ने अत्यधिक व्यापारिक महत्त्व प्राप्त कर लिया है। इसकी लोकप्रियता का कारण इसके स्वाभाविक गुण हैं जिनके कारण यह विविध औद्योगिक कामों में लाया जाता है। विद्युत् प्रक्रिया (reduction by electrolysis) द्वारा शुद्ध रूप में प्राप्त होकर यह आसानी से ढाला जा सकता है, गढ़ा जा सकता है और अन्य धातुओं के साथ मिश्रित किया जा सकता है। अलौहिक (non-ferrous) धातुओं में इसका विशिष्ट स्थान है। अपने गुणों के कारण यह अधिकाधिक लोकप्रिय होता जा रहा है।

अलुमीनियम बहुत हल्की धातु है तथापि इसमें बहुत दृढ़ धातुसंकर बनाने की क्षमता होती है। 'वाई' धातुसंकर (Y-alloy) ड्यूरैलुमिन, हिंडुमीनियम और आर० आर० श्रेणी के धातुसंकरों ने यांत्रिक जगत में क्रांति मचा दी है। दृढ़ता और भार के अनुपात में ये धातुसंकर कई प्रकार के इस्पातों से भी उत्तम होते हैं। वायुयानों के निर्माण में मजबूती और हल्कापन प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। आधुनिक युग में युद्ध और द्रुत यातायात के लिये वायुयानों का महत्त्व बहुत बढ़ गया है अतः प्रत्येक देश प्रचुर परिमाण में अलुमीनियम उपलब्ध करना चाहता है।

जिन महत्त्वपूर्ण उद्योगों में अलुमीनियम की आवश्यकता पड़ती है उनमें से कुछ ये हैं :—

वायुयान, मोटरें, इमारतें, रासायनिक उद्योग, बर्तन, दुग्धशाला, खाद्य, फर्नीचर, घरेलू चीजें, विद्युत् यंत्र, पेंट, मुद्रण, रेडियो, रेल, रबर, आतिशबाजी के सामान और इस्पात। उपयोगों की विभिन्नता की दृष्टि से अलुमीनियम या इसके धातुसंकर अन्य धातुओं से बाजी मार ले जाते हैं। इनके द्वारा वरक (foil) से लेकर दीर्घकाय इमारती अवयव (structural components) तक बनते हैं।

सब दृष्टियों से विचार करने पर अलुमीनियम उद्योग स्वस्थ और उन्नतिशील दशा में है। इसके पूर्ण विस्तार की काफी गुंजाइश है। अभी तो हम सबने विविध उपयोगिताओं और क्षमताओं से पूर्ण इस महिमामयी धातु की उँगली भर पकड़ पाई है।

पृथ्वी के धरातल (Crust) में सिलिकन को छोड़कर अलुमीनियम

ही सबसे अधिक परिमाण में मौजूद है। किंतु स्वतंत्र धातु के रूप में यह कुछ ही समय से व्यवहार में आया है।

पृथ्वी के धरातल का रासायनिक संगठन			पृथ्वी के धरातल में तत्त्वों के प्रतिशत		
SiO_2	...	६० प्रतिशत	आक्सीजन	...	४६.६ प्रतिशत
Al_2O_3	...	१५ ,,	सिलिकन	...	२७.७ ,,
Fe_2O_3, FeO	...	६ ,,	अलुमीनियम	...	८.१ ,,
MgO	...	४ ,,	लोहा	...	५.० ,,
CaO	...	५ ,,	कैलशियम	...	३.६ ,,
Na_2O, K_2O	...	६ ,,	सोडियम	...	२.८ ,,
विभिन्न	...	४ ,,	पोटैशियम	...	२.६ ,,
			मैगनीशियम	...	२.१ ,,
			अन्य	...	१.५ ,,

सन् १८५२ तक अलुमीनियम की गणना भी विरली धातु (Rare metals) में की जाती थी और इसका मूल्य बहुत अधिक था। फ्रांस के सम्राट् तृतीय नैपोलियन ने अपने लिये अलुमीनियम के चंमच बनवाए थे जिनको वह शाही भोजोत्सवों के अवसर पर इस्तेमाल करता था। सन् १८८० में दुनिया भर में कुल मिलाकर केवल सत्तर पौंड अलुमीनियम उत्पन्न किया गया था। सन् १८८५ में तेरह टन, सन् १९२६ में २००,००० टन तथा सन् १९३७ में, ५००,००० टन अलुमीनियम संसार में उत्पन्न किया गया और आज भोजन पकाने के बर्तन तक इस धातु से बनाए जाते हैं। गत २५ वर्षों में यह उपेक्षित धातु के पद से उठकर आज प्रधान अलौहिक धातुओं की पंक्ति में आ बैठा है।

संसार में अलुमीनियम का उत्पादन

देश	सन् १६४१	सन् १६४३	सन् १६४५
सं० रा० अमेरिका	३०९०००	९२००००	५०००००
कनाडा	२१२०००	४६३०००	२१५०००
जर्मनी	२६४०००	३४२०००	अज्ञात
जापान	७२०००	१२१०००	,,
रूस	६८०००	७२०००	,,
भारत	...	...	४५००
संसार भर में	११३००००	२१७६०००	११०००००

भारत में मध्यप्रांत, बंबई, बिहार और काश्मीर में बाक्साइट (अलुमीनियम का खनिज) की बहुत सी खाने हैं। विद्युत् शक्ति और दूसरे कच्चे माल भी सहज प्राप्य हैं। परंतु भारत में अधिक माल तैयार नहीं होता। सन् १६२६ और १९३९ के बीच भारत में अलुमीनियम की खपत तीन गुनी हो गई है। विदेशों से अलुमीनियम पट्टियों या सिल के रूप में ही नहीं बल्कि अर्धनिर्मित दशा में चद्दरों, पत्तियों, वरकों या चंदों (circles) के रूप में भी आता है। इन्हें मद्रास, बंबई, कलकत्ता, बनारस, रंगून, गुजरानवाला और अमृतसर स्थित करीब एक दर्जन कारखाने खरीद लेते हैं और इनसे बर्तन बनाते हैं। इंग्लैंड, कनाडा, और अमेरिका युद्ध के पूर्व लगभग ५० लाख रुपए का माल भारत भेजते थे।

भारत की अलुमीनियम की बढ़ती हुई माँग को देखते हुए गत कई वर्षों से यहीं अलुमीनियम उत्पन्न करने के लिये कारखाना खोलने का विचार हो रहा था। सन् १९४० में एक करोड़ रुपए की पूँजी से आसनसोल के पास एक कारखाना खोला गया। दूसरा आल्वे (ट्रावनकोर) में। राँची और बिलासपुर के पास भी कारखाने खोलने की योजनाएँ बनी हैं।

शुद्ध अलुमीनियम में अधिक दृढ़ता नहीं होती। जहाँ हल्केपन के साथ

साथ मजबूती की भी अपेक्षा होती है वहाँ अलुमीनियम के धातुसंकर काम में लाए जाते हैं। ताँबा, सिलिकन, मैगनीशियम, मैंगेनीज और निकल के मेल से अलुमीनियम के तरह तरह के धातुसंकर बनते हैं। मोटरकार और वायुयान के हल्के अवयव इन्हीं से बनाए जाते हैं। ये शुद्ध अलुमीनियम की अपेक्षा चार पाँच गुने दृढ़ होते हैं। इनकी कठोरता अधिक होती है और ये संघात (आकस्मिक धक्के) सरलता से सम्हाल सकते हैं। रासायनिक पदार्थों या गैसों का इनकी सतह पर कम प्रभाव पड़ता है। इनका सबसे आश्चर्य-जनक गुण यह है कि ये तापोचार के बाद समय बीतने के साथ (एक सीमा तक) दृढ़तर होते जाते हैं। ड्यूरेलुमिन, हिडुमीनियम, वाई-धातुसंकर तथा आर० आर० श्रेणी के धातुसंकर इसी कोटि के हैं। अलुमीनियम की चद्दरों से दबाव (pressing) या चक्का (spinning) द्वारा बने बर्तनों से गरीबों को बड़ी सुविधा होती है। अलुमीनियम की पन्नी तंबाकू, चाय इत्यादि लपेटने के काम में आती है। इसके तार विद्युत् उद्योग में ताँबे के तारों की जगह ले रहे हैं। इसका चूर्ण लोहे या लकड़ी पर पेंट करने के काम आता है। वायु-यान, जहाज, मोटर और रेल के उद्योगों में इसकी माँग दिनों दिन बढ़ती जा रही है। कुछ दिनों से कहीं कहीं रेलवे के डब्बे अलुमीनियम के बनाए जा रहे हैं।

वास्तव में अब हम लौह-युग को पीछे छोड़कर अलुमीनियम युग में प्रवेश कर रहे हैं। प्रतिदिन इसके नए नए उपयोग निकलते आ रहे हैं। गत पचास वर्षों में ही इस उद्योग ने आशातीत प्रगति कर ली है। आगामी अर्धशताब्दी में अलुमीनियम तथा इसके धातुसंकर और भी अधिक तेजी से नए नए गुणों से विभूषित होंगे।

विविध उद्योगों में अलुमीनियम की खपत[1]

उद्योग	सन् १९४१	अनुमित युद्धोत्तर खपत
	प्रतिशत	प्रतिशत
यातायात (थल, जल, नभ)	५८	३४
यंत्र और विद्युत् प्रसाधन	६	१२

१. ये आँकड़े संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के संबंध में हैं।

विद्युत परिचालन	५	८
रसोई के बर्तन	१	१०
भवन निर्माण	३	९
फाउंड्री	१९	९
रासायनिक पदार्थ	५	५
खाद्य पदार्थों के डब्बे	...	५
लौहिक तथा अलौहिक धातु उद्योग	२	४
विविध	१	४

सीसा (Lead)

साधारण उपयोग में आनेवाली धातुओं में सीसा सबसे नरम होता है। यह नाखून से खरोंचा जा सकता है। कागज पर इससे लकीर खींचकर इसकी शुद्धता का स्थूल अनुमान किया जा सकता है। बाजार में दो प्रकार के सीसे मिलते हैं। (१) नरम सीसा और (२) कड़ा या एन्टीमनी मिश्रित सीसा। पहिला शुद्ध या रजतात्मक खनिजों को गलाकर प्राप्त किया जाता है और दूसरा एन्टीमनी मिश्रित खनिजों से। नरम सीसे से चद्दरें बनाई जाती हैं। श्वेत सीसा, प्यूटर धातु तथा धातुओं को जोड़नेवाले टाँके (Solder) में भी इसका उपयोग होता है। कड़े सीसे का अधिकांश भाग 'आँवन धातु' (bearing metal) तथा अन्य धातुसंकरों के बनाने के काम में आता है। सीसा एन्टीमनी और रांगा के साथ मिश्रित किया जाता है। टाइप धातु और प्यूटर इसी तरह के धातुसंकर हैं। यांत्रिक उद्योग में इनकी पर्याप्त खपत होती है।

विभिन्न देशों में सीसे का उत्पादन और विविध उद्योगों में इसकी खपत निम्नलिखित सूचियों में दी गई है।

संसार में सीसे का उत्पादन

देश	सन् १६४०	सन् १९४५
सं० रा० अमेरिका	४५७००० टन	३८८००० टन
मैक्सिको	२१६००० ,,	२३१००० ,,
आस्ट्रेलिया	२१४००० ,,	१४३००: ,,
कनाडा	२३६००० ,,	१७४००० ,,
समस्त संसार का उत्पादन	२०३००० ,,	

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में विविध उद्योगों में सीसे की खपत प्रतिशत

बैटरी	३०
तारों के वेष्ठन	११
आँवन धातु, टाइप धातु तथा सोल्डर	११
टिट्रा इथिल	८
इमारत	७
लिथार्ज	७
श्वेत सीसा	४
विभिन्न उपयोग	२२

सन् १९३५, ३६ में लगभग ६८००० टन सीसा, जिसका मूल्य करीब दो करोड़ होता है, बर्मा से दूसरे देशों को निर्यात किया गया।

भारतवर्ष में सीसे का उत्पादन केवल पाँच वर्ष से झरिया के समीप टुंडू नामक स्थान में आरंभ हुआ है। लगभग २००० टन सीसा प्रतिवर्ष बनता है।

जस्ता (Zinc)

प्राचीनकाल में इस धातु का व्यवहार मिश्रित रूप में होता था। स्वतन्त्र धातु के रूप में इसके उत्पादन और व्यवहार से लोग अपरिचित थे। पीतल

(जो ताँबा और जस्ता के मेल से बनता है) आभूषणों और मुद्राओं के रूप में काम में आता था। लोहे और इस्पात को जंग लगने से बचाने के लिये उनकी सतह पर इस धातु की पतली तह चढ़ा दी जाती है। इस रूप में जस्ते के अधिकांश भाग की खपत होती है। धातुसंकरों के निर्माणार्थ यह बहुमूल्य और महत्त्वपूर्ण धातु है।

इस धातु का उत्पादन सर्वप्रथम भारतवर्ष में ही हुआ था। उदयपुर राज्य के जावार नामक स्थान में जस्ते का खनिज सीसे के खनिज के साथ पाया जाता है। वहाँ से जस्ता पन्द्रहवीं शताब्दी में योरुप के अनेक देशों को भेजा जाता था। परंतु सत्रहवीं शताब्दी से यह उद्योग नष्ट-सा हो गया और आजकल भारत में जस्ते का कोई कारखाना नहीं है। जावार की जस्ते की खानों को फिर से काम में लाने के यत्न हो रहे हैं। भारत में प्रतिवर्ष ५०,००० टन तक जस्ते की खपत होती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जस्ते का सबसे बड़ा निर्माता और उपभोक्ता है। बर्मा और आस्ट्रेलिया में भी पर्याप्त जस्ता निकलता है और इन्हीं देशों से भारत जस्ता प्राप्त करता है।

बर्मा में जस्ता नहीं बनाया जाता, बल्कि कुछ हद तक शुद्ध करके खनिज योरोप ले जाते हैं। बर्मा में नामटू नामक स्थान पर जस्ते का खनिज निकाला जाता है। सन् १९३२ में ६४ हजार टन शोधित खनिज (मूल्य ९० लाख रुपये) बेलजियम भेजा गया था।

संसार के विभिन्न देशों में जस्ते का उत्पादन तथा विविध उद्योगों में होनेवाली इसकी खपत निम्नलिखित सूचियों में दी है।

विश्व में जस्ते का उत्पादन (१९४० में)

देश			
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका	...	...	६१३००० टन
कनाडा	...	...	१६८००० टन
पोलैंड	...	...	१२०००० टन
आस्ट्रेलिया	...	...	८५००० टन
इंग्लैंड	...	...	६०००० टन
जापान	...	...	५५००० टन
इटली	...	...	४०००० टन
मैक्सिको	...	...	३३००० टन
नार्वे	...	...	२०००० टन
समस्त विश्व का उत्पादन	...	...	१६४३००० टन

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में जस्ते की खपत (१९४५ में)

उद्योग	प्रतिशत
गैल्वेनाइजिंग (Galvanizing)	४०
पीतल के निर्माण में	२५·५
ठप्पा ढलाई (Die casting)	१५·२
बेला हुआ जस्ता	११ ५
अन्य उपयोग	३·१
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की खपत	८४६००० टन

राँगा (Tin)

राँगे का रंग कुछ पीलापन लिये हुए चाँदी के समान होता है। यह महँगी धातु है। राँगे का उपयोग अधिकतर इस्पात की चद्दरों पर इसकी पतली पर्त चढ़ाने में होता है। यह पर्त अत्यंत पतली, (एक इंच के हजारवें भाग के बराबर) कड़ी, श्वेत और चमकदार होती है। इससे न केवल चद्दर की सुंदरता बढ़ जाती है बल्कि जंग तथा अन्य हानिकारक प्रभावों से भी उसकी रक्षा होती है। ताँबा, सीसा, एन्टीमनी आदि धातुओं के साथ राँगे के धातुसंकर बनते हैं। फूल (काँसा) राँगे और ताँबे के मिश्रण से बनता है।

भारत-भूमि में राँगे का खनिज नहीं पाया जाता। पड़ोसी बर्मा में इसके खनिज का उत्पादन प्रचुरमात्रा में होता है। इस खनिज का शोधन कुछ अंश तक बर्मा में होता है, पर राँगे का उत्पादन बर्मा या भारत में नहीं होता बल्कि शोधित खनिज मलाया भेजा जाता है। वहाँ से राँगा बनकर बर्मा और भारत में आता है। दुनिया में मलाया राँगे का सबसे बड़ा उत्पादक है। भारत युद्ध के पूर्व २५०० टन और युद्धोपरांत अनुमानतः ६००० टन राँगा प्रतिवर्ष मँगाता रहा है। अधिकांश राँगा मलाया से आता है। वहाँ के राँगा, सीसा, जस्ता आदि उद्योगों की पूँजी और नियंत्रण गौरांगों के हाथ में है।

विभिन्न देशों में राँगे का उत्पादन और विविध उद्योगों में इसकी खपत की सूची नीचे दी है:—

विश्व में राँगे का उत्पादन १९३९ में		सं० रा० अमेरिका में राँगे की खपत १९४४ में	
देश	परिमाण	उद्योग	तिशत
बृटिशमलाया	८२००० टन	लोहे पर कलई	३९.९
डच इंडीज	२९००० टन	फूल, काँसा	२१.९
इंग्लैंड	३७००० टन	टाँका, सोल्डर	१४.६
चीन	११००० टन	बैबिट धातु	१३.१
		कलई	४.९
समस्त विश्व का उत्पादन	१७४००० टन	अन्य उपयोग	५.६
		कुल खपत	७२८००० टन

गिलट (Nickel)

आज कल जो रुपये चले हैं वे गिलट से बनते हैं। यह किंचित् कालिमा लिये हुए श्वेत रंग का होता है। इससे बहुत पतली चद्दरें और तार बनाए जा सकते हैं। वायुमंडल या खाद्य पदार्थों के प्रभाव से इसकी चमक अप्रभावित रहती है। इस गुण तथा सहज सुंदरता के कारण इसके द्वारा बर्तन और कलात्मक वस्तुएँ बनती हैं। चाँदी से बहुत सस्ता होने के कारण गरीब ग्रामीण स्त्रियाँ इससे बने आभूषण पहनती हैं। गिलट, ताँबा तथा जस्ता के मेल से जर्मन सिल्वर बनता है। द्रवणांक, चुम्बकत्व, दृढ़ता आदि गुणों में गिलट लोहे के तुल्य है। इसका उपयोग लोहे तथा अलौहिक धातुओं के धातुसंकर बनाने में होता है। बहुत से पदार्थों पर चाँदी-सी चमक लाने तथा जंग आदि से रक्षा करने के लिये विद्युत् द्वारा गिलट का पानी चढ़ाया जाता है। नाइक्रोम तार में गिलट रहता है। गिलट प्रधानतः कनाडा में पाया जाता है। भारतवर्ष में

गिलट का खनिज नहीं पाया जाता और उत्पादन बिलकुल नहीं होता। यह कनाडा से आयात होता है। हमारी वार्षिक आवश्यकता २००० टन है। इसका अधिकांश टकसाल और इस्पात के कारखानों में खप जाता है। विश्व में गिलट का वार्षिक उत्पादन १५६००० टन है।

सोना (Gold)

यह सुपरिचित पदार्थ प्राचीन काल से अपने आकर्षक रंग और गुणों के कारण धातुओं का राजा कहलाता आया है। पीले रंग की यही एकमात्र स्वतंत्र धातु है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सोना ही सर्वमान्य मुद्रा के रूप में स्वीकार किया जाता है।

सोना अत्यंत भारी और मुलायम होता है। सबसे पतले वरक और तार सोने के ही होते हैं। एक ग्रेन (डेढ़ रत्ती) सोना से डेढ़ मील लंबा तार या छः फुट लंबा और छः फुटचौड़ा वरक बनाया जा सकता है। पीतल या लोहे के ऊपर इसकी पतली तह बेल दी जाती है। इसे 'रोल्ड गोल्ड' के नाम से पुकारा जाता है। वास्तव में रोल्ड गोल्ड का अधिकांश भाग पीतल का होता है। केवल बाहरी सतह पर सोने की पतली तह होती है। सोने पर अम्लों का प्रभाव नहीं पड़ता।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से सोने का उत्पादन होना आया है। मैसूर में इसकी कई खदानें हैं। बहुत सी नदियों की बालुका में सोने के लघु कण पाये जाते हैं। इस समय मैसूर में करीब १०,००० फुट की गहराई से सोने का खनिज निकाला जा रहा है। युद्ध के पहलेय हाँ लगभग तीन करोड़ रुपये का सोना प्रतिवर्ष निकलता था। यहाँ सोने का उत्पादन विदेशी कम्पनियों के हाथ में है। सन् १९४३ में विश्व में ३०००००० फाइन आउन्स सोना उत्पन्न हुआ। जिसमें भारत ने १·२ प्रतिशत भाग उत्पन्न किया। सबसे अधिक सोना दक्षिण अफ्रिका में उत्पन्न होता है।

चाँदी (Silver)

चाँदी भी मूल्यवान और आकर्षक धातु है। यह भारी और कोमल होती है। चाँदी से बहुत पतले तार और वरक खींचे और बनाये जा सकते हैं। इस पर अम्लों का प्रभाव बहुत कम होता है और इसके बने बर्तन में रखे खाद्य पदार्थ खराब नहीं होते। यह विद्युत् की सर्वोत्तम परिचालिका है।

इसका उपयोग मुद्रा, गहनों, कलात्मक वस्तुओं तथा रासानिक पदार्थों में होता है। इसका नाइट्रेट नेत्र रोगों की प्रसिद्ध दवा है।

चाँदी अन्य धातुओं के साथ प्राकृतिक रूप में निकलती है पर चाँदी का अधिकांश भाग जस्ता और सीसा खनिजों के साथ प्राप्त होता है। भारतवर्ष में चाँदी का उत्पादन नहीं होता।

मैंगेनीज़ (Manganese)

यह सफेद रंग की धातु है। स्वतंत्र धातु के रूप में इसका उपयोग नहीं होता। इसकी खपत धातुसंकरों के निर्माण में होती है। मैंगेनीज मिश्रित इस्पात बहुत कड़ा होता है। पीतल और फूल के साथ भी यह मिश्रित किया जाता है। फेरो मैंगेनीज में करीब ८० प्रतिशत मैंगेनीज रहता है।

रूस के बाद भारत ही संसार का सबसे बड़ा मैंगेनीज का उत्पादक है। मध्यप्रांत, मद्रास और बिहार प्रांत में इसकी बहुत सी खानें हैं।

क्रोमियम (Chromium)

यह धातु इस्पात बनाने में बहुत काम आती है। क्रोमियम मिश्रित इस्पात बहुत कड़ा होता है। १२ प्रतिशत से अधिक क्रोमियम वाले इस्पात (Stainless steel) में दाग, मोर्चा और रासायनिक धब्बे नहीं लगते। गिलट के मुलम्मे पर विद्युत् द्वारा क्रोमियम का मुलम्मा चढ़ाया जाता है। यह बहुत चमकीला, कड़ा और टिकाउ होता है। सायकिल के हेंडिल पर क्रोमियम का मुलम्मा रहता है। गिलट और क्रोमियम के मेल से नाइक्रोम (८० प्रतिशत गिलट और २० प्रतिशत क्रोमियम) बनता है। इसके तार विद्युत प्रतिरोधक होते हैं इसलिए बिजली की भट्टियों में इस तार का बहुलता से उपयोग होता है। बिजली के 'हीटर' का तार नाइक्रोम का ही होता है।

भारतवर्ष में मैसूर और बिहार में क्रोमियम का खनिज मिलता है।

टंग्स्टन (Tungsten)

यह आधुनिक धातु है और इस्पात में इसका मेल दिया जाता है। टंगस्टन मिश्रित इस्पात बहुत कड़ा होता है और उच्च तापमान पर भी अपनी कठोरता और सान कायम रखता है। 'हाई स्पीड स्टील' ('हवाई इस्पात') में १८ प्रतिशत टंगस्टन रहता है। यह तेज चाल वाले खराद पर लोहा काटने के काम में लाया जाता है। टंगस्टन अत्यधिक विद्युत् प्रतिरोधक होता है। बिजली की बत्तियों के आलोकमय तन्तु इसी धातु से बनते हैं।

जोधपुर में थोड़े पैमाने पर टंगस्टन का खनिज (वुल्फ्रम) मिलता है।

उपर्युक्त धातुओं के अतिरिक्त और भी कई अप्रधान धातुएँ हैं जिनका उपयोग इस्पात या अलौहिक धातुओं के उत्पादन में होता है। व्हेनेडियम, बिस्मथ, आर्सेनिक, एन्टीमनी इत्यादि ऐसी ही धातुएँ हैं। पारा एकमात्र द्रव धातु है। आवश्यक स्थलों पर इनके संबंध में लिखा जाएगा।

———

अध्याय २

धातु वैज्ञानिक क्रियाएँ

धातु विज्ञान

विज्ञान की वह शाखा है जिसकी सहायता से खनिजों में से धातुएँ प्राप्त की जाती हैं तथा उन्हें मानव समाज के उपयोग में आने योग्य स्थिति में परिवर्तित किया जाता है।

पहले धातु विज्ञान का क्षेत्र खनिज से धातु प्राप्त करने तक ही सीमित था परन्तु अब उसका क्षेत्र प्राप्त धातु को विभिन्न आकार प्रकार प्रदान करने—जैसे धरन, छड़, रेल, प्लेट, चद्दर, तार, ढलाई इत्यादि तैयार करने और यांत्रिक तथा तापोपचार द्वारा धातुओं तथा धातुसंकरों को अपेक्षित गुणों से विभूषित करने तक बढ़ गया है। इस प्रकार धातु विज्ञान को दो मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है :—(१) **उत्पादन धातु विज्ञान** (Production metallurgy) जिसके अंतर्गत विभिन्न विधियों द्वारा खनिज से धातु प्राप्त करना आता है तथा (२) **भौतिक धातु विज्ञान** (Physical metallurgy) जो धातुओं और धातुसंकरों के यांत्रिक और तापोपचारीय क्रियाओं से संबंधित है। इंजीनियर के लिये द्वितीय भाग अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा वह जान सकता है कि धातुओं के आचरण व गुणों पर विविध यांत्रिक क्रियाओं, जैसे मशीनिंग, स्टेम्पिंग इत्यादि का कैसा प्रभाव पड़ता है।

धातुओं की उत्पत्ति

ऐसी धातुएँ बहुत कम हैं जो प्रकृति में स्वतंत्र धातु के रूप में प्राप्त होती हैं। वे अधिकांशतः रासायनिक यौगिकों जैसे आक्साइड, सल्फाइड, कार्बोनेट, सल्फेट, इत्यादि के रूप में पाई जाती हैं। निम्नलिखित सूची में धातुओं के प्रकृति में प्राप्त होनेवाले रूपों की विवेचना की गई है :—



स्वतंत्र धातु	आक्साइड	सल्फाइड	कार्बोनेट	सिलिकेट	क्लोराइड
सोना	लोहा	ताँबा	लोहा	निकल	चाँदी
चाँदी	अलुमीनियम	सीसा	जस्ता	ताँबा	ताँबा
ताँबा	राँगा	जस्ता	ताँबा	जस्ता	मेगनीशियम
प्लेटिनम	मैंगेनीज़	निकल या गिलट	मैंगेनीज		
पारद	टंगस्टन	चाँदी			
	ताँबा	एंटीमनी			
		पारद			
		कोबाल्ट			

सोना अत्यंत कड़े पत्थर में अत्यधिक सूक्ष्म कणों के रूप में वितरित पाया जाता है। वह इतनी कम मात्रा में होता है कि मूल्यवान खनिज में भी मुश्किल से एक टन खनिज में सवा तोला सोना रहता है। कड़े पत्थर को बारीक कूट पीस कर अनेक व्ययसाध्य विधियों से सोना निकाला जाता है। इसी कारण यह इतनी बहुमुल्य धातु है। लोहा, रांगा व अलुमीनियम आक्सीजनमय खनिज में पाये जाते हैं। तांबा, सीसा और जस्ता सल्फाइड (गंधक मिश्रित) के रूप में प्राप्त होते हैं, तथा चाँदी शीशे व ताँबे के साथ ही बहुधा पाई जाती है। स्वतंत्र रूप में चाँदी बहुत कम मिलती है।

खनिज पदार्थ

पृथ्वी के गर्भ में पाई जाने वाली धातुओं या विजातीय पदार्थों के रासायनिक मिश्रणों को खनिज कहते हैं। खनिज धातुमय भी हो सकती है जैसे ताँबे का सम्मिश्रण सोनामाखी (Chalcopyrite); या विजातीय, जैसे सिलिका (SiO_2) और नमक इत्यादि।

धातुमय खनिज

खदानों में से जब खनिज निकाला जाता है तब उसके साथ अनेक विजातीय द्रव्यों जैसे बालू, स्फटिक या बिल्लोरी पत्थर (Quartz) मिट्टी, शिष्ट-शिला, शेल इत्यादि का सम्मिश्रण रहता है। इन विजातीय द्रव्यों को 'गैंग' (Gangue) कहा जाता है। जब खनिज पदार्थ में धातु की मात्रा इस अनुपात में हो कि धातु का उत्पादन आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद हो तो उसे 'ओर' (Ore) कहते हैं। कोई खनिज 'ओर' कहलाने योग्य है या नहीं इसके लिये तीन बातों का विचार मुख्य है :—

१—खनिज में धातु की प्रतिशत मात्रा।

२—धातु के उत्पादन का खर्च और

३—धातु की विक्रय दर

इन सब बातों का विचार करते हुए कोई खनिज एक समय 'ओर' कहलाने योग्य न होते हुए भी दूसरे लाभप्रद अवसर पर 'ओर' बन जाता है व आर्थिक दृष्टिकोण से उससे शोधन द्वारा धातु प्राप्त की जा सकती है।

खनिज में धातु की मात्रा को ध्यान में रखते हुए एक मन खनिज में २ पौन्ड तांबा उसे 'ओर' का रूप प्रदान कर देता है किन्तु यदि एक मन लोहे के खनिज में आधे से कम लोहा हो तो उसे लोहे का 'ओर' कहना उचित न होगा। कारण स्पष्ट है। तांबा मंहगा और लोहा सस्ता होता है।

निम्नलिखित सूची में प्रधान धातुमय खनिजों में धातु का प्रतिशत अंश दिया गया है (स्थान स्थान में ये अंक बदलते रहते हैं) :—

धातुमय खनिज	... ...	धातु का औसत प्रतिशत
सोना	... ...	०·००१
चांदी	... ...	०·०२
रांगा	... ...	१·५
तांबा	... ...	२·०
{ सीसा	... ...	२५%
{ जस्ता	... ...	१५%
अलुमीनियम	... ...	३०·०
लोहा	... ...	५०·०

खनिज ड्रेसिंग.

खनिज पदार्थ में से धातु तथा धातु युक्त पदार्थों को भौतिक पद्धतियों द्वारा विजातीय द्रव्यों (Gangue) से अलग करने की क्रिया को खनिज ड्रेसिंग कहते हैं। धातु विज्ञान में खनिज ड्रेसिंग का स्थान महत्त्वपूर्ण है। खर्चीली रासायनिक या तापीय (Thermal) क्रियाओं की सहायता लेने से पूर्व अधिकांश विजातीय द्रव्य इसके द्वारा सस्ते और सरल तरीकों से अलग कर दिये जाते हैं।

खनिज में से विजातीय द्रव्य को ड्रेसिंग द्वारा अलग करना चाहिये या धातुमय पदार्थों के साथ भठ्ठी में गला देना चाहिये, इस बात का विचार करते समय विजातीय द्रव्य को गलाने का खर्च और धातु का बाजार भाव आंकना आवश्यक है। विजातीय द्रव्य बहुत उंचे तापमान पर पिघलते हैं। आसानी से गलाने के लिये विजातीय द्रव्यों के साथ कुछ दूसरे पदार्थों को मिलाया जाता है जो 'रेचक' या 'फ्लक्स' (Flux) कहलाते हैं। ये रासायनिक क्रिया द्वारा ऊँचे तापमान पर विजातीय द्रव्यों के साथ मिलकर नये यौगिक (Compound) बनाते हैं जिनका द्रवणांक अधिक नहीं होता। किन्तु यदि खनिज में विजातीय द्रव्य का अनुपात अधिक हो तो फ्लक्स भी अधिक लगता है। परिणामतः फ्लक्स की कीमत के अतिरिक्त अधिक ईंधन, अपेक्षाकृत बड़ी भठ्ठी और गलाने के लिये अधिक समय लगता है। धातु उत्पादन का व्यय बढ़ जाता है। इसलिये जहाँ भी सम्भव हो भौतिक क्रियाओं द्वारा विजातीय द्रव्यों को अलग करने का प्रयास करना चाहिये।

इस प्रकार की भौतिक क्रियाओं के कई रूप हैं—

१. खनिज में से विजातीय द्रव्यों को हाथ से चुनकर अलग करना।

२. खनिज पदार्थों को चूर्ण करके बहते हुए पानी में छोड़ कर आपेक्षिक घनत्व की सहायता से धातुमय पदार्थों को विजातीय द्रव्यों से अलग करना।

३. चुंबक द्वारा चुंबकीय लोहा, गिलट, निकल इत्यादि पदार्थों को अलग करना।

४. 'फ्लोटेशन' (Flotation) द्वारा अलग करना। विगत कुछ वर्षों से 'फ्राथ फ्लोटेशन' (Froth Flotation) नाम की क्रिया ने खनिज ड्रेसिंग में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। उसके द्वारा जब खनिज के

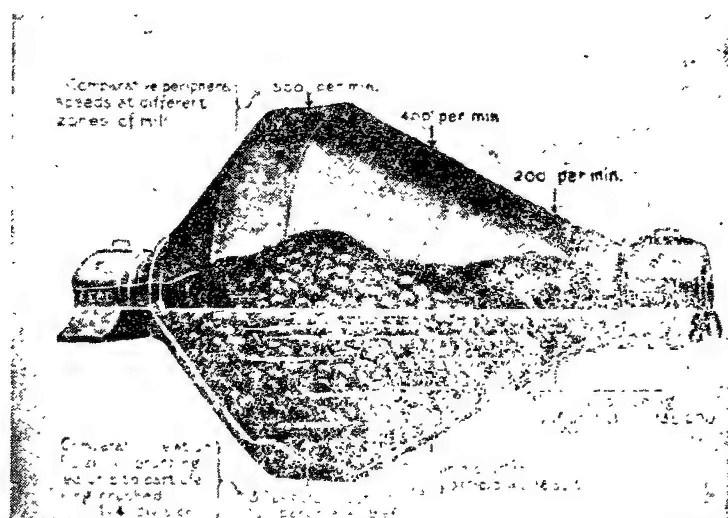
बारीक चूर्ण को किंचित् तेल (पाइन या अन्य तेल) मिश्रित पानी में। वायु के द्वारा मथा जाता है, तब वजनदार खनिज, जैसे 'गेलिना'



चित्र सं० ४ 'फ्राथफ्लोटेशन सेल'

(सीसे की सल्फाइड) 'स्फेलेराइट' (जस्ते की सल्फाइड) सोना माखी (तांबे और लोहे की मिश्रित सल्फाइड) इत्यादि फेन के साथ ऊपर सतह पर आ जाते हैं और हल्के विजातीय द्रव्य नीचे तले में बैठ जाते हैं। इस प्रकार फेन के साथ आसानी से और कम खर्च में गन्धकीय खनिजों को अलग कर लिया जाता है। धातु विज्ञान में 'फ्राल्थ फ्लोटेशन' का विस्तृत उपयोग किया गया है और जो खनिज अत्यल्प धातु परिमाण के कारण उपेक्षित थे वे अब इस विधि द्वारा लाभपूर्वक उपयोग में लाए जा रहे हैं।

जिन खनिज पदार्थों में विजातीय द्रव्य बहुत कम होते हैं उनके लिये 'खनिज ड्रेसिंग' की आवश्यकता नहीं पड़ती। उदाहरणार्थ उत्तम प्रकार के लौह खनिज में ६०, ६५ प्रतिशत लोहा (या ८५ से ९५ प्रतिशत Fe_2O_3) होता है तथा विजातीय द्रव्य इतना कम होता है कि खनिज ड्रेसिंग की आवश्यकता नहीं रह जाती।



चित्र सं० ५   बाल मिल

खनिज ड्रेसिंग का क्षेत्र दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। जैसे जैसे उत्तम प्रकार के खनिज समाप्त होते जा रहे हैं वैसे वैसे 'खनिज ड्रेसिंग' की सहायता से हीन कोटि के खनिज उपयोग में लाए जा रहे हैं। साधारणतः धातु के कारखानों में खनिज की ड्रेसिंग की जाती है परन्तु यदि कारखाना खदान से ज्यादा दूर हो तो खनिज की ड्रेसिंग खदान के पास ही कर ली जाती है ताकि विजातीय द्रव्य ढोने का रेल का किराया बच जाए।

खनिज में से धातु निकालने की पद्धति :—खनिज में से धातु निकालने की तीन पद्धतियाँ प्रधान रुप से प्रचलित हैं :—

१—जल द्वारा (Hydrometallurgical)

२—ताप द्वारा (Pyro metallurgical)

३—विद्युत द्वारा (Electrometallurgical)

इन्हें क्रमशः आर्द्र, शुष्क और वैद्युत पद्धतियाँ भी कहते हैं। जलीय अथवा आर्द्र पद्धति में खनिज का घोल उपयुक्त द्रव में बनाया जाता है और इस घोल (Solution) को छान या निथार कर अवक्षेपन (Precipitation) या विद्युत् विश्लेषण (Electrolysis) द्वारा उसमें से धातु अलग कर ली

जाती है। शुष्क या तापीय पद्धति में खनिज को भट्ठी में उच्च तापमान पर पिघलाया जाता है। भट्ठी का वातावरण कार्बन (कोयला इत्यादि) द्वारा ल-वीकर रखा जाता है। धातु पिघली हुई दशा में भट्ठी के पेंदेमें एकत्रित होती है और थोड़ी थोड़ी देर में बाहर निकाल ली जाती है। यह धातु करीब करीब शुद्ध होती है और इसको ढाल दिया जाता है जब अधिक शुद्धता की आवश्यकता होती है तो दूसरी भट्ठी में ले जाकर उसे अपेक्षित सीमा तक शुद्ध किया जाता है। कभी कभी भट्ठी में गलाने से पूर्व खनिज को भूज कर उसमें से आर्द्रता, कार्बन-डाइ-आक्साइड, गंधक, संखिया इत्यादि को अलग कर दिया जाता है जिससे द्रवण क्रिया में आसानी रहती है। इस भूंजने की विधि को 'रोस्टिंग' (Roasting) कहते हैं।

आर्द्र या जलीय पद्धति द्वारा सब प्रकार के सोने के खनिज से धातु प्राप्त की जाती है। कुछ चाँदी, ताँबे और जस्ते के खनिजों को भी हल्के गंधक के तेजाब में घोलकर धातु निकाली जाती है किन्तु संसार का अधिकांश लोहा, ताँबा, सीसा, जस्ता, राँगा शुष्क या तापीय पद्धति द्वारा प्राप्त किया जाता है।

आर्द्र या जलीय पद्धति जहाँ कहीं भी उपयोग में आ सकती हो, साधारणतः तापीय पद्धति से सस्ती पड़ती है। इसलिये यह प्रयत्न किया जाता है कि जितनी ज्यादा धातुओं का उत्पादन इस पद्धति से हो सके उतना ही अच्छा है। दक्षिणी अमेरिका के चिली देश में प्रति वर्ष डेढ़ लाख टन तांबा तथा संसार का १५ प्रतिशत जस्ता इस विधि से निकाला जाता है।

'स्मेल्टिंग' (Smelting या गलाना)

खनिज को ताप द्वारा गलाकर धातु या धातु-यौगिक के रूप में प्राप्त करने की क्रिया स्मेल्टिग (Smelting) कहलाती है। विजातीय द्रव्य को फ्लक्स मिलाकर गलाया जाता है और 'धातुमैल' (Slag) बनाया जाता है। धातुमैल का द्रवणांक विजातीय द्रव्य और 'फ्लक्स' दोनों से कम होता है। इसका घनत्व द्रव धातु से कम होता है इस कारण यह भट्ठी में पिघली हुई धातु के ऊपर तैरता रहता है। भट्ठी के पेंदे में दो छिद्र इस प्रकार बनाये जाते हैं कि एक द्रव धातु की सतह से कुछ नीचे व दूसरा धातु की सतह से कुछ ऊपर 'धातुमैल' के स्थान पर होता है। इन छिद्रों द्वारा क्रमशः धातु और धातुमैल इच्छानुसार निकाला जाता है।

फ्लक्स और धातुमैल

खनिज को गलाकर धातु प्राप्त करने में दो वस्तुएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन करती हैं—१. फ्लक्स और २. धातुमैल।

खनिज पदार्थ में धातुमय पदार्थ न्यूनाधिक मात्रा में मूल्यहीन पदार्थों से आवृत रहते हैं। इन्हे विजातीय द्रव्य या गैंग (gangue) कहा जाता है। इन विजातीय द्रव्यों का द्रवणांक (पिघलने का तापमान) बहुत ऊँचा होता है अतः इन्हे गलाना बहुत कठिन और व्ययसाध्य कार्य है। परन्तु बिना इन्हें गलाये धातु अलग नहीं की जा सकती इसलिये कुछ ऐसे पदार्थों (फ्लक्सों) की सहायता ली जाती है जो रासायनिक गुणों में विजातीय द्रव्य से विपरीत होते हैं और इस कारण उसके साथ मिल कर नये पदार्थ बनाते हैं जिनका द्रवणांक पर्याप्त नीचा होता है। फ्लक्स स्वयं बहुत ऊँचे तापमान पर पिघलता है किन्तु उससे व विजातीय द्रव्य से बना हुआ धातुमैल शीघ्र गलने वाला होता है। फ्लक्स का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य खनिज या ईंधन से प्राप्त गंधक, फास्फोरस इत्यादि पदार्थों से स्वयं युक्त होकर ऐसे पदार्थ बनाना है जो धातुमैल में मिल जाते हैं और उन्हें धातु में पुनः प्रवेश करने से रोकते हैं। इस प्रकार धातु इन अशुद्धियों से मुक्त हो जाती है। संक्षेप में फ्लक्स दो मुख्य कार्य करते है :—(१) विजातीय द्रव्य (gangue) का द्रवणांक कम करना और (२) खनिज या ईंधन से निकले हुए उन तत्वों या पदार्थों को समेट लेना जो साधारणत: फ्लक्स के अभाव में, धातुमें घुल मिल जाते और उसे अशुद्ध कर देते।

उचित फ्लक्स का चुनाव

उपयुक्त फ्लक्स चुनने के लिये धातु उत्पादन के दौरान में काम आने वाले पदार्थों के रासायनिक गुणों तथा फ्लक्स के द्वारा बनने वाले यौगिक पदार्थों के द्रवणांक का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि विजातीय द्रव्य क्षारीय (basic) हो तो अम्लीय (acid) फ्लक्स (जैसे सिलिका SiO_2 या बालू) और यदि विजातीय द्रव्य अम्लीय हो (जैसे सिलका या फास्फोरिक अम्ल) तो क्षारीय फ्लक्स या चूने की आवश्यकता होती है। साधारण: विजातीय द्रव्य में क्षारीय और अम्लीय दोनों पदार्थ विद्यमान रहते हैं पर अम्लीय पदार्थ की बहुलता रहती है। कुछ खनिज पदार्थ ऐसे होते हैं कि उनमें क्षारीय और अम्लीय पदार्थों का अनुपात संतुलित होता है। दूसरे शब्दों में बाहरी फ्लक्स मिलाने की आवश्यकता

नहीं रहती। ऐसे खनिज 'स्वतः फ्लक्सिंग खनिज' (Self fluxing ores) कहलाते हैं। कभी कभी किसी खनिज की अम्ल प्रधान और क्षार प्रधान दोनों क़िस्में मिलती हैं। ऐसी स्थिति में उन दोनों को उचित अनुपात में मिला कर 'स्वतः फ्लक्सिंग' बना लिया जाता है।

अम्लीय फ्लक्स.

सिलिका (या बिल्लौर) एक मात्र अम्लीय फ्लक्स है। प्रकृति में यह बालू, कंकड़, और बिल्लोर (Quartzite) शिलाओं के रूप में बहुत यात से मिलता है।

क्षारीय फ्लक्स.

चूने का पत्थर और 'डोलोमाइट' (Dolomit) प्रधान क्षारीय फ्लक्स है।

तटस्थ फ्लक्स (Neutral Flux)

यह धातुमैल का अम्लत्व या क्षारत्व न घटाता है और न बढ़ाता है। इसका प्रधान कार्य धातुमैल को अधिक तरल बनाना है। फ्लोरस्पार (Fluorspar) मुख्य तटस्थ फ्लक्स है।

प्राप्य क्षार (Available base)

यह पहले बताया जा चुका है कि खनिजों में अम्लीय और क्षारीय दोनों प्रकार के पदार्थ मौजूद रहते हैं। अतः क्षारीय फ्लक्स में क्षार की उस मात्रा को जो अम्ल को संतुष्ट करने के पश्चात शेष रह जाती है, 'प्राप्य क्षार' कहा जाता है।

भारत में फ्लक्सों के प्राप्ति स्थान

चूने का पत्थर—कटनी, रींवा, गंगपुर (उड़ीसा), बिसरा, पाराघाट, बरदुआर (बंगाल) और बंदीगंड (मैसूर)।

फ्लोरस्पार—देगाना (जोधपुर) और किशनगढ़ (राजपूताना)।

सिलिका—(बिल्लोर), भारत के प्रायः प्रत्येक भाग में।

धातुमैल

भट्ठी के अन्दर फ्लक्स, विजातीय द्रव्य और ईंधन की राख के योग से जो

गलित पदार्थ बनता है उसे धातुमैल कहा जाता है। यह अम्लीय और क्षारीय पदार्थों (Compounds) के योग से प्राप्त होता है।

निम्नलिखित गुणों के कारण धातुमैल अवांछित पदार्थों और अशुद्धियों को धातु से अलग कर देता है जिससे शुद्ध धातु उपलब्ध होती है :—

क—द्रवणशीलता (Fusibility), तरलता (Fluidity) और हल्कापन जिनके कारण धातुमैल तरल धातु से सर्वथा पृथक हो जाता है।

ख—धातु शोधन के लिए रासायनिक क्रियाशीलता।

ग—अशुद्धियों को घोल लेने की क्षमता और

घ—ताप का न्यून परिचालन

धातुमैल भट्ठी के अन्दर की हानिप्रद गैसों से धातु की रक्षा करता है। ताप का न्यून परिचालक होने के कारण वह धातु को अत्यधिक गर्म होने से बचाता है और धातु की उष्णता को कायम रखता है। यह आक्साइडों व अन्य अशुद्धियों को अपने में घुला लेता है और इस प्रकार धातु को शुद्ध बनाता है। हल्की होने के कारण धातुमैल की तह अलग होकर ऊपर तैरती रहती है।

शुष्क या तापीय पद्धति द्वारा धातु के उत्पादन में धातुमैल का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। लोहे की ब्लास्ट फर्नेस में विजातीय द्रव्य तो अलग होते ही हैं साथ ही गंधक व अन्य अशुद्धियों को अलग करने का यही एकमात्र साधन है। धातु स्थान के तापमान (Hearth temperature) का तथा लोहे की उत्तमता का नियंत्रण धातुमैल की बनावट द्वारा किया जाता है। इस्पात बनाने की क्षारीय पद्धति में धातुमैल के द्वारा ही, कार्बन को छोड़कर, अन्य अशुद्धियाँ पृथक की जाती हैं। धातुमैल तापीय धातु विज्ञान का इतना आवश्यक अंग है कि यदि यह कहा जाय कि वास्तव में "धातुमैल बनाने का इतिहास ही इस्पात उत्पादन का इतिहास है" तो अत्युक्ति न होगी। धातुविज्ञ को धातुमैल के १—रासायनिक आचरण २—बनावट का तापमान (Formation temperature) तथा ३—द्रवणशीलता, एवं तरलता नियंत्रण की रीति से भिज्ञ रहना आवश्यक है।

अम्लीय और क्षारीय धातुमैल

जब सिलिका (Si_2O) और चूने (CaO) के उचित अनुपात से सिलिका अधिक हो जाता है तब धातुमैल अम्लीय और जब चूना अधिक हो जाता है तब वह क्षारीय कहा जाता है।

धातुमैल की बनावट

धातु के उत्पादन में इच्छित फलों को प्राप्त करने के लिये धातुमैल की बनावट का नियंत्रण किया जाता है। दो या अधिक क्षारों के सिलिकेट तथा घुली और अवलंबित (Suspended) अशुद्धियाँ धातुमैल की प्रधान घटक हैं। विभिन्न धातुओं के धातुमैलों की बनावटें और विशेषताएँ क्रमशः उनके अध्यायों में दी जाएँगी।

धातुमैलों का उपयोग

भट्ठी में अपना कार्य सम्पादन करने के पश्चात् धातुमैलों का धातुविज्ञ के लिये कोई महत्त्व नहीं रह जाता। किंतु उनका सदुपयोग कई कामों के लिये किया जा सकता है, जैसे—१—सड़क बनाने में, २—रेल की लाइनों पर गिट्टी के रूप में ३—छत पाटने में ४—सीमेंट बनाने में ५—कंक्रीट के कामों में ६—ताप और विद्युत् परिचालन के अवरोधक के रूप में ७—खाद (क्षारीय धातुमैल जिसमें फास्फोरस मौजूद हो) और ८—इमारती सामान इत्यादि में।

कुछ प्रधान धातुमैलों के रासायनिक विश्लेषण

धातु	पद्धति	SiO_2	Al_2O_3	P_2O_5	S	CaO	MgO	Fe_2O_3 Fe_3O_4	MnO
लोहा	ब्लास्ट फर्नेस	३५	१५		१	४४	३	१	१
,,	अम्लीय बेसिमर	६४	...	...	...	...	...	२०	१६
,,	क्षारीय ,,	१६	२	१७	...	४४	५	६	७
,,	अम्लीय ओपन हार्थ	५३	३	...	...	३	...	२४	१७

धातु	पद्धति	SiO_2	Al_2O_3	P_2O_5	S	CaO	MgO	Fe_2O_3 + Fe_3O_4	MnO
,,	क्षारीय ओपन हार्थ	२०	४	३	०.३	४२	१०	१५	६
,,	विद्युत् भट्ठी	१८	६	...	०.४	६१	९	६.५	०.३
ताँबा	ताम्र कन्वर्टर	२०	६	...	२	१	...	६१	Cu=२

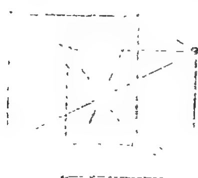
अध्याय ३

धातु की रचना, भौतिक गुण तथा यांत्रिक परीक्षण

सभी रासायनिक तत्व, जिनमें शुद्ध धातुएँ भी सम्मिलित हैं, परमाणुओं से बने हैं। परमाणु किसी भी तत्व का सूक्ष्मतम कण है जिसमें उस तत्व की विशिष्टता का समावेश रहता है। परमाणु इतने छोटे होते हैं कि वे सर्वाधिक शक्तिशाली अणुवीक्षण यंत्र (Microscope) से भी नहीं देखे जा सकते। परमाणु की सूक्ष्मता का ज्ञान इसी से हो सकता है कि एक घन सेंटीमिटर ताँबे में अनुमानतः ८५१, ६४८, ५३७, ०२६, ८६९, ४६६, २०६, २७० परमाणु होते हैं।

ये परमाणु निश्चित सिद्धांत के अनुसार विशिष्ट ढाँचे में रहते हैं। धातुएँ रवादार या मणिभीय (Crystalline) होती हैं। प्रत्येक रवे (Crystal) में परमाणु एक विशिष्ट योजनानुसार विद्यमान रहते हैं। किसी तत्व के रवे बिल्कुल एक से होते हैं। यदि छोटे रवों को विकास का अवसर मिले तो बहुत से रवे संयुक्त होकर बड़ा रवा बनाते हैं जो आकार में बिल्कुल छोटे रवे के समान होता है। पिघली हुई धातु जब ठंढी होती है तब रवे बनने लगते हैं। चूंकि रवों का निर्माण बहुत से केन्द्रों से एक साथ आरम्भ होता है अतः रवों को सब दिशाओं में स्वच्छंद रूप से विकसित होने का अवसर नहीं मिलता। इस प्रकार धातु का कोई टुकड़ा विकसित, अर्धविकसित और अल्प विकसित रवों का समुदाय होता है।

परमाणुओं के व्यवस्थित ढाँचे का चित्र नीचे दिया है।



चित्र सं० ६



चित्र सं० ७

अलुमीनियम, ताँबा, गिलट (निकल), चाँदी, सोना, प्लेटिनम् तथा अन्य कई धातुओं के परमाणु घन परिधि में पंक्तिबद्ध होकर एक दूसरे से समकोण पर

रहते हैं। देखिये चित्र सं० ७। घन के आठों कोनों पर तथा प्रत्येक पहल (Face) के केंद्र में परमाणु रहते हैं। इस व्यवस्था का नाम पहल केंद्रित घनीय (Face centred cubic) है। लोहा, टंग्स्टन, वेनेडियम, मालिब्डिनम इत्यादि में परमाणुओं की व्यवस्था किंचित भिन्न रहती है। इनमें घन परिधि के आठों कोनों पर तो अणु रहते हैं पर प्रत्येक पहल के केंद्र में एक अणु न रहकर समूचे ढाँचे के केंद्र में एक अणु रहता है। (देखिये चित्र सं० ६) इस व्यवस्था का नाम 'उर केंद्रित घनीय' (Body centred cubic) है। साधारण तापमान पर लोहे के परमाणु 'उर केंद्रित' रहते हैं पर जब लोहे को गर्म किया जाता है तब ९०६° से० पर उसके परमाणु उर केंद्रित से पहल केंद्रित हो जाते हैं।

जस्ता और मैग्नीशियम में परमाणु षट् भुजाकार में तथा अन्य धातुओं के परमाणु अन्य ढाँचों में व्यवस्थित रहते हैं। सामान्य उपयोग की धातुओं के परमाणु पहल केंद्रित घनीय, उर केंद्रित घनीय अथवा षट् भुजाकार ढाँचों में रहते हैं। परमाणु रचना (Atomic structure) के विषय से संबंधित तीन रोचक बातें संक्षेप में नीचे दी जाती हैं।

१—धातुएँ परमाणुओं से बनी हैं और प्रत्येक धातु के परमाणु विशिष्ट विस्तार के होते हैं। दो धातुओं के परमाणु एक प्रकार के नहीं होते।

२—धातु के प्रत्येक रवे के परमाणु निश्चित ढाँचे में व्यवस्थित रहते हैं। ये ढाँचे कई प्रकार के होते हैं। पहल केंद्रित घनीय, उर केंद्रित घनीय तथा षट्भुजाकार ढाँचे मुख्य हैं।

३—जब एक धातु दूसरी धातु में 'घनविलय' (Solid solution) के रूप में विद्यमान रहती है, तब मिलाई गई धातु के परमाणु पूर्व धातु के परमाणु परिधि (Atomic lattice) में स्थान बना लेते हैं यद्यपि जोड़े गये परमाणु का विस्तार पूर्व परमाणु से भिन्न होता है और हो सकता है कि उसके परमाणु का ढाँचा भी भिन्न प्रकार का हो। इस प्रकार का अनधिकार प्रवेश ढाँचे को बहुधा विकृत कर देता है। इसलिये धातु संकर 'मातृ धातु' (Parent metal) से कठोर और दृढ़ होता है।

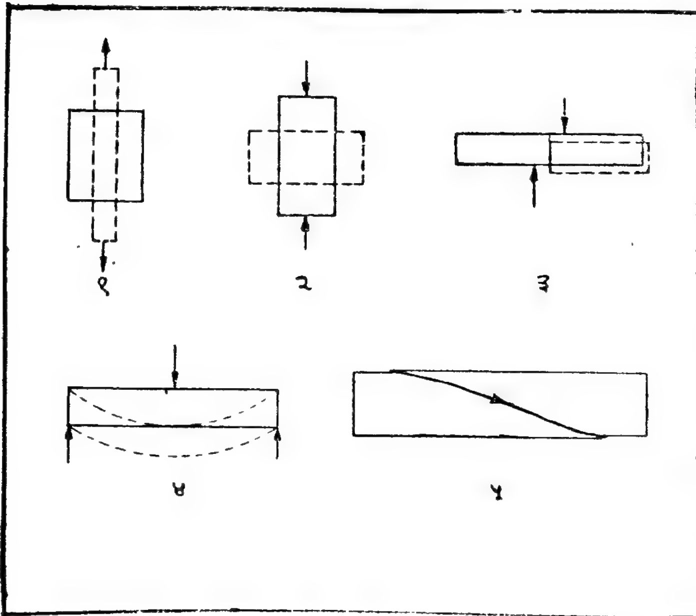
धातुओं की आंतरिक रचना केवल सैद्धांतिक विषय नहीं है अपितु व्यावहारिक क्षेत्र में भी इसका ज्ञान सहायक होता है। धातु संकर की बनावट और तापोपचार के रहस्य इसकी सहायता से सरलतापूर्वक समझ में आ जाते हैं और उचित निर्णय करने में मार्ग प्रदर्शन करते हैं।

शुद्ध धातु निश्चित तापमान पर द्रवित होती है और जब तक उसका

अन्तिम अंश द्रवित नहीं हो जाता तब तक तापमान अपरिवर्तित रहता है। धातु संकर का द्रवण एक तापमान पर आरंभ होता है और एक परिधि पार करके दूसरे तापमान पर समाप्त होता है। ठंढी धातु को गलाने और पिघली हुई धातु को ठंढी करने में तापमान तथा समय में जो परिवर्त्तन होते हैं उन्हें समय-ताप वक्रों (Time temperature curves) द्वारा अंकित किया जाता है। इन रेखाओं का बहुत महत्त्व है। इनसे सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक धातु विज्ञान के अनुशीलन में बहुत सहायता मिलती है। यहां इस विषय पर अधिक विचार नहीं किया जायगा क्योंकि यह पर्याप्त विस्तृत और स्वतंत्र विषय है जिसे अंग्रेजी में 'मेटेलोग्राफी' (Metallography) कहते हैं।

भौतिक गुण

अब हम उन गुणों का विचार करेंगे जिनके कारण धातुओं का इतना महत्त्व है। ये गुण प्रधानतः दृढ़ता (Strength), कठोरता (Hardness),



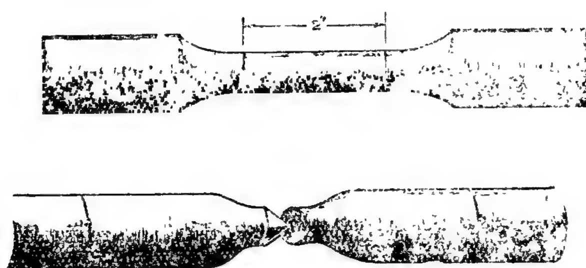
चित्र सं० ८ विभिन्न प्रकार के चाँप—(१) तनाव; (२) दबाव; (३) कटाव; (४) झुकाव तथा (५) ऐंठन

लचक या 'स्थिति स्थापकत्व' (Elasticity), घनवर्धनीयता (Mallea-

bility), तांतवता (Ductility या तार के रूप में खींचे जाने की क्षमता) तथा चिमड़ापन (Toughness) है।

दृढ़ता कई प्रकार की होती है जैसे तनाव की दृढ़ता (Tensile strength), दबाव की दृढ़ता (Compressive strength), ऐंठन की दृढ़ता (torsional strength) इत्यादि।

यदि खड़िया के छोरों को पकड़ कर खींचा जाय तो वह सरलता से टूट जाती है अतः खड़िया कमजोर पदार्थों की श्रेणी में आती है। पर यदि उतने ही बड़े लोहे के टुकड़े को खींचा जाय तो वह टस से मस न होगा। उसे तोड़ने के लिये अत्यधिक शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी। धातु के इस गुण का नाम तनाव की दृढ़ता है। टूटने के पहिले धातु की लम्बाई बढ़ जाती है औरबीच में वह पतली हो जाती है।



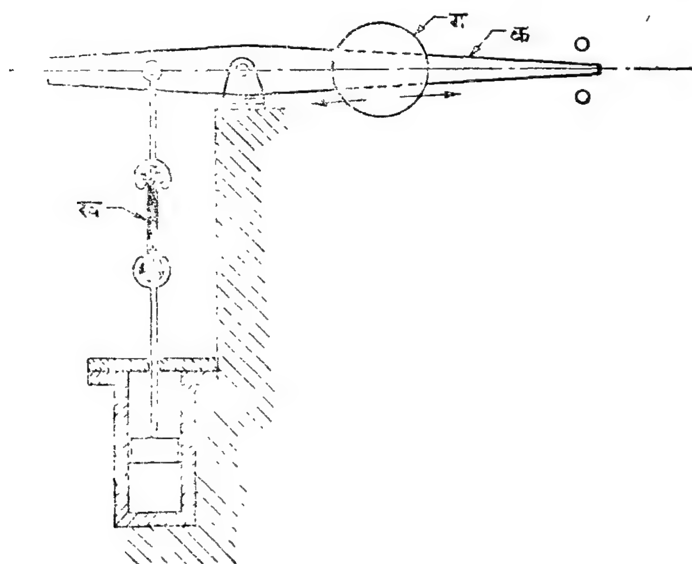
चित्र सं० ९ ऊपर—परीक्षण शलाका नीचे—परीक्षणोपरांत टूटी हुई शलाका

जिस धातु को इस प्रकार तोड़ने के लिये जितनी अधिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है वह उतनी ही दृढ़ समझी जाती है। धातुओं की दृढ़ता नापने के लिये बहुधा गोल छड़ों का उपयोग किया जाता है। इन छड़ों की लम्बाई, आकार और मोटाई एक निश्चित अनुपात में रखी जाती है उदाहरणार्थ यदि लम्बाई करीब ६ इंच हो तो बीच में मोटाई (व्यास) करीब आध इंच और समानांतर मोटाई वाले भाग की लम्बाई करीब २ इंच रहती है। बीच की मोटाई इस हिसाब से रखी जाती है कि उसके कटाव का क्षेत्रफल (area of cross-section) सरल संख्या (एक इंच, आध इंच या पाव इंच) हो। इससे हिसाब लगाने में सुविधा होती है। यदि बीच की मोटाई ०.५६४ इंच हो तो उसके

कटाव का क्षेत्रफल १।४ एक बटा चार वर्ग इंच होगा और यदि परीक्षण शलाका (test piece) को तोड़ने के के लिये ८ टन का बोझ लगाहो तो उस धातु के तनाव की दृढ़ता ३२ टन प्रतिवर्ग इंच होगी।

तनाव की दृढ़ता नापने का यंत्र

यह यंत्र बहुत भारी होता है। इसका सिद्धान्त सरल है। परीक्षण शलाका के एक छोर को यंत्र के अचल भाग में मजबूती से (चूड़ियों या जबड़ों द्वारा) फँसा दिया जाता है। दूसरे छोर को खींचा जाता है। लीवर (lever) द्वारा एक भारी बोझ (करीब ५ मन) को फलक्रम (fulcrum) से दूर हटाकर



चित्र सं १० क—लीवर; ख—परीक्षण शलाका; ग—सरकने वाला बोझ

खिंचाव की शक्ति प्रायः बढ़ाई जाती है। लीवर-दंड पर अंक खुदे रहते हैं। जब परीक्षण शलाका अत्यधिक बोझ से टूटती है तब उसी क्षण चलित बोझ द्वारा दर्शाये अंक को पढ़ लिया जाता है। इस अंक और परीक्षण शलाका के कटाव के क्षेत्रफल की सहायता से तनाव की दृढ़ता (प्रतिवर्ग इंच) मालूम की जाती है।

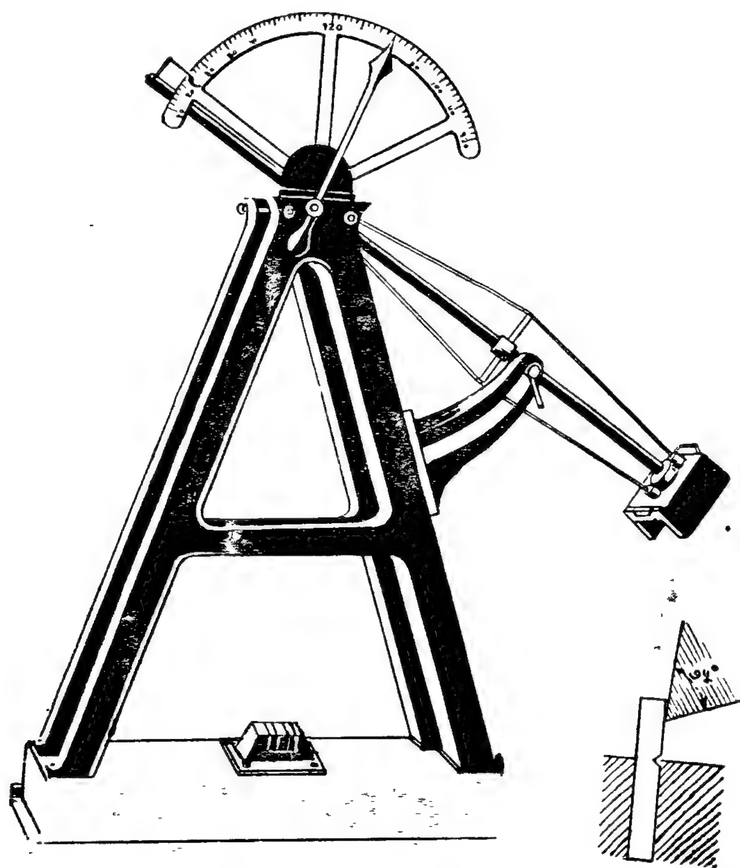
सामान्य धातुओं के तनाव की दृढ़ता इत्यादि

धातु	तनाव की दृढ़ता टन प्रतिवर्ग इंच	प्रतिशत लंबाई का विस्तार (% Elongation)	कठोरता (ब्रिनेल)
अलुमीनियम एनिल किया हुआ	४	६०	१४
तांबा एनिल किया हुआ	१४	५८	३०।६०
सोना	९	५०	५०
इस्पात एनिल किया हुआ	१६	४०	८०
इस्पात कठोर	३२	५	३००।६००
सीसा	०.८	५०	४।८
चांदी एनिल की हुई	९	५०	४०
चांदी (तार)	२०	५	५०
रांगा	२	४०	१५।३०
जस्ता	२	३०	३०।६०

संपीड़न या दबाव की दृढ़ता

स्तंभ आदि बहुत से पदार्थों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। अतः कोई धातु कितना दबाव सह सकती है यह जानना आवश्यक है ; क्योंकि यदि दबाव अपनी सीमा पार कर जाता है तो पदार्थ लंबाई के रुख बीच से चटख कर दो टुकड़े हो सकता है। चटख की दिशा प्रायः ४५° के झुकाव पर होती है। जितने दबाव पर पदार्थ चटखता है उसे दबाव की दृढ़ता या 'संपीड़न दृढ़ता' (compressive strength) कहा जाता है। यह भी प्रति वर्ग इंच में नापी जाती है।

'कांती लोहा' (cast iron) इस्पात की अपेक्षा अधिक दबाव सह सकता है। नर्म पदार्थ जैसे (पिटवाँ लोहा, सीसा आदि) दबाव के कारण फैल जाते हैं।



चित्र सं० ११ नीचे दाहिनी ओर परीक्षण शलाका दिखाई गई है

कांती लोहे की भाँति चटखते नहीं। तनाव की दृढ़ता नापने के यंत्र (tensile testing machine) में ही किंचित परिवर्तन करके दबाव की दृढ़ता नापी जाती है।

कठोरता

धातुएँ कड़ी होती हैं—कोई अधिक, कोई कम। उनके इस गुण का नाम कड़ापन या कठोरता है। शीशा इत्यादि दूसरे अधातु पदार्थ भी कड़े होते हैं, पर

साथ ही वे भंजनशील भी होते हैं, जब कि धातुएँ कठोर होने के साथ साथ दृढ़ होती हैं। कठोरता और दृढ़ता के संयोग से धातुओं का महत्त्व बहुत बढ़ गया है।

कठोरता नापने की विधि

साधारण व्यवहार में नाखून, चाकू, रेती (file) इत्यादि के द्वारा कठोरता का स्थूल अनुमान लगा लिया जाता है। 'मोह' (Moh) नामक वैज्ञानिक ने सेलखरी (सोप स्टोन), हीरा इत्यादि दस पदार्थों के द्वारा खरोंच कर किसी पदार्थ की आपेक्षिक कठोरता जानने की पद्धति चलाई है। भूगर्भशास्त्र में इस पद्धति का बहुत उपयोग होता है। ये दस पदार्थ क्रम से ये हैं।

मोह की कठोरता मापक संख्याएँ

कठोरता मापक संख्या			आदर्श खनिज पदार्थ
१	...	...	सेलखरी
२	...	...	जिप्सम या सेंधा नमक
३	...	...	केल्साइट
४	...	...	फ्लोरस्पार
५	...	...	एपेटाइट
६	...	...	फेलस्पार
७	...	...	स्फटिक
८	...	...	पुखराज
९	...	...	कोरंडम
१०	...	...	हीरा

उदाहरणार्थ चाकू फेल्स्पार (नं० ६) को खरोंच देता है पर स्फटिक (नं० ७) को नहीं खरोंच पाता बल्कि स्वयं घिस जाता है, अतः चाकू की कठोरता ६ और ७ के बीच या साढ़े छ है।

कठोरता की इन संख्याओं का उपयोग धातुविज्ञान में कम होता है क्योंकि ये स्थूल हैं और इन संख्याओं में कोई निश्चित अनुपात नहीं होता। धातु-विज्ञान में ब्रिनेल (Brinell), विकर (Vicker), राकवेल (Rockwell), स्लेरेस्कोप (Scleroscope) इत्यादि यंत्रों का उपयोग किया जाता है। प्रथम

तीन लगभग समान सिद्धांत पर आधारित हैं। परीक्षणीय धातु को ज्ञात कठोरतावाले विशेष आकार के पदार्थ (इस्पात-मेल की कठोर गोली या हीरे के पिरामिड) के सम्पर्क में लाया जाता है और फिर कुछ सेकंड तक उस पर दबाव डाला जाता है। इससे परीक्षणीय पदार्थ में एक छोटा गड्ढा (depression) बन जाता है। यह गड्ढा कड़ी धातु में छोटा और कोमल धातु में बड़ा रहता है। इस गड्ढे को अणुवीक्षण यंत्र द्वारा नापकर संख्या सूची से तत्संबंधी कठोरता पढ़ ली जाती है।

ब्रिनेल कठोरता मापक यंत्र।

इस यंत्र की बनावट चित्र से स्पष्ट हो जाती है। अंग्रेजी अक्षर 'C' के आकार का एक फ्रेम रहता है जिसकी निचली भुजा में लोहे का समतल चौकोर टुकड़ा लगा रहता है। जिस धातु की कठोरता जाननी हो उसका समतल टुकड़ा उसपर रख दिया जाता है। यंत्र की ऊपरी भुजा में इस्पात की एक अत्यंत कड़ी गोली लगी रहती है। गोली और धातु के टुकड़े को सटाकर निश्चित दबाव, जैसे ३००० किलोग्राम (करीब ८३ मन) का दबाव डाला जाता है। यह दबाव यंत्र में पम्प द्वारा तेल भेजकर उत्पन्न किया जाता है। दबाव १५ सेकंड के लिये स्थिर रखा जाता है। दबाव के कारण गोली धातु के टुकड़े में थोड़ी सी धँस जाती है—कोमल धातु में अधिक और कड़ी धातु में कम। धातु में बने हुए निशान के ऊपरी व्यास को अणुवीक्षण यंत्र द्वारा नाप लिया जाता है। नाप के अनुसार सूची में से कठोरता की संख्या पढ़ ली जाती है। यह संख्या 'ब्रिनेल कठोरता संख्या' (Brinell hardness number) कहलाती है।

घनवर्धनीयता

किसी धातु को घन (हथौड़े) से पीटा जाय तो वह पतली और आकार में बड़ी हो जाती है। धातु के इस गुण का नाम 'घनवर्धनीयता' है। चद्दरें, पत्तियाँ और वरक इसी गुण के कारण बनते हैं। जो धातु जितनी अधिक घनवर्धनीय होती है उससे उतनी ही पतली चद्दर (या वरक) बनाई जा सकती है। धातु में अशुद्धियों की उपस्थिति से घनवर्धनीयता घट जाती है। धातुओं में सोना सर्वाधिक घनवर्धनीय होता है। मुख्य धातुओं की घनवर्धनयिता का क्रम इस प्रकार है।

घनवर्धनीयता का क्रम

१—सोना (सबसे अधिक घनवर्धनीय)
२—चाँदी
३—अलुमीनियम
४—तांबा
५—रांगा
६—प्लेटिनम
७—सीसा
८—जस्ता
९—लोहा

तांतवता

धातु की पतली छड़ को लंबाई के रुख में खींचा जाय तो वह अधिकाधिक लंबी होती जाती है और उसका तार तैयार हो जाता है। धातु के इस गुण का नाम 'तांतवता' है। जिस धातु का सबसे पतला तार खींचा जा सके वह सबसे अधिक तांतव कही जाती है।

तांतवता का क्रम

१—सोना (सर्वाधिक तांतव)
२—चांदी
३—प्लेटिनम
४—अलुमीनियम
५—लोहा
६—ताँबा
७—जस्ता
८—राँगा
९—सीसा

स्थिति स्थापकत्व या लचक

धातु की छड़ या तार में बोझ लटका दिया जाय तो उसकी लम्बाई किंचित बढ़ जाती है पर बोझ हटाते ही तार पुनः सिकुड़ कर पूर्व स्थिति में आ जाता है। धातु के इस गुण का नाम 'लचक' या स्थिति स्थापकत्व है। लचक की भी

सीमा होती है और जब भार अत्यधिक होकर सीमा पार कर जाता है तब धातु की लचक नष्ट हो जाती है और तार स्थायी रूप से लम्बा हो जाता है।

संघात (Ipmact) सहने की क्षमता

संघात अर्थात् आकस्मिक धक्का सहने की धातु में कितनी क्षमता है इसका ज्ञान उपभोक्ता को होना आवश्यक है क्योंकि कभी कभी दृढ़ धातु भी साधारण आकस्मिक धक्के से टूट जाती है। उदाहरण के लिये कई प्रकार के इस्पात थोड़ा धक्का लगने पर टूट जाते हैं यद्यपि उनकी तनाव की दृढ़ता काफी अच्छी होती है। दूसरी ओर कम दृढ़ता वाले कुछ इस्पात अधिक संघात सहन कर सकते हैं और नहीं टूटते।

संघात सहनशीलता नापने की मशीन

इस गुण को नापने के लिये कई प्रकार के यंत्र निकले हैं जिनमें आइज़ाड (Izod) नामक यंत्र अधिक लोकप्रिय है। जिस धातु की जाँच करना हो उसके दो इंच लंबे और लगभग आध इंच वर्ग क्षेत्रफल वाले टुकड़े को यंत्र के निम्न भाग में लगी 'डाइ' (Die) में फँसा दिया जाता है। टुकड़े का निश्चित भाग उसके ऊपर निकला रहता है और हथौड़े की ओर उसकी सतह किंचित कटी रहती है इस प्रकार के टुकड़े का चित्र आइजाड यंत्र के चित्र के साथ दिया गया है। कटाव इत्यादि निश्चित नाप के अनुसार किया जाता है। निश्चित ऊँचाई से हाथौड़े को छोड़ने पर वह मुक्त होकर घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमने लगता है। मार्ग में पहिला आघात डाइ के बाहर निकला हुआ टुकड़ा सहता है और वह या तो टूट जाता है या मुड़ जाता है। परंतु उसको तोड़ने में हथौड़े की गति कम हो जाती है। हथौड़े की कितनी शक्ति व्यय हुई यह 'फुटपाउंड' में पीतल के अंकित माप खंड (Scale) पर घूमने वाली सूई से मालूम हो जाती है। सूई का घुमाव हथौड़े की गति से नियंत्रित होता है। यह संख्या जितनी अधिक हो, धातु उतना ही अधिक आघात सह सकती है।

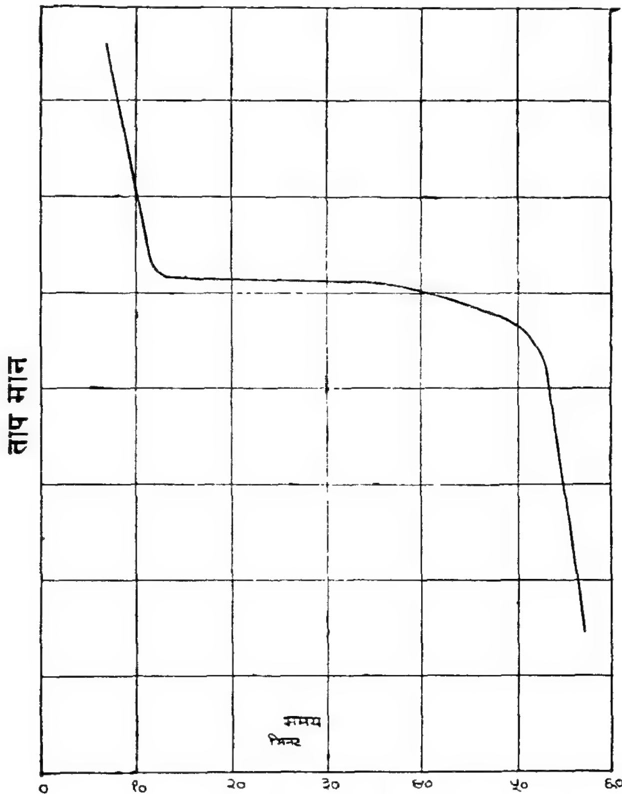
भंजनशीलता

साधारणत: धातुएँ भंजनशील नहीं होतीं परंतु अशुद्धियों की उपस्थिति तथा अनुचित तापोपचार के कारण वे भंजनशील हो जाती हैं। गंधक, फास्फरस, एंटिमनी, बिस्मथ इत्यादि अशुद्धियाँ धातुओं को कड़कीली बना देती हैं। लाल गर्म लोहे को पानी में बुझाने से वह भंजनशील हो जाता है।

अध्याय ४

अणुवीक्षण यंत्र द्वारा धातु का परीक्षण

धातु की बनावट और गुणों का परीक्षण भौतिक, रासायनिक आदि कई पद्धतियों से किया जाता है, परन्तु सबसे सरल और महत्त्वपूर्ण परीक्षण अणुवीक्षण



चित्र संख्या १२ शुद्ध धातु ठंडी होने पर बनने वाली रेखा

यन्त्र (Microscope) द्वारा होता है। जिस सिद्धांत समूह पर यह परीक्षण अधारित है उसका नाम मेटेलोग्राफी (Metallography) है। मेटेलोग्राफी भौतिक विज्ञान की ही एक शाखा है जिसके द्वारा धातुओं या धातु संकरों की आन्तरिक रचना अथवा उनपर तापोपचार के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

शुद्ध धातु निश्चित तापमान पर ठोस से द्रव या द्रव से ठोस रूप में परिवर्तित होती है। जब तक पूर्व रूप का किंचित भाग भी विद्यमान रहता है धातु का तापमान नहीं बदलता। इस नियम को चित्र सं० १२ पृष्ठ ३९ पर रेखा द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

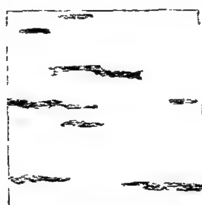
धातु संकरों के संबंध में यह नियम लागू नहीं होता। धातु संकर की एक धातु का दूसरी धातु के साथ कैसा आचरण है इस बात पर 'शीतल रेखा' (cooling curve) का आकार निर्भर रहता है। इन रेखाओं का बड़ा महत्त्व है। इनकी तथा अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा दीखने वाली धातु की रचना की सहायता से धातु (या धातु संकर) का रासायनिक संगठन, तापोपचार तथा यान्त्रिक उपचार का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो सकता है। रेखाओं के निर्माण के सम्बन्ध में यहां अधिक नहीं लिया जायगा। यह बहुत विस्तृत विषय है। इस विषय का ज्ञान हुए बिना अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा दीखने वाली धातु की आन्तरिक रचना अच्छी तरह नहीं समझी जा सकती।

धातु शास्त्री के प्रतिदिन के काम में सबसे अधिक सहायता देने वाला वैज्ञानिक साधन अणुवीक्षण यन्त्र है। उसकी सहायता से निरीक्षक धातु या धातु संकर की रचना (structure), निर्माण-इतिहास (manufacturing history) तापोपचार के प्रभाव तथा दिये हुए धातु के टूटने के कारण (failure) के विषय में बहुत कुछ जान सकता है। प्रयोगशाला में प्रयोग होने वाले अणुवीक्षण यन्त्र लघु पदार्थ को हजार गुना तक बढ़ा कर दिखा सकते हैं। 'आब्जेक्टिव' (objective) और 'आई पीस' (eye-piece) को आवश्यकतानुसार बदल कर अभिवर्धन (magnification) इच्छानुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है। कई अणुवीक्षण यन्त्रों के साथ केमरे लगे रहते हैं जिनसे धातु रचना के चित्र लिये जा सकते हैं।

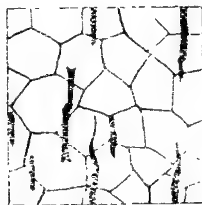
जिस धातु की जाँच करनी हो उसमें से करीब आध इञ्च लम्बा, आध इञ्च चौड़ा तथा पाव इंच मोटा टुकड़ा आरी से काट लिया जाता है। फिर उसकी एक सतह को रेती से समतल कर पहिले मोटे और फिर बारीक एमरी कागज (पालिश करने के खुरदरे कागज से) पालिश किया जाता है। अन्त में पालिश करनेवाले पाउडर (रूज) से पालिश कर उस सतह को आइने की तरह चमका दिया जाता है।

साधारणतः पालिश किये हुए नमूने के टुकड़े को अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा निरीक्षण कर यह देखा जाता है कि उसमें दरार (Cracks), छिद्र या

विजातीय द्रव्य का समावेश है या नहीं। पालिश किया हुआ पिटवाँ लोहा (wrought iron) अणुवीक्षण यन्त्र में कैसा दीखता है यह चित्र संख्या



चित्र सं० १३
केवल पालिश किया हुआ



चित्र सं० १४
पालिश तथा अम्लांकित किया हुआ

१३ व १४ में दर्शाया गया है। काली रेखाएँ धातुमैल है जो इस पदार्थ में सदैव मौजूद रहता है। कई प्रकार के ताँबे में उसका आक्साइड मिला रहता है जिसको अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखा जा सकता है। वास्तव में ताँबे में आक्साइड की मात्रा रासायनिक विश्लेषण की अपेक्षा अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा अधिक शीघ्रता से जानी जा सकती है।

केवल पालिश की हुई सतह के निरीक्षण से तापोपचार आदि का रहस्य नहीं मालूम हो सकता। इसके लिये उस सतह को 'एच' या अम्लांकित करना पड़ता है। अम्लांकन की विधि यह है कि पालिश की हुई सतह को उपयुक्त रासायनिक घोल में निश्चित समय तक डुबाया जाता है। इससे वह सतह चमकहीन हो जाती है। घोल की बनावट तथा अम्लांकन का समय अलग अलग धातु के लिए अलग अलग रहता है। साधारण इस्पात के अम्लांकन-घोल में ९८ प्रतिशत मद्यसार (alcohol) तथा २ प्रतिशत शोरे का अम्ल रहता है।

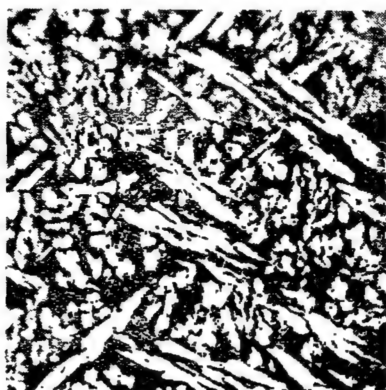
धातु की कणयुक्त रचना

एच की हुई सतह को अणुवीक्षण यंत्र द्वारा देखने से पूरी सतह पर बहुत से छोटे छोटे दाने या कण दिखाई देते हैं। चित्र संख्या १३ में पिटवाँ लोहे (wrought iron) का अम्लांकित करने के पहिले का चित्र है। अम्लांकित करने के बाद वह चित्र संख्या १४ जैसा हो जाता है। अम्लांकित करने पर कणों की अपेक्षा कणों की सीमाएँ अधिक प्रभावित होती हैं। 'एचेंट'—एच करने के घोल—द्वारा इन सीमाओं पर छिछली नालियाँ सी बन जाती हैं जो प्रकाश की किरणों को परिवर्तित नहीं कर सकतीं अतः वे अणुवीक्षण यंत्र में काली दीखती हैं। शुद्ध धातु में काली सीमा रेखाओं से घिरे हुए कण एक से दिखाई देते हैं।

धातु संकरों की रचना

घनविलय (Solid solution) जब एक धातु दूसरी धातु में मिला दी जाती है तब बहुधा दोनों धातुओं के कण इस प्रकार बिखरे रहते हैं कि उनकी पृथकता पहिचानी जा सकती है। किंतु कुछ धातुएँ (जैसे ताँबा और गिलट), आपस में इस तरह घुल मिल जाती हैं कि उनके कणों की पृथकता नहीं पहिचानी सकती। सब कण एक से दीखते हैं मानों ये शुद्ध धातु के कण हों। इस प्रकार के मेल का नाम 'घनविलय' है। तांबा और जस्ता एक सीमा तक, (० से ३९ प्रतिशत जस्ते तक) घनविलय बनाते हैं जिसका नाम 'आल्फा' घनविलय है। उसके बाद ४५·५ प्रतिशत तक आल्फा और 'बीटा' नामक दो घनविलय मौजूद रहते हैं। अणुवीक्षण यंत्र में ये अलग अलग देखे जा सकते हैं। बीटा आल्फा की अपेक्षा कड़ा और दृढ़ होता है। अतः यदि अच्छी श्रेणी के पीतल की बेलाई करनी हो तो उसकी बनावट में ३९ प्रतिशत से कम जस्ता रहना चाहिये।

चित्र संख्या १५ में पीतल, जिसमें ४० प्रतिशत जस्ता है, की अणु-



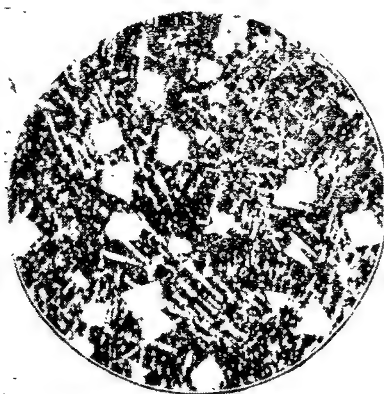
चित्र सं० १५ ६०।४० पीतल की सूक्ष्म रचना

वीक्षक रचना दिखाई गई है। इसमें हल्के कण आल्फा घनविलय के तथा गहरे बीटा घनविलय के हैं।

अंतर्धातु यौगिक (Inter metallic compound)

कई धातु संकरों मे अंतर्धातु यौगिक पाये जाते हैं। इनकी उत्पत्ति का कारण अलुमीनियम और तांबे के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। ठोस अलु-

मीनियम ५३० सें० पर करीब ५ प्रतिशत तांबा घोल सकता है किंतु वह साधारण तापमान पर ११२ प्रतिशत से कम तांबा घोल सकता है। इसलिये यदि ऐसा धातु संकर जिसमें ४ प्रतिशत ताँबा हो, ५३०° सें० से धीरे धीरे ठंढा किया जाय तो ५००° सें० के ठीक नीचे ऐसी स्थिति आती है कि अलुमीनियम ४ प्रतिशत तांबा घनविलय में नहीं रोक सकता और जैसे जैसे तापमान गिरता जाता है अधिकाधिक ताँबा अलग होता जाता है। यह अतिरिक्त ताँबा शुद्ध ताँबे के रूप में अलग नहीं होता बल्कि वह 'कापर एलूमिनेट' नामक 'अन्तर्धातु यौगिक' के रूप में अलग हो जाता है। साधारण तापमान तक पहुँचते पहुँचते केवल थोड़ा सा ताँबा घनविलय के रूप में बचा रहता है। अतः अणुवीक्षण यंत्र से देखने पर घनविलय के दाने तथा 'अंतर्धातु यौगिक' के कण अलग अलग दिखलाई पड़ते हैं। अंतर्धातु यौगिक कड़े होते हैं।



चित्र संख्या १६ बैबिट धातु

इस चित्र में **बैबिट** धातु (जिसमें सामान्यतः ८५ प्रतिशत राँगा १० प्रतिशत एन्टीमनी और ५ प्रतिशत ताँबा रहता है) की अणुवीक्षक रचना दी गई है। सफेद चौकोर भाग (एन्टीमनी स्टेनेट) तथा पतले और लम्बे भाग (कापर स्टेनेट) के अंतर्धातु यौगिक हैं।

यूटेक्टिक (Eutectic)

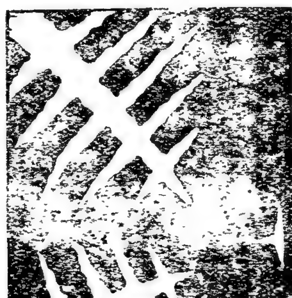
कई धातु संकरों में एक ऐसी बनावट मौजूद रहती है जिसमें उस धातु संकर का द्रवणांक दोनों में से प्रत्येक धातु के द्रवणांक से कम रहता है। उदाहरणार्थ

६२प्रतिशत सीसा और ३८ प्रतिशत राँगा का द्रवणांक १८३° सें० होता है जब कि सीसे का द्रवणांक ३२७° सें० और राँगे का २३२° सें० होता है।

इस प्रकार के धातु संकर का नाम 'यूटेक्टिक' है। इसकी रचना में एक के बाद दूसरी धातु की पतली पर्तें रहती हैं या एक धातु की पृष्ठ भूमि में दूसरी के छोटे-छोटे कण बिखरे रहते हैं।

डेंड्राइट (Dendrite)

जब पिघला हुआ धातु संकर जमने लगता है तब कई केंद्र में सूक्ष्म रवे बनने लगते हैं। ये धीरे-धीरे बढ़ते हैं और कुछ दिशाओं में इनकी शाखायें निकलने लगती हैं। इनका आकार वृक्ष की शाखाओं की तरह होता है। इस रूप का नाम 'डेंड्राइट' है। डेंड्राइट की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि धातु या धातु संकर ढाला गया था। यदि ढलाई के बाद एनीलिंग (Annealing) कर दी जाए तो 'डेंड्राइट' दूर हो जाते हैं। चित्र संख्या १७ में डेंड्राइट दिखाया गया है।



चित्र सं० १७ डेंड्राइट

इस अध्याय में मेटेलोग्राफी विषय को स्पर्श मात्र किया गया है तथा अणुवीक्षण यंत्र में धातु और विभिन्न प्रकार के धातु संकर कैसे दीखते हैं इस बात का अत्यंत स्थूल वर्णन किया गया है।

वास्तव में यह विषय विस्तृत है और इसमें बहुत सी नवीनताएँ जुड़ती गई हैं। अब अत्यधिक शक्तिशाली अणुवीक्षण यंत्र (जैसे एलेक्ट्रोन अणुवीक्षण यंत्र) जिनका अभिवर्धन (Magnification) एक लाख तक होता है; बन गये हैं। एक्सरे यंत्र भी इस दिशा में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

———

अध्याय ५

उच्चताप मापन

उष्ण पदार्थों का तापमान नापने के लिये पारदताप मापक यंत्र या दूसरे उच्चताप मापक यंत्र व्यवहार में लाए जाते हैं। इनमें पदार्थों के भौतिक गुणों का उपयोग होता है। साधारणतः पारदताप मापक (सुविधा के लिए 'मापक' के पश्चात् प्रयुक्त 'यंत्र' शब्द छोड़ दिया गया है) ३५०° से० तक काम देते हैं। लगभग इस तापमान तक काम में आनेवाले मापक यंत्रों को 'थर्मामीटर' या 'तापमापक' कहा जाता है। इसके उपरांत जो मापक काम में लाये जाते हैं उन्हें 'उच्चताप मापक' संज्ञा दी जाती है।



चित्र सं० १८

तापमान प्रत्यक्ष रूप से नहीं नापे जा सकते। तापमान नापने के सभी यंत्र गर्म पदार्थ के भौतिक गुण जनित परिवर्त्तनों पर अवलंबित हैं। इन परिवर्तनों को नाप कर तदनुरूप तापमान का हिसाब लगाया जाता है। उदाहरणार्थ गर्म,

होने पर धातु फैलती है। अब यदि धातु के प्रसार को किसी सूचिका द्वारा तापांक लिखित पट्ट पर दर्शाया जा सके तो हम धातु के ताप और प्रसार का समन्वय ढूँढ़ कर तापमान मालूम कर सकते हैं। उच्चताप का मापन निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित है :—

१—ताप का धातु-प्रसार पर प्रभाव।

२—ताप के परिवर्तन से धातु के विद्युत संचालन मात्रा में परिवर्तन।

३—ताप द्वारा तापयुग्म (Thermocouple) में इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स (E. M. F.) का आविर्भाव।

४—तप्त पदार्थ द्वारा ताप और प्रकाश का विकिरण और

५—शुद्ध पदार्थों के द्रवणांक।

इन सिद्धांतों पर अवलंबित कुछ तापमापक तथा तापमान की सीमाएँ निम्नलिखित सूची में दी हैं :

आधुनिक ताप मापक प्रसाधन

	प्रसाधन	तापमान की व्यावहारिक सीमा अंश सेन्टीग्रेड	
१.	पारद ताप मापक	४० से ३५०	द्रव का प्रसार
२.	पारद ताप मापक (स्फटिक या सिलिका नली तथा अत्यधिक दबाव)	३६ से ६००	” ”
३.	गैस प्रसार तापमापक (नाइट्रोजन)	१३० से ५४०	गैस का प्रसार
४.	धातु प्रसार मापक	० से ५००	ठोस पदार्थ का प्रसार
५.	अवरोध उच्च ताप-मापक	१८० से १०००	विद्युत् अवरोध का परिवर्तन

	प्रसाधन	तापमान की व्यावहारिक सीमा अंश सेन्टीग्रेड	प्रभाव
६.	ताप-विद्युत उच्च ताप मापक (Thermoelectric pyrometer		
	क. ली चैटलियर	० से १५००	ताप-विद्युत् प्रभाव
	ख. सस्ती धातु	० से ११००	ताप-विद्युत् प्रभाव
७.	सेगर कोन	६०० से २०००	द्रवण
८.	विकिरण उच्च ताप मापक	४०० से ऊपर	विकिरण (संपूर्ण)
९.	आलोक उच्च ताप मापक	६५० से ऊपर	विकिरण (एक रंगीय)

मानांकन (Calibration)

मान-अंकन का तात्पर्य है तप्त पदार्थ के तापमान का मापक के भौतिक परिवर्तन से समन्वय स्थापित करना। उपयोग में लाने के पूर्व प्रत्येक मापक का मानांकन कर लेना चाहिए। मानांकन के पश्चात् मापक में अंकित पट्टी लगाई जा सकती है जो सीधे तापमान दर्शा सकती है अथवा रेखा (Curve) खींची जा सकती है जिससे तापमान जाना जा सकता है। मान अंकन की दो पद्धतियाँ हैं :

१ —प्राथमिक (Primary)

२—द्वितीय (Secondary)

१—प्राथमिक—

जिसमें निश्चित तापमान, जैसे शुद्ध पदार्थों के द्रवणांक, की सहायता से मान-अंकन वक्र रेखा (Calibration curve) पर विन्दु निर्धारित किये जाते हैं।

२—द्वितीय—

जिसमें तापमापक द्वारा लिये हुए तापमान का मिलान किसी पूर्व मानांकित मापक के तापमान से किया जाता है।

निम्नलिखित अंक प्राथमिक मानांकन (Primary calibration) की दृष्टि से उपयोगी हैं :—

१—बर्फ का द्रवणांक ... ... ०° सें०
२—वाष्प के द्रवीकरण का तापांक
  एक वायुमंडल के दबाव पर ... ... १००° सें०
३—राँगे का द्रवांक ... ... २३१·८° सें०
४—सीसे ,, ... ३२७·४° सें०
५—जस्ते ,, ... ४१९·४° सें०
६—एन्टीमनी ,, ... ६३०·५° सें०
७—शुद्ध नमक का ,, ... ८०१·०° सें०
८—ताँबे ... ... १०८३·५° सें०
९—गिलट ... ... १४५२·०° सें०

तापमान मालूम करने की अत्यन्त सरल और व्यावहारिक रीति में तप्त पदार्थ का रंग ध्यान से देखा जाता है और उसके अनुसार तापमान का अनुमान लगाया जाता है। निम्नलिखित सूची में स्थूल तापमान दिये गये हैं :—

रंग	तापमान सें०
न्यूनतम दृष्टव्य लाल	४७५°
धूमिल लाल (Dull red)	५५०° से ६२५°
रक्ताभ (Full cherry red)	७७०°

रंग	तापमान सें०
हल्का लाल (Light red)	८५०°
नारंगी	९००°
पूर्ण पीला	९५०° से १०००°
श्वेत	११५०°

उच्च ताप मापक दो विभागों में बाँटे जा सकते हैं :—

१—तापयुग्म (Thermocouples) और अवरोध उच्च ताप मापक (Resistance pyrometer) जिन्हें तप्त पदार्थ या स्थान के सम्पर्क में लाया जाता है।

२—आलोक और विकिरण उच्च ताप मापक जिन्हें ताप के उद्गम से कुछ दूरी पर रखकर उद्गम के ताप या प्रकाश की लहरों की सहायता से तापमान जाना जाता है।

पारद ताप मापक

सामान्य पारद ताप मापक 'उष्णता के कारण पारे के प्रसार के गुण' पर अवलंबित हैं जिनमें ताप के अनुसार एक निश्चित अनुपात में पारे का प्रसार होता है। इस प्रसार को नाप कर ताप मालूम किया जाता है। इस तापमापक की सीमाएँ –४०° सें० (पारद का दृढ़ांक) से करीब ३५०° सें० पारद का (कथनांक) तक है। किंतु मापक नलिका के अंदर गैस भर कर पारद को अधिक दबाव में रख कर उसका कथनांक शीशे के पिघलने के तापमान तक बढ़ाया जा सकता है। किंतु यह उतना ठीक नहीं है जितने इस तापमान के लिये प्रयुक्त होने वाले दूसरे तापमापक। इस प्रकार के गैस भरे पारदताप मापकों का उपयोग भट्ठों से निकलने वाली गर्म गैसों का (या अन्य ऐसे कार्यों के लिये जहाँ बहुत ठीक तापमान आवश्यक न हो) तापमान जानने के लिये किया जाता है। इनकी बनावट सरल होती है और इन्हें सरलतापूर्वक कहीं भी ले जाया जा सकता है।

ताप विद्युत् उच्चताप मापक

इस प्रकार के उच्चताप मापक में निम्नलिखित मुख्य भाग होते हैं :—

१—दो भिन्न धातुओं या धातु-संकरों के बने तार जो एक छोर पर आपस में जुड़े रहते हैं।

२—मुक्त छोरों ((Free end) को मापक (indicator) के साथ जोड़ने के तार और

३—मापक (indicator) जिससे तापयुग्म द्वारा निर्मित इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स (e. m. f.) पढ़ी जा सके।

तापयुग्म के मुक्त छोरों को मापक के साथ जोड़ देने पर उच्च ताप मापक उपयोग में लाने योग्य हो जाता है। इसके जुड़े हुए छोर को 'उष्ण संगम' (Hot junction) और मुक्त छोरों को शीतल संगम (Cold junction) कहा जाता है।

सिद्धांत—

यदि शीतल संगम का तापमान अपरिवर्तित रखा जाय, (कमरे या पिघलते बर्फ के तापमान पर) तो 'उष्ण संगम' का तापमान तथा उसके द्वारा निर्मित इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स (e. m. f.) निश्चित अनुपात में होते हैं।

शीतल संगम का तापमान अपरिवर्तित रहने पर उष्ण संगम के तापमान और इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स में एक निश्चित सम्बन्ध रहता है। तापयुग्म के दोनों तार ऐसे पदार्थ के होने चाहिये जो इस सम्बन्ध को एक सरल रेखा में व्यक्त कर सकें। इस प्रकार उष्ण संगम के तापमान और इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स पर आधारित ऐसी वक्र रेखा खींची जा सकती है जिससे तापमान पढ़ा जा सकता है।

तापयुग्म के दोनों तार ताप और विद्युत् अवरोधक पदार्थ, जैसे चीनी मिट्टी या स्फटिक की नलिका इत्यादि के द्वारा अलग अलग रखे जाते हैं। एक प्रकार के तापयुग्म में एक धातु का तार एस्बस्टस में लपेट कर दूसरी धातु की बनी नलिका में रखा जाता है। इस प्रकार नलिका कीमती तार को टूटने से से बचाती है और साथ ही तापयुग्म के एक तार का भी काम देती है। नलिका के एक छोर के साथ तार को जोड़ दिया जाता है।

साधारणतः नीचे लिखी धातुएँ या धातुसंकर तापयुग्म बनाने के काम आते हैं :—

१—**कीमती धातुएँ**—प्लेटिनम और प्लेटिनम रोडियम का धातु संकर।

२—**सस्ती धातुएँ**—लोहा, ताँबा, कान्स्टेन्टन, गिलट, नाइक्रोम, क्रोमेल, अलूमेल इत्यादि।

कीमती धातुओं के तापयुग्म का उपयोग कम होता है क्योंकि एक तो उनका मूल्य अधिक होता है, दूसरे उनमें बहुत कम इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स (e. m. f.) का निर्माण होता है जिसके कारण सूक्ष्म और कीमती मापक की आवश्यकता पड़ती है।

सिद्धांततः भिन्न धातुओं के बने कोई भी दो तार तापयुग्म बना सकते हैं पर उनकी कीमत, इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स के निर्माण, धातुओं की जंग, अम्लादि से रक्षा की क्षमता (Corrosion resistance) और धातुओं के द्रवणांक आदि व्यवहारिक दृष्टियों से धातुओं का चुनाव सीमित हो जाता है। कई युग्मों में तापमान बढ़ने के साथ, एक सीमा के पश्चात, इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स बढ़ने के बजाय घटने लगती है और घटते-घटते शून्य तक पहुँच जाती है यद्यपि तापमान बढ़ता ही रहता है। यदि तापमान और भी बढ़ा दिया जाय तो इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स विरुद्ध दिशा में जाने लगती है। लोहे-ताँवे तथा टंगस्टन मालिब्डिनम युग्मों का आचरण कुछ ऐसा ही होता है।

निम्नलिखित तापयुग्म सामान्यतः उपयोग में लाये जाते हैं—

क—**बहुमूल्य धातु** (Noble metal) शुद्ध प्लेटिनम तथा ९० प्रतिशत प्लेटिनम और १० प्रतिशत रोडियम का धातु-संकर इसको 'लो शेटेलियर' युग्म कहा जाता है क्योंकि इसका आविष्कार उन्होंने किया था।

ख—**अल्पमूल्य धातु** :—

१—लोहा तथा कान्स्टेंटन—कान्स्टेंटन ६० प्रतिशत तांबा और ४० प्रतिशत गिलट का धातु-संकर है।

२—क्रोमेल अलूमेल—क्रोमेल में करीब ९० प्रतिशत गिलट और १० प्रतिशत क्रोमियम तथा अलूमेल में ६४ प्रतिशत गिलट २ प्रतिशत अलुमीनियम ३ प्रतिशत मैंगेनीज तथा १ प्रतिशत सिलिकन रहता है।

३—ताँबा—कांस्टेंटन।

ऊपर दी हुई बनावटों में विभिन्न निर्माता किंचित हेर-फेर कर देते हैं।

साधारण तापयुग्म के कुछ विशिष्ट गुण

क्रम	युग्म	तापमान की सीमाएँ ० सें०	विशिष्ट
१	प्लेटिनम तथा प्लेटिनम-रोडियम	३०० से १५००	यह लघ्वीकर वातावरण में दूषित हो जाता है। सभी तापमानों पर इसकी रक्षा के लिये इसे एक नलिका से आवृत रखा जाता है। यह बहुत सच्चा तापमान देता है और अनुसंधान तथा उच्च ताप के लिये बहुधा काम में लाया जाता है।
२	लोहा-कांस्टेंटन	६५० सें० तक	६५०° सें० से ऊपर शीघ्रता से इसका आक्साइड बनने लगता है। इसे ठीक से आवृत रखना चाहिये। ६५०° सें० और ६५०° सें० के बीच इसका उपयोग आक्सीजन-विहीन वातावरण में करना चाहिये।
३	क्रोमेल-अलूमेल	१०५० सें० तक लगातार व्यवहार के लिये और १३५० सें० तक यदाकदा व्यवहार के लिये	इसकी मानांकन रेखा प्रायः सरल होती है। यह बहुत ही टिकाऊ होता है। आक्सीजनमय वातावरण में १३००° सें० तक काम दे सकता है परंतु लघ्वीकर

क्रम	युग्म	तापमान की सीमाएँ ० सें०	विशिष्ट
			वातावरण में शीघ्र भंजनशील हो जाता है। इस्पात के तापोपचार के लिये बहुत उपयुक्त है।
४	ताँबा-कांस्टेंटन	लगातार व्यवहार के लिये ३५.० सें० तक एवं यदाकदा व्यवहार के लिये ५३० सें० तक	यह शून्य से कम तापमानों में भी काम देता है। इसका उपयोग अधिक नहीं होता क्योंकि तापमान की इस परिधि में पारद तापमापक पर्याप्त सस्ता और सुविधाजनक होता है। इस्पात के टेंपरिंग के काम आ सकता है। शून्य से नीचे के ताप-मान नापने के लिये उपयोगी है।

ताप युग्मों की रक्षक नलिकाएँ

ताप युग्मों को आक्सीजन और अम्लीय धूम्रों से बचाना आवश्यक होता है। यह बचाव धातु या तापावरोधक पदार्थों की नली (sheath) से बहुत अच्छे प्रकार हो सकता है। नलिकाओं में निम्नलिखित गुण होना चाहिये :—

१. ताप का उच्च परिचालन, जिससे ताप परिवर्तनों का अंतर कम हो।

२. उच्च ताप सह सकने की क्षमता हो।

३. उच्च तापमान पर अपनी कठोरता स्थायी रख सके।

४. गैस उसके आरपार बहुत कम जा सके।

५. धक्के इत्यादि से शीघ्र न टूटे।

ताप युग्मों का मानांकन

अल्पमूल्य धातुओं के तापयुग्मों का मानांकन उसी कोटि के आदर्श (Standard) तापयुग्म या आदर्श बहुमूल्य तापयुग्म के द्वारा किया जाता

है। उन दोनों अज्ञात एवम् आदर्श तापयुग्मों को एस्बेस्टस की रस्सी से एक साथ बांधकर भट्टी या पिघली हुई धातु राशि में गर्म किया जाता है। विभिन्न तापमानों पर एक साथ दोनों तापयुग्मों के द्वारा उत्पन्न इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स (e m. f.) पढ़ी जाती है और मानांकन वक्र रेखा तैयार की जाती है।

जब आदर्श युग्म अप्राप्य हो तब अज्ञात युग्म का मानांकन स्थायी तापमानों जैसे विविध शुद्ध धातुओं के द्रवणांक की सहायता से किया जाता है।

बहुमूल्य ताप युग्मों को मानांकित करने के पूर्व करीब १५००° सें० पर एक घन्टे तक अनील (Anneal) कर लेना चाहिये।

मापक या सूचक (Indicators)

इलेक्ट्रो मोटिव फोर्स 'मिली वोल्टमीटर' या 'पोटेंशोमीटर' (Potentic-meter) के द्वारा नापी जाती है। इनकी मापक पट्टियों (Scales) पर इ० मो० फो० या तापमान, या दोनों, की माप लिखी जा सकती है। जिन यंत्रों की मापक पट्टियों पर केवल तापमान अंकित हों उन्हें उसी तापयुग्म के साथ काम में लाना चाहिये जिसके साथ वे मानांकित किये गये हों।

अवरोध उच्चताप मापक

धातुओं का विद्युत् परिचालन ताप के अनुसार परिवर्तित होता है। इस सिद्धांत पर यह यंत्र अवलंबित है।

प्लेटिनम अवरोध उच्चताप मापक संभवतः उच्चताप मापकों में सबसे अधिक सच्चा (Accurate) है। इसकी तापमान सीमाएँ—१८०° सें० से १०००° सें० तक होती हैं।

इस उच्चताप मापक में समान मोटाई के एक विद्युत अवरोधक तार की छोटी लच्छी (Coil) अभ्रक के ऊपर लपेटी रहती है। इस लच्छी को घुंडी (Bulb) कहा जाता है। यह घुंडी धातु या ताप अवरोधक नलिका के बंद छोर में सुरक्षित रखी जाती है। इस घुंडी से, नलिका में से होते हुए, बिजली के तार यंत्र पर लगे दो पेचों तक जाते हैं। इन पेचों को दूसरे बिजली के तार अवरोध मापक यंत्र जैसे—'व्हीटस्टोन ब्रिज' से जोड़ते हैं। स्थूल मापों के लिये यह मान लेना चाहिये कि प्लेटिनम का अवरोध और तापमान प्रत्यक्षतः समानुपात में है। अवरोध तार कभी कभी निकल-संकर, ताँबा या पलेडियम के होते हैं।

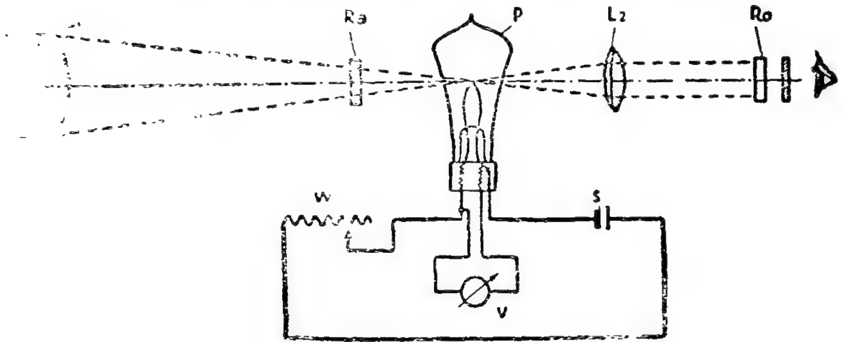
आलोक उच्चताप मापक यन्त्र.

ये उच्चताप मापक नीचे लिखे पहिले या दूसरे सिद्धांत पर आधारित हैं :

१. मानांकित यन्त्र के बल्ब की रोशनी आवश्यकतानुसार घटा बढ़ा कर भट्ठी से

निकले हुए आलोक के बराबर की जाती है। उदाहरणार्थ 'लीड्स और नार्थरप्' का ज्योति उच्चताप मापक।

२. तप्त पदार्थ का आलोक यन्त्र के ऊपर पड़ता है। स्वयं उच्च तापमापक यन्त्र



चित्र सं० १६ (क) आलोक उच्चताप मापक का सिद्धांत

में लगे विशेष प्रकार के साधन द्वारा तप्त पदार्थ से प्राप्त आलोक को यंत्र के अंदर घटा-बढ़ा कर यन्त्र के स्थिर आलोक के बराबर किया जाता है। उदाहरणार्थ 'केम्ब्रिज' प्रकार का यन्त्र (Cambridge polarizing type optical pyrometer)

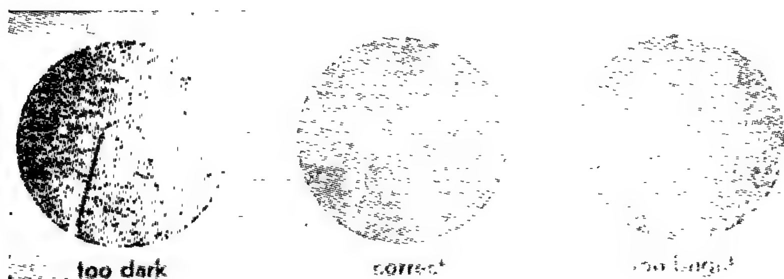
लीड्स और नार्थरप् आलोक उच्च तापमापक

चित्र में यह उच्च तापमापक तथा इसकी बनावट दिखाई गई है।

इस उच्च तापमापक को भट्ठी की ओर लक्ष्य किया जाता है। जिससे भट्ठी या तप्त पदार्थ का आलोक क्षेत्र इस यन्त्र की सीध में आ जाता है। उद्गम के आलोक को लेन्स द्वारा केंद्रित कर बत्ती 'P' के आलोकित तार टंग्स्टन फिलामेंट के धरातल पर लाया जाता है। टंग्स्टन फिलामेंट में प्रवाहित विद्युत् की मात्रा घटा बढ़ा कर उसका आलोक उद्गम के आलोक के बराबर किया जाता है।

यह तुलना 'आई पीस' (eye-piece) के साथ एक लाल शीशा लगाकर लाल एक रंगीय प्रकाश के साथ की जाती है। जब यंत्र और उद्गम के आलोक समान हो जाते हैं तब तार (फिलामेंट) ओझल हो जाता है। जब उद्गम का आलोक (अतः तापमान) अधिक रहता है तब तार काले रंग का और जब वह कम रहता है तब तार शुभ्र प्रकाश युक्त दिखाई देता है।

जब तापमान १४००° सें० से अधिक हो जाता है तब आलोक इतना तीव्र होता है कि प्रत्यक्षतः देखने में कठिनाई पड़ती है, यद्यपि प्रकाश शीशे से छनकर आता है। ऐसी स्थिति में एक तटस्थ फिल्टर 'आब्जेक्टिव' और आलोक



चित्र सं० १९ (ख) (१) आलोक तंतु कम प्रकाशमान; (२) लुप्त आलोक तन्तु; (३) आलोक तन्तु अधिक प्रकाशमान।

के प्रतिबिम्ब के मध्य लगा दिया जाता है। यह तटस्थ फिल्टर उद्गम के आलोक की तीव्रता निश्चित परिमाण में कम कर देता है।

मानांकन

आलोक उच्च तापमापक का मानांकन इस प्रकार किया जाता है कि किसी तीव्र आलोकमय उद्गम का तापमान लेने में कितना विद्युत् प्रवाह खर्च होता है यह देख लिया जाता है। फिर उसी उद्गम का तापमान किसी आदर्श उच्च ताप मापक से लिया जाता है। इस प्रकार विद्युत् प्रवाह की मात्रा और तत्सम्बन्धी तापमान की सूची बना ली जाती है या वक्र रेखा खींच ली जाती है।

यदि आदर्श उच्च ताप मापक न मिले तो शुद्ध पदार्थों के द्रवणांक पर उद्गम के आलोक के लिये जितना विद्युत् प्रवाह आवश्यक है उसे पढ़ लिया जाता है।

केम्ब्रिज आलोक उच्चताप मापक.

(Combridge Polarizing type of Optical Pyrometer.)

इस उच्चताप मापक में तप्त पदार्थ से निकले हुए आलोक की सहायता से तापमान ज्ञात किया जाता है।

इस उच्च तापमापक को एक तिपाई पर लगा दिया जाता है। तिपाई के पैरों की लम्बाई घटाई बढ़ाई जा सकती है। यन्त्र में एक नली और उसके एक छोर पर एक चक्र रहता है। नली के बाहरी छोर पर दो छिद्र होते हैं। एक छिद्र में

से तप्त पदार्थ से प्रकाश की किरणें आती हैं और दूसरे में से बिजली की एक आदर्श (Standard) छोटी बत्ती से प्रकाश आता है। ये दोनों प्रकाश की किरण राशियां नली में बनी हुई आलोक श्रृंखला (Optical System) में से गुजरती है और विभिन्न धरातलों में पोलराइज़ (Polarized) हो जाती है तथा एक रंगीय (Monochromatic) भी बन जाती है। तत्पश्चात् वे एक निकोल प्रिज़्म (Nicol Prism) में से होती हुई 'आई पीस' (जिसकी सहायता से देखा जाता है) में जाती हैं। प्रकाश की दोनों राशियां दो अर्धवृत्तों में विभाजित होकर एक पर्दे को प्रकाशित करती हैं। आलोक श्रृंखला को आवश्यकतानुसार तब तक घुमाया जाता है जब तक कि दोनों अर्धवृत्तों का आलोक एक सा नहीं हो जाता। आलोक श्रृंखला के साथ साथ नली के छोर पर लगे हुए अंकित चक्र पर एक सुई घूमती है। चक्र पर तापमान अंकित रहता है और सुई जिस अंक पर रुकती है वह तप्त पदार्थ का तापमान बताता है।

चूँकि दोनों अर्धवृत्त एक ही रंग के होते हैं अतः आलोक का मिलान सूक्ष्मता से किया जा सकता है। तापमान की सचाई (Accuracy) बिजली की बत्ती के प्रकाश की स्थिरता पर निर्भर है। यदि बैटरी के वोल्टेज में परिवर्तन होने से बत्ती का प्रकाश अस्थिरता दिखलाता है तो उसे 'एमीटर' और 'रियोस्टेट' (Rheostat) की सहायता से ठीक कर लिया जाता है।

अधिक काल तक काम में लाने पर बत्ती का प्रकाश मंद हो जाता है। इसकी परीक्षा के लिये यंत्र के साथ एक आदर्श लैंप रहता है जिसमें 'एमिल एसिटेट' नामक तरल पदार्थ जलाया जाता है। बत्ती की रोशनी को 'रियोस्टेट' की सहायता से ठीक कर उसे लैंप की ज्योति के बराबर कर दिया जाता है। 'रियोस्टेट' के उपयोग से विद्युत् प्रवाह की मात्रा में भी हेर फेर होता है। इस मात्रा को पढ़ लिया जाता है और तप्त पदार्थ का तापमान लेते समय इतनी ही मात्रा में विद्युत् प्रवाहित की जाती है।

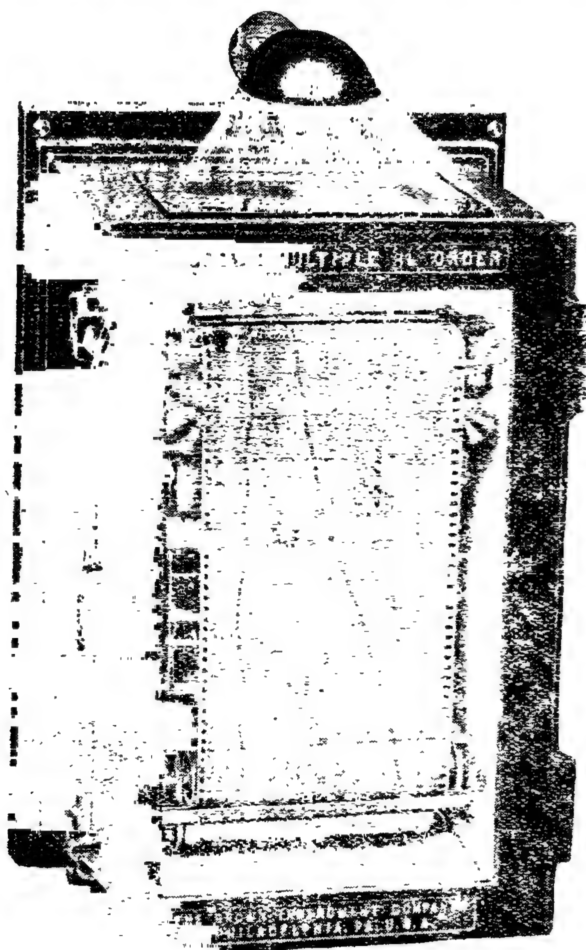
विकिरण उच्च तापमापक (Radiation Pyrometers)

इस प्रकार के यंत्र में एक 'मिली वोल्ट मीटर' और दूर दर्शक यन्त्र (Telescope) रहते हैं। दूर दर्शक यंत्र में एक 'नतोदर दर्पण' (Concave mirror), एक रिफ्लेक्टर तथा एक सूक्ष्म तापविद्युतयुग्म रहते हैं। कुछ दूरी से अत्यधिक तप्त पदार्थ की ओर इस यन्त्र को रखा जाता है। विकिरण ताप (Radiant heat) का एक भाग दर्पण पर गिरता है। दर्पण उस ताप राशि को संकीर्ण और तीव्रतर बनाकर युग्म के केन्द्र पर केन्द्रित करता है। युग्म तप्त होकर विद्युत् प्रवाह का निर्माण करता है जिसे मिली वोल्ट मीटर से नाप लिया

जाता है। इस नाप और तापमान का संबंध सूची या वक्र रेखा द्वारा पढ़कर तप्त पदार्थ का तापमान मालूम किया जाता है अथवा 'मिली वोल्ट मीटर' को ही तापमान के अंकों में अंकित कर सीधे तापमान पढ़ा जा सकता है।

रेकार्डिङ्ग उच्च तापमापक—

कई कामों में तापमान लगातार मालूम होता रहना चाहिये। ऐसे यंत्रों का निर्माण हुआ है जो अपने आप कागज पर तापमान दर्शाने वाली रेखा खींचते



चित्र सं० २० रेकार्डिंग उच्च ताप मापक

जाते हैं। इन्हें 'रेकार्डिंग उच्च तापमापक' कहा जाता है। सभी उच्च तापमापक अर्ध रेकार्डिंग बनाये जा सकते हैं। ताप-विद्युत्, अवरोध, और विकिरण उच्च तापमापक पूर्ण रेकार्डिंग बनाये जा सकते हैं।

ताप विद्युत्-उच्च तापमापन में दो प्रकार के सूचक (indicators) उपयोग में लाये जाते हैं—१. मिली वोल्ट मीटर और २. पोटेंशोमीटर। इन पर आधारित दो प्रकार के रेकार्डर होते हैं। रेकार्ड समय-तापमान वक्र रेखा (time temperature curve) होता है। मिली वोल्ट मीटर कोटि के उच्च तापमापक में थोड़ी-थोड़ी देर में घूमते हुए कागज़ पर निशान बन जाता है जो तापमान दर्शाता है। पोटेन्शोमीटर कोटि के उच्च तापमापक में रेकार्ड अखन्डित वक्र रेखा के रूप में होता है।

सेगर कोन. (Seger cones)

ये सबसे अधिक उपयोग में आने वाले द्रवणशील उच्च तापमापक होते हैं। ये विभिन्न अनुपात में सिलिका, चूना, सोडियम आक्साइड, पोटेशियम-आक्साइड, अलूमिना इत्यादि के मिश्रण से निर्मित ढाई इंच लम्बे तिकोने पिरामिड होते हैं। प्रत्येक प्रकार का कोन एक खास तापमान पर नरम हो जाता है और उसका ऊपरी भाग झुक कर टेढ़ा हो जाता है। जिस तापमान पर उसका सिरा झुककर मूल के धरातल को छूने लगता है वह कोन का निर्दिष्ट तापमान है। चीनी-मिट्टी (ceramic) उद्योग में सेगरकोनों का अत्यधिक उपयोग होता है। २०° सें० के अन्तर से ६००° सें० से लेकर २०००° सें० तापमान तक सेगर कोन बनाये जाते हैं। इन पर नम्बर पड़ा रहता है और नम्बर के अनुसार तापमान भिन्न भिन्न होता है।

उच्च तापमापन के कुछ उपयोग

कार्य	उच्च तापमापक की श्रेणी
लौह-ब्लास्ट फर्नेस	
तरल लोहा	आप्टिकल
तरल धातु-संकर	,,
गर्म वायु	अल्पमूल्य धातु का तापयुग्म
सिरे (Top) पर की गैसें	,, ,, ,,

ब्वायलर

दहन स्थान	आप्टिकल
इकोनोमाइज़र, जल गर्म करनेवाले भाग, चिमनी की गैसें	अल्पमूल्य धातु का तापयुग्म

सिरेमिक्स

भट्ठियाँ	अल्पमूल्य या बहुमूल्य धातु के ताप युग्म, सेगर कोन।

शीशा

गलानेवाली भट्ठियाँ	आप्टिकल। अल्पमूल्य या बहु-मूल्य धातु के तापयुग्म
एनीलिंग भट्ठियाँ	अल्पमूल्य धातु का ताप युग्म
आलोकित तार (जैसे बिजली की बत्ती का तार)	आप्टिकल (लुप्तमान फिलामेंट कोटि का।)

इस्पात

भट्ठी में गली हुई धातु	आप्टिकल
इंगट (Ingot) या फोर्जिङ्ग ...	आप्टिकल या विकिरण

तापोपचार

कठिनकरण (Hardening) ...	अल्पमूल्य धातु का ताप युग्म

कुछ महत्त्वपूर्ण तापमान

सूर्य (केंद्र भाग)	१,८०,००००० ° सें०
सूर्य (बाह्य वातावरण) ...	७००० ° सें०
विद्युत् आर्क	३६०० ° सें०
आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला	२८०० ° सें०
आक्सी एसीटेलीन ज्वाला	२४०० ° सें०

लोहा और इस्पात

टूयर (Tuyere) के पास	१८५०° सें०
ब्लास्ट फर्नेस से निकली धातु	१५६० से १६२५° सें०
ओपन हार्थ फर्नेस	१५६० से १७२५° सें०
प्रोड्यूसर में से निकली गैस	७००° सें०
रीजेनरेटर से बाहर आने वाली गैस	१२००° सें०
चिमनी में जाने वाली गैस	३००° सें०
घरिया द्वारा इस्पात बनाने की भट्टी	१६००° सें०
रोलिंग के समय इंगट	११००° सें०

ताँबा

ताँबा की ब्लास्ट फर्नेस	१२६०° सें०
परिशोधन भट्ठी	११२०° सें०

सीमेंट

घूमने वाली फर्नेस	१६८४° सें०

अध्याय ६

रिफ्रेक्ट्री या अग्नि प्रतिरोधक पदार्थ

उच्च तापीय (Pyrometallurgical) क्रियाओं में भट्ठियों, घरियों, चिमनियों इत्यादि का तापमान पर्याप्त ऊँचा होता है। इसके अतिरिक्त हानिकारक गैसें और धातुमैल भी मौजूद रहते हैं जिनके प्रभाव को साधारण इमारती ईंटें नहीं सह सकतीं और शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। इसलिये भट्ठियों इत्यादि की बनावट में ऐसी ईंटों का प्रयोग होता है जो अत्यन्त उच्च ताप सह सकें और साथ ही हानिकारक गैस और धातुमैल के प्रभाव से खराब न हों। इस प्रकार के पदार्थों को 'रिफ्रेक्ट्री' कहा जाता है।

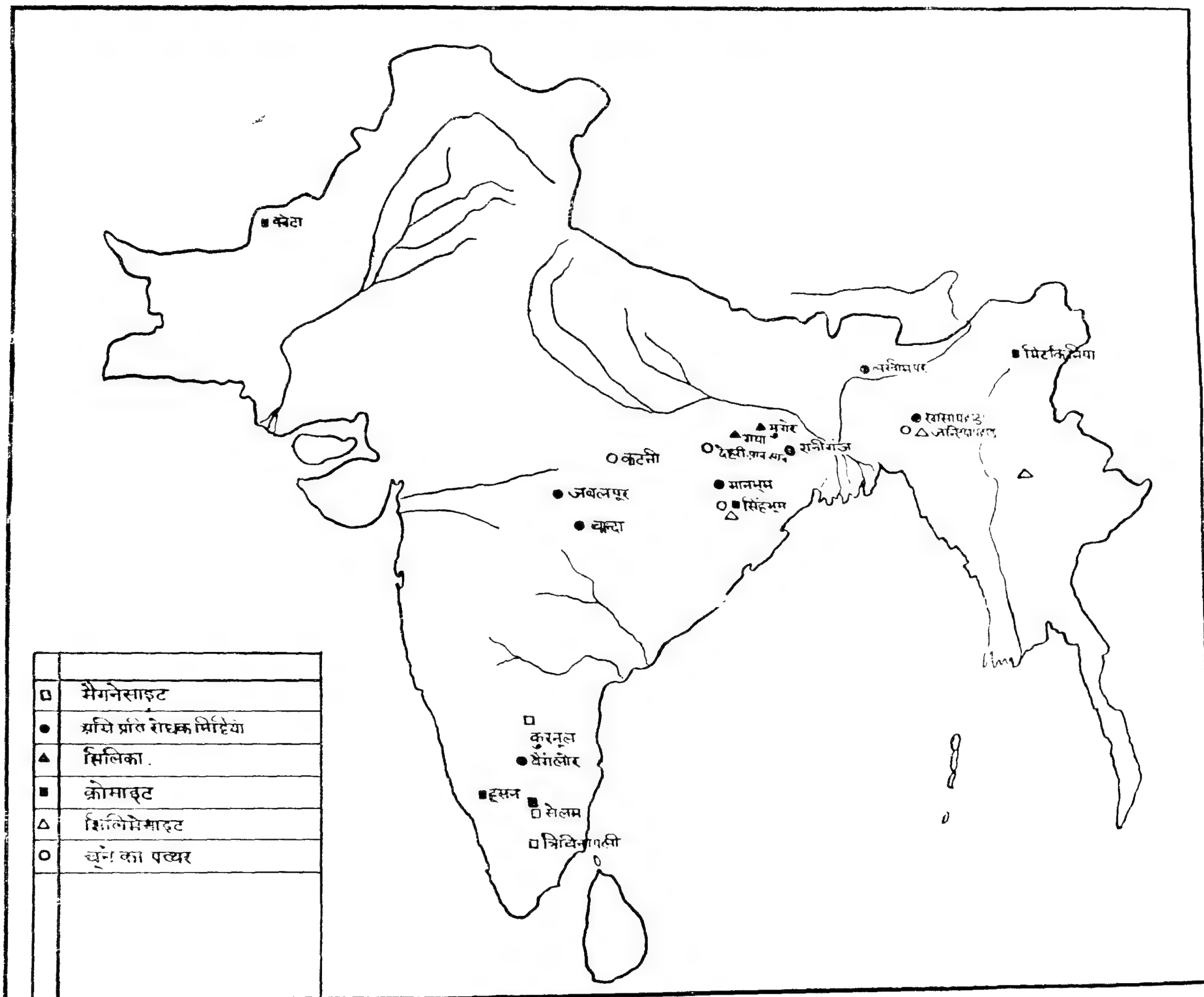
भट्ठियों में साधारणतः बाहर की ओर निम्नकोटि की ईंटें (अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी की ईंटें या कभी कभी साधारण इमारती ईंटें) लगाई जाती हैं और अन्दर की ओर जहाँ उच्चताप, ज्वाला, गैस और धातुमैल रहते हैं, अच्छी ईंटें लगाई जाती हैं। ये ईंटें एक या अनेक प्रकार की होती हैं। ईंटों के मूल्य और तापमान की विविधता के अनुसार भट्ठी के विभिन्न भागों में अलग-अलग प्रकार की ईंटों का उपयोग होता है।

आदर्श रिफ्रेक्ट्री में निम्नलिखित गुण होने चाहिये :—

१. ताप से न पिघले और न टूटे या चटके।
२. तापमान के आकस्मिक घटाव बढ़ाव (Thermal shocks) के परिणाम को सह सके।
३. पर्याप्त कठोर हो और घर्षण सह सके।
४. ताप के प्रभाव से उसका आकार बहुत कम बढ़े या घटे। ताप का परिचालन न करे और न गैसों को आरपार होने दे।
५. जिन पदार्थों के सम्पर्क में आवे उनके साथ उसकी कोई रासायनिक क्रिया न हो।

परन्तु शायद ही ऐसा कोई रिफ्रेक्ट्री पदार्थ हो जिसमें ये सब के सब गुण पाये जाते हों। कई ऐसे पदार्थ हैं जिनमें अधिकांश उपर्युक्त गुण पाये जाते हैं। रासायनिक आचरण के अनुसार रिफ्रेक्ट्री पदार्थों के तीन भेद होते हैं :—

१. अम्लीय, २. क्षारीय और ३. तटस्थ।



रिफ्रेक्ट्री पदार्थों के उत्पत्ति-केंद्र

अम्लीय रिफ्रेक्ट्री

ये सिलिका या सिलिका-प्रधान होते हैं तथा क्षारों के साथ सहज ही मिश्रित हो जाते हैं। इनमें स्फटिक (Quatz), बालू , गैनिस्टर इत्यादि प्रमुख हैं। अधिकांश अग्नि प्रतिरोधक मिट्टियाँ (Fire clays) अम्लीय होती है।

क्षारीय रिफ्रेक्ट्री

इनमें धातुओं के आक्साइड बहुतायत से होते हैं। मुक्त सिलिका नहीं रहता। मैग्नेसाइट, डोलोमाइट और चूने का पत्थर प्रमुख क्षारीय रिफ्रेक्ट्री है।

तटस्थ रिफ्रेक्ट्री.

यह न तो सिलिका के साथ मिश्रित होते हैं और न आक्साइडों के साथ। इस कारण भट्ठी के आन्तरिक भागों में इनकी ईंटें बहुत सन्तोष प्रद काम देती मैं। परन्तु महंगी होने के कारण साधारण भट्ठियों में इनका उपयोग कम होता है। ग्रेफाइट, क्रोमाइट आदि मुख्य तटस्थ रिफ्रेक्ट्री हैं।

निम्नलिखित सूची में सामान्य रिफ्रेक्ट्री पदार्थ, उनके रासायनिक संगठन, द्रवणांक इत्यादि दिये गये हैं।

नाम	रा० सूत्र	रासायनिक संगठन	द्रवणांक सें०	श्रेणी
सिलिका	SiO_2	१००प्रतिशत सिलिका	१७३०	अम्लीय
चीनी मिट्टी	$Al_2O_3.2SiO_2$	४६ ,, Al_2O_3		
		५४ ,, SiO_2	१७००करीब	,,
सिलिमेनाइट	$Al_2O_3 \cdot SiO_2$	६३ ,, Al_2O_3		
		३७ ,, SiO_2	१८००करीब	,,
मुलाइट	$3Al_2O_3 2SiO_2$	७२ ,, Al_2O_3		
		२८ ,, SiO_2	१६००	,,
अल्यूमिना	Al_2O_3	१०० ,, Al_2O_3	२०५०	,,

नाम	रा० सूत्र	रासायनिक संगठन	द्रवणांक सें०	श्रेणी
चूना	CaO	१०० प्रतिशत CaO	२५७०	क्षारीय
मैग्नीशिया	MgO	१०० ,, MgO	२८००	,,
क्रोमाइट	$FeO. Cr_2O_3$	३२ ,, FeO ६८ ,, Cr_2O_3	२२५०	तटस्थ
ज़र्कोनिया	ZrO_2	१०० ,, ZrO_2	२७००	,,
ग्रेफाइट	C	१०० ,, C	५००० से उपर	,,

प्रमुख रिफ्रेक्ट्री पदार्थों के उत्पत्ति केन्द्र भारत के मान चित्र में दिखाये गये हैं।

(चित्र सं० २१ देखिये)

अम्लीय रिफ्रेक्ट्री—

ये दो प्रकार के होते हैं—

१—सिलिका के बने हुए।

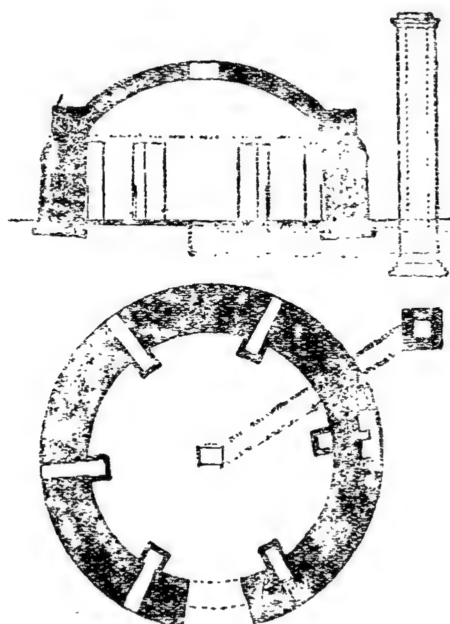
२—अलुमीनियम सिलिकेट या मिट्टी के बने हुए।

शुद्ध सिलिका १७३०° सें० पर पिघलता है परन्तु क्षारीय पदार्थ के सम्पर्क में गर्म करने पर सिलिकेट बन जाता है जो कम तापमान पर पिघलता है। इस कारण रिफ्रेक्ट्री के काम में आनेवाले सिलिका में क्षार की उपस्थित अवांछनीय होती है। सिलिका क्वार्टज़ाइट (Quartzite), बालू (Sand) और गैनिस्टर के रूप में मिलता है।

गैनिस्टर प्राकृतिक रूप में निकलने वाला पत्थर है जिसमें ९८ प्रतिशत सिलिका रहता है। इससे ईंटें बनाई जाती हैं तथा विकृत भट्ठियों की मरम्मत की जाती है। बिहार प्रांत के गया और मुंगेर जिले में उत्तम कोटि का सिलिका निकलता है।

सिलिका ईंटों का उत्पादन

ये ईंटें बिल्लौरी पत्थर से बनाई जाती हैं। बिल्लौरीको बारीक पीस कर उसमें १ प्रतिशत या २ प्रतिशत चूने का पानी मिलाया जाता है। चूने के पानी से सिलिका के कण आपस में चिपक जाते हैं। इस मिश्रण को लोहे के साँचे में ढालकर ईंटें बना ली जाती हैं और उन्हें मंद आँच पर सुखाया जाता है। यह इस प्रकार होता है कि ताज़ी ईंटें एक विशाल कमरे के फर्श पर क्रम से फैला दी जाती हैं। फर्श के नीचे सुरंगों में से गर्म हवा या भाप दौड़ाई जाती है जिससे फर्श भी गर्म हो जाता है। अंत में सुखाई ईंटों को गुंबज के आकार की भट्टियों में १५००° सें० या अधिक तापमान पर सात से दस दिनों तक पकाया जाता है।



चित्र सं० २२ रिफ्रेक्ट्री ईंट पकाने की भट्ठी

पकाने की क्रिया तीन क्रमों (Stages) में होती है।

१—जलीय अंश का वाष्पीकरण	३००° सें०
२—आक्सीकरण	९००° सें०
३—मणिभीकरण (रवे बनाना)	१५००-१७००° सें०

सिलिका ईंट का विश्लेषण द्रवणांक १७००° सें०		ईंट बनाने योग्य पदार्थ का विश्लेषण	
सिलिका	६६·७ प्रतिशत	सिलिका	६७·० प्रतिशत
अलूमिना	०·७५ ,,	अलूमिना	१·२५ ,,
लौह आक्साइड	०·५ ,,	लौह आक्साइड	०·७५ ,,
चूना	२·० ,,	चूना	०·५ ,,
मैग्नीशिया	०·०५७	मैग्नीशिया	०·५ ,,

सिलिका ईंटों के गुण

कम तापमान पर पकाई हुई सिलिका ईंटें उच्च तापमान पर बढ़ जाती हैं। कारण यह है कि सिलिका के तीन रूपांतर (Allotropic modifications) होते हैं :—(१) कार्ट्ज़ (Quartz) (२) ट्रिडीमाइट (Tridymite) (३) क्रिस्टोबेलाइट (Crystobalite)।

कार्ट्ज़

८७०° सें० के नीचे सिलिका का जो स्थायी रूपांतर (Stable form) होता है वह कार्ट्ज़ कहलाता है। इस तापमान के ऊपर वह ट्रिडीमाइट या क्रिस्टोबेलाइट के रूप में परिवर्तित हो जाता है और उसका घनफल पर्याप्त बढ़ जाता है।

ट्रिडीमाइट.

यह ८७०° सें० और १४७०° सें० के बीच सिलिका का स्थायी रूपांतर है परंतु जब क्वार्ट्ज़ को ८७०° सें० के किंचित ऊपर तप्त किया जाता है तब पहले क्रिस्टोबेलाइट बनता है जो बाद में ट्रिडीमाइट में परिवर्तित हो जाता है। एक बार ट्रिडी माइट बन जाने पर वह लौटकर क्वार्ट्ज़ के रूप में परिवर्तित नहीं हो सकता।

क्रिस्टोबेलाइट.

यह १४७०° सें० और १७३०° सें० (द्रवणांक) के बीच सिलिका का स्थायी रूपांतर है। क्वार्ट्ज़ से ट्रिडीमाइट बनते समय भी इसकी उत्पत्ति होती है। जब ट्रिडीमाइट का रूपान्तर क्रिस्टोबेलाइट में होता है तब घनफल बढ़ जाता है। एक बार क्रिस्टोबेलाइट बन जाने पर वह ट्रिडीमाइट या क्वार्ट्ज़ में रूपान्तरित नहीं होता। इसलिये सिलिका की कच्ची ईंट पकाने पर कम घनत्व के इन रूपान्तरों के कारण घनफल बढ़ जाता है।

स्पष्ट है कि यदि सम्पूर्ण सिलिका उचित तापमान पर पकाकर ट्रिडीमाइट या क्रिस्टोबेलाइट में रूपान्तरित हो जाय तो ईंट को काम में लाते समय तपने पर उसके आकार में बहुत स्वल्प वृद्धि होती है और इस प्रकार सिलिका ईंट के व्यवहार में आने वाली सब से बड़ी कठिनाई हल हो जाती है। उत्तम रीति से पकाई हुई सिलिका की ईंट को अणुवीक्षण यन्त्र से देखा जाय तो केवल ट्रिडीमाइट और क्रिस्टोबेलाइट दिखायी पड़ेंगे।

अम्लीय गुण के कारण सिलिका की ईंटें क्षारीय धातुमैल की रासायनिक क्रिया का प्रतिरोध नहीं कर सकतीं। सिलिका की ईंटें बहुत कठोर और तापावरोधक होती हैं। उच्चताप और अधिक दबाव पर (१५००° सें० और ५० पौंड प्रति वर्ग इंच तक) भी ये अच्छी तरह बोझ सँभाल लेती हैं परन्तु यदि जल्दी जल्दी तापमान घटता बढ़ता रहे तो ये ईंटें चटक जाती हैं और सन्तोषजनक काम नहीं दे सकतीं। अतः ये निम्नलिखित कामों के योग्य नहीं हैं :—

१ भट्ठियों के उन भागों की लाइनिंग[1] में जो ठन्डी हवा के सम्पर्क में आती है, यथा जिन खिड़कियों से ईंधन या कच्चा माल झोंका जाता है।

२ जो भट्ठियां अक्सर ठन्डी कर दी जाती हैं (जैसे सोना, चांदी, पीतल, इत्यादि गलाने वाली घरिया भट्ठियां) उनकी लाइनिंग में।

३. मध्यम तापमान (८००° सें० के करीब) पर काम आनेवाली एनीलिंग या रोस्टिंग (Annealing or roasting) भट्ठियों की लाइनिंग में।

भट्ठी के जिन भागों में एक-सा उच्च तापमान बना रहता है उन भागों के लिये ये ईंटें सबसे अधिक उपयुक्त हैं। उदाहरण—दहन स्थान (Fire place) ईंधन सेतु (Fire bridge) अम्लीय और क्षारीय 'ओपेनहार्थ' तथा वैद्युत् भट्ठियों की छत, ताँबा गलाने और शोधन करनेवाली भट्ठियाँ इत्यादि।

---

१. लाइनिंग (Lining) का मतलब ईंटों की उस तह से है जो धातु या ईंधन के सम्पर्क में रहती है।

जिन सिलिका ईंटों को बनाते समय रवों को परस्पर आबद्ध करने में मिट्टी का उपयोग होता है उन्हें कार्ट्ज़ाइट ईंट कहा जाता है और जिनमें चूने का उपयोग किया जाता है वे सिलिका ईंटें कहलाती हैं। दृढ़ता और तापावरोध की दृष्टि से सिलिका ईंटें कार्ट्ज़ाइट ईंटों से उत्तम होती हैं।

अग्नि प्रतिरोधक मिट्टियाँ

ये प्राकृतिक रूप में मिलती हैं और अलुमीनियम सिलिकेट का अशुद्ध रूप हैं। शुद्ध रूप में इनकी बनावट $Al_2O_3 \cdot 2SiO_2 \cdot 2H_2O$ है। प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा फेल्स्पार नामक शिलाएँ विकृत (Decompose) होकर अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी बन जाती हैं। इनमें १० से १५ प्रतिशत तक यौगिक जल रहता है। ये दो प्रकार की होती हैं—(१) प्लास्टिक मिट्टी और (२) फ्लिंट मिट्टी। फ्लिंट बहुत कठोर और अत्यधिक तापावरोधक होती है। भारत में बिहार, उड़ीसा और जबलपुर (म० प्रदेश) इनकी उत्पत्ति के मुख्य केंद्र हैं।

अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टियों में निम्नलिखित अशुद्धियाँ सामान्यतः पाई जाती हैं जो तापावरोध को घटा देती हैं।

१—अविकृत फेल्स्पार के क्षार।

२—बालू और कंकड़।

३—लौह आक्साइड, लौह सिलिकेट और लौह सल्फाइड।

४—केल्शियम सिलिकेट या कार्बोनेट।

५—मैग्नीशियम सिलिकेट या कार्बोनेट।

सबसे अधिक हानिकारक क्षार और क्षारीय आक्साइड वे हैं जो दोहरे सिलिकेट बनाते हैं और इस प्रकार द्रवणांक कम कर देते हैं।

अग्नि प्रतिरोधक ईंटों (Fire bricks) का उत्पादन

इसकी पद्धति सिलिका ईंट के उत्पादन की भाँति है। बारीक पीसी हुई मिट्टी निश्चित अनुपात में जल के साथ 'पगमिल' (Pug mill) में सान दी जाती है। मिश्रण को साँचों में दबा कर ईंट बनाई जाती है और फिर उन्हें सुखा कर पका लिया जाता है।

ईंटों की सिकुड़न नियंत्रित करने के लिये करीब २ प्रतिशत जली हुई मिट्टी या पुरानी ईंटें—जिसे 'ग्राग' (Grog) कहा जाता है अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी

के साथ मिलाई जाती है। फ्लिंट और प्लास्टिक मिट्टियों के परस्पर अनुपात को घटा-बढ़ा कर ईंट के गुण नियंत्रित किये जा सकते हैं।

अग्नि प्रतिरोधक ईंटों के गुण

मिट्टी की बनावट, फ्लिंट और प्लास्टिक मिट्टियों के अनुपात, 'ग्राग' की मात्रा तथा निर्माण पद्धति इत्यादि की विभिन्नता के कारण इन ईंटों के गुण भी एक से नहीं होते। ये किंचित् अम्लीय होती हैं। इनका स्थान तटस्थ और अम्लीय रिफ्रेक्ट्री के मध्य में समझना चाहिये। ये क्षारीय धातु मैल के संपर्क से खराब हो जाती है।

अग्नि प्रतिरोधक ईंटें ताप से बहुत कम बढ़ती हैं और सिलिका ईंटों के मुकाबिले में तापमान के घटाव बढ़ाव का प्रभाव अच्छी तरह सह सकती हैं। ये तापावरोध में सिलिका ईंटों से हीन परंतु मूल्य में सस्ती होती हैं। इनका उपयोग निम्नलिखित स्थानों में होता है :—

१—रिवर्बेरेट्री भट्ठी (reverberatory furnace) के निर्माण में ; जहाँ मध्यम तापमान रहता है (जैसे एनीलिंग, रीस्टिंग, रीहीटिंग, भट्ठियों में) और सिलिका जैसी उच्च कोटि की महँगी ईंटों की आवश्यकता नहीं रहती।

२—जो भट्ठियाँ अक्सर ठंडी कर दी जाती हैं उनकी लाइनिंग में जैसे—ताँबा, पीतल, चाँदी इत्यादि की घरिया भट्ठियों में।

३—फ्लू (flue) अर्थात् वे रास्ते जिनमें से प्रज्ज्वलित गैस या तप्त वायु जाती है लाइनिंग में।

४—रीजेनेरेटिव भट्ठियों (regenerative furnace) की जाली (checker work) में।

५—लोहा, ताँबा, सीसा इत्यादि की ब्लास्ट फर्नेस की लाइनिंग में।

क्षारीय रिफ्रेक्ट्री

मेग्नेसाइट सर्वोत्तम क्षारीय रिफ्रेक्ट्री है। शुद्ध रूप में इसका द्रवणांक २८००° सें० और इसकी ईंट का द्रवणांक २१६५° सें० होता है। आस्ट्रिया और हंगरी दुनिया के अधिकांश देशों को मेग्नेसाइट निर्यात करते हैं। भारत में मैसूर रियासत में मेग्नेसाइट की पहाड़ियाँ हैं। भारतीय मेग्नेसाइट बहुत शुद्ध होता है इस कारण ईंट बनाने के लिये इसमें कुछ लौह

खनिज (Fe_2O_3) मिलाना पड़ता है जिससे इसकी बनावट आवश्यकतानुसार हो जाय।

पूर्ण रूप से दग्ध (dead burnt) मेग्नेसाइट का क्षारत्व बहुत कम होता है और यह उच्च तापमान (१७००° सें०) पर भी सिलिका को विकृत नहीं करता इसलिये क्षारीय ओपनहार्थ भट्टी में डोलोमाइट (जिसका क्षारत्व अधिक होता है) और सिलिका ईंटों के बीच इसकी ईंटों की एक दो पर्त दे दी जाती है।

१५००° सें० पर इसकी दृढ़ता कम हो जाती है और तापमान के आकस्मिक परिवर्तनों से ये ईंटें खराब हो जाती हैं। भट्ठी के जो भाग क्षारीय धातुमैल के संपर्क में रहते हैं (जैसे बेसिक ओपनहार्थ और बेसिक बेसिमर कन्वर्टर के हार्थ और पेंदे में) वहाँ इन ईंटों का उपयोग किया जाता है।

लौह ऑक्साइड की उपस्थिति के कारण इसका रंग गहरा कत्थई होता है। ये ईंटें सिलिका ईंटों से भी महंगी होती हैं इसलिये इनका उपयोग कम होता है।

चूना

यह अत्यन्त ऊँचे तापमान पर भी नहीं गलता। आक्सीहाइड्रोजन की ज्वाला (तापमान २८०० सें०) से भी यह नहीं द्रवित होता। दुर्गुणों के कारण इसका उपयोग रिफ्रेक्ट्री ईंट बनाने में नहीं होता। यह प्लेटिनम इत्यादि गलाने के काम आता है।

डोलोमाइट

यह कैल्शियम और मेग्नीशियम का दोहरा कार्बोनेट है। भारत में यह बहुतायत से पाया जाता है। 'बेसिक ओपनहार्थ' भट्ठी के किनारे और पेंदे की मरम्मत में बहुत काम आता है। यह मैग्नेसाइट से सस्ता होता है। अतः उसके स्थान पर उपयोग में लाया जाता है।

बाक्साइट

शुद्ध बाक्साइट Al_2O_3 है परन्तु प्रकृति में यह लौह आक्साइड, टाइटेनिया तथा अन्य अशुद्धियों से युक्त रहता है। शुद्ध बाक्साइट का द्रवणांक २०१०° सें० है किन्तु प्राकृतिक रूप में मिलने वाला बाक्साइट कठिनाई से १०००° सें० से ऊपर का तापमान सह सकता है। यह मध्यप्रान्त, बिहार, बंबई और कश्मीर में बहुतायत से मिलता है।

तटस्थ रिफ्रेक्ट्री

चूँकि यह अम्लीय एवं क्षारीय दोनों पद्धतियों में काम आता है इसलिये यह उत्तम रिफ्रेक्ट्री है। तटस्थ रिफ्रेक्ट्री पदार्थ प्रकृति में कम पाये जाते हैं अतः उनका उपयोग कुछ विशिष्ट कामों में ही होता है। ग्रेफाइट और क्रोमाइट प्रमुख तटस्थ रिफ्रेक्ट्री हैं।

ग्रेफाइट

यह शुद्ध कार्बन का एक रूप है। यह चूनामय और सिलिकामय शिलाओं के साथ मिला हुआ लंका, साइबेरिया, आस्ट्रिया, इंग्लैंड, ब्राज़िल और सं० रा० अमेरिका में पाया जाता है। उच्चतम तापमान पर भी यह नहीं गलता किन्तु जलकर कार्बन मोनो-ऑक्साइड तथा कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस बन जाता है। इसका प्रधान उपयोग घरिया बनाने में होता है। धातु गलानेवाली काले रंग की घरिया ग्रेफाइट की ही होती है।

क्रोमाइट

शुद्ध क्रोमाइट २१८०° सें० पर गलता है। यह सिंह भूम जिला (बिहार) मैसूर तथा बलूचिस्तान में मिलता है। इसका रंग प्रायः काला होता है। टाटा और बर्न कम्पनी रानीगंज के कारखाने में इसकी ईंटें बनती हैं। क्रोमाइट की ईंटें अधिकतर अम्लीय और क्षारीय ईंटों को अलग रखने के लिये बीच में लगा दी जाती हैं। बेसिक ओपनहार्थ भट्ठी में इनका बहुत उपयोग होता है। ये ईंटे बहुत महंगी होती हैं। यदि इन ईंटों को शीघ्रता से ठन्डा किया जाय तो ये विच्छिन्न (disintegrate) हो जाती हैं। उच्चतापमान पर ये अधिक बोझ नहीं संभाल सकतीं। इनका द्रवणांक १५३०° सें० है।

काएनाइट और सिलीमेनाइट.

काएनाइट और सिलीमेनाइट की रासायनिक बनावट एक ही होती है ($Al_2O_3SiO_2$) यद्यपि इनके भौतिक गुण विभिन्न हैं। भारत में ये आसाम के खासी पहाड़ और बिहार के सिंह भूम जिले में पाये जाते हैं। कुछ वर्षों से सिलीमेनाइट ईंटों का कई उद्योगों में अधिकाधिक उपयोग हो रहा है।

सिलीमेनाइट ईंटों के गुण.

१—द्रवणांक १८००° सें इस तापमान पर ईंटें अच्छा काम देती हैं।

२—ताप के प्रभाव से बहुत ही कम फैलती हैं।

३—रासायनिक आचरण में तटस्थ या किंचित् अम्लीय होती हैं तथा कई प्रकार के धातुमैलों के संसर्ग से ये खराब नहीं होतीं।

४—आक्सीकर और लघ्वीकर वातावरण (oxidising and reducing atmospheres) में एक सा काम देती हैं।

५—तापमान के आकस्मिक परिवर्तनों से अप्रभावित रहती हैं।

इन गुणों के कारण ये ईंटें कई प्रकार की औद्योगिक भट्टियाँ बनाने के काम आती हैं। उदाहरण—शीशा बनाने की भट्ठी, इस्पात बनाने की भट्ठी, चीनी मिट्टी का सामान बनाने की भट्ठी।

ज़र्कोनिया

इसका द्रवणांक २६५०° सें० है। यह त्रावणकोर में निकलता है। भारत में इसकी ईंटों का व्यवहार कम होता है क्योंकि इसका प्राप्ति स्थान औद्योगिक क्षेत्रों से बहुत दूर है।

रिफ्रेक्ट्री का चुनाव

उपयुक्त रिफ्रेक्ट्री के चुनाव में इन बातों का ध्यान रखना चाहिये—

१—भट्ठी का तापमान।

२—तापमान का स्थायित्व।

३—धातुमैल की रासायनिक क्रिया।

४—उच्च तापमान पर बोझ और

५—ईंटों का मूल्य।

सामान्यतः लाइनिंग उसी प्रकार की होनी चाहिये जिस प्रकार का धातुमैल हो अर्थात् यदि धातुमैल अम्लीय हो तो लाइनिंग भी अम्लीय होनी चाहिये।

यदि कोई भट्ठी समय समय पर चालू की जाती हो तो सिलिका और मेग्नेसाइट जैसी ईंटें, जो ताप के घटाव-बढ़ाव से खराब हो जाती हैं, काम में न लाना चाहिये। इस काम के लिये अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी की ईंट अच्छी ठहरती है अतः रीजेनरेटिव जाली, ताँबा, पीतल आदि गलाने की घरिया, भट्टियों की खिड़कियाँ इत्यादि इन्हीं से बनाई जाती हैं।

जस्ते के रिटार्ट (Retorts) बाहर से गर्म किये जाते हैं अतः वे ऐसे रिफ्रेक्ट्री से बनाये जाते हैं जो ताप का अच्छा संचालक हो और साथ ही उच्च-ताप पर बोझ संभाल सके। ऐसा पदार्थ अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी के साथ कोक या ग्रेफाइट मिला कर उपलब्ध होता है।

कुछ रिफ्रेक्ट्री जिस पदार्थ के संपर्क में आते हैं उसे सोख लेते हैं, जैसे—क्रोमाइट की ईंटें ताँबा और चाँदी को सोख लेती हैं और ये धातुएँ वापस नहीं निकाली जा सकतीं। अतः जहाँ पिघले ताँबा और चाँदी के संपर्क की संभावना हो वहाँ क्रोमाइट की ईंटों का व्यवहार नहीं करना चाहिये।

निम्नलिखित सूची में विभिन्न कार्यों में काम आने वाले रिफ्रेक्ट्री पदार्थों का विवरण दिया गया है।

फर्नेस	रिफ्रेक्ट्री पदार्थ
१. लौह ब्लास्ट फर्नेस	समूची लाइनिंग विविध श्रेणी की अग्नि प्रतिरोधक ईंटों की होती है।
२. अम्लीय बेसिमर कन्वर्टर	
(क) ढाँचा	गैनिस्टर
(ख) वायुमार्ग	अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी
३. क्षारीय बेसिमर कन्वर्टर	निस्तप्त डोलोमाइट या मैग्नेसाइट
४. अम्लीय ओपनहार्थ भट्ठी	सिलिका ईंटें
रीजेनरेटिव दीवाल और चेकर वर्क	अग्नि प्रतिरोधक ईंटें
५. क्षारीय ओपनहार्थ भट्ठी	
(क) छत	सिलिका ईंटें
(ख) बगल की दीवालें	,, ,,
(ग) हार्थ	डोलोमाइट या मैग्नेसाइट
(घ) बगल की दीवालों के मैग्नेसाइट और सिलिका की लाइनिंग के बीच में	क्रोमाइट या सिलिमेनाइट
(च) तला (bottom)	अग्नि प्रतिरोधक ईंटों की एक या दो पर्त के ऊपर मेग्नेसाइट ईंटें
(छ) गैस व वायु ऊपर जाने का मार्ग	सिलिका ईंटें

फर्नेस	रिफ्रैक्ट्री पदार्थ
(ज) रीजेनरेटिव दीवालें	अग्नि प्रतिरोधक ईंटें
(झ) मेहराबदार छत	,, ,, ,,
(ट) रीजेनरेटिव चेकर वर्क	,, ,, ,,
(ठ) चिमनी और फ्लू (गैस मार्ग)	,, ,, ,,
६. क्षारीय वैद्युत् भट्ठी	सिलिका
(क) छत	इस्पात की दीवाल से सटकर अग्नि प्रतिरोधक ईंटों की एक पर्त और उसके बाद मैग्नेसाइट की एक पर्त
(ख) पेंदा और बगलें	अग्नि प्रतिरोधक ईंटें
७. क्यूपोला	
८. रीहीटिंग (पुनर्दाहक) भट्ठी	
(क) छत	सिलिका
(ख) हार्थ	क्रोमाइट या मैग्नेसाइट
९. एनीलिंग भट्ठी	क्वार्ट्ज़ाइट ईंटें
१०. डब्बू या कलछी (laddle)	प्रथम श्रेणी की अग्नि प्रतिरोधक ईंटें
११ मिक्सर	सिलिका या प्रथम श्रेणी की अग्नि प्रतिरोधक ईंटें
१२. 'बाई प्राडक्ट कोक ओवेन'	अग्निप्रतिरोधक ईंटें
१३. बी हाइव कोक ओवेन	अच्छी श्रेणी की सिलिका ईंटें
१४ ताँबा गलाने की भट्ठी	क्वार्ट्ज़ाइट ईंटें

फर्नेस	रिफ्रेक्ट्री पदार्थ
(क) छत	सिलिका
(ख) बगल की दीवालें	सिलिका या मेग्नेसाइट
(ग) हार्थ	सिलिका
१५. ताम्र ब्लास्ट फर्नेस	अग्निप्रतिरोधक ईंटें
१६. ताम्र 'फोर हार्थ सेटलर्स' (Copper forehearth settlers)	जहाँ संक्षारण (corrosion) का डर रहता है वहाँ मेग्नेसाइट या क्रोम ईंट अन्यथा सिलिका ईंट
१७. ताम्र क्षारीय कन्वर्टर	ढाँचे से सटकर अग्निप्रतिरोधक मिट्टी, अन्दर की ओर मेग्नेसाइट
१८. ताम्र शोधन भट्ठी	
(क) छत	सिलिका
(ख) बगल की दीवालें	धातुमैल की सतह तक मेग्नेसाइट, उसके ऊपर सिलिका
(ग) हार्थ	यदि ताँबा शुद्ध हो तो सिलिका अन्यथा मेग्नेसाइट
१९. सीसा ब्लास्ट फर्नेस	
(क) शाफ्ट	अग्निप्रतिरोधक मिट्टी
(ख) घरिया	मेग्नेसाइट जिसके पीछे अग्निप्रतिरोधक मिट्टी रहती है।
२०. जस्ते के रिटार्ट	कोक या ग्रेफाइट तथा अग्निप्रतिरोधक मिट्टी का मिश्रण
२१. राँगा ब्लास्ट फर्नेस	अग्निप्रतिरोधक ईंटें

अध्याय ७

ईंधन और भट्ठी

धातु विज्ञान में ईंधन और भट्ठियों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। ईंधन से ताप मिलता है और ताप के द्वारा खनिज को गलाकर धातु प्राप्त होती है तथा अन्य आवश्यक कार्य सम्पन्न होते हैं, अतः धातु-विज्ञ को ईंधन का सम्यक् ज्ञान होना चाहिये। ईंधन का उचित उपयोग वैज्ञानिक ढंग की बनी हुई भट्ठियों में ही हो सकता है इसलिये भट्ठियों की बनावट के सिद्धांत तथा व्यावहारिक रूप की भी जानकारी होनी चाहिये।

ईंधन उस पदार्थ को कहते हैं जो वायु के आक्सीजन के संयोग से उपयोग में आ सकने योग्य ताप की सृष्टि करे। ताप तीन प्रकार से प्राप्त होता है।

१—कार्बनिक (Organic)

२—अकार्बनिक (Inorganic)

३—वैद्युत् ताप (Electrical)

१—अधिकांश ईंधन प्रथम स्रोत से प्राप्त होता है। जैसे—लकड़ी, लकड़ी का कोयला, कोयला, कोक, गैस तथा पेट्रोलियम आदि। ये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वनस्पतियों से प्राप्त होते हैं इसलिये इन्हें कार्बनिक ईंधन कहा जाता है। इनकी रासायनिक बनावट में अधिकांश कार्बन और हाइड्रोजन होता है।

२—अकार्बनिक ताप उस ताप को कहते हैं जो रासायनिक पदार्थों और आक्सीजन के योग से उत्पन्न होता है। जैसे—इस्पात बनाने की बेसिमर पद्धति में सिलिकन, फास्फोरस, गंधक इत्यादि वायु के आक्सीजन से मिलकर आक्साइड बनाते हैं और इस क्रिया में ताप उत्पन्न करते हैं। इसका नाम 'रासायनिक ताप' भी है।

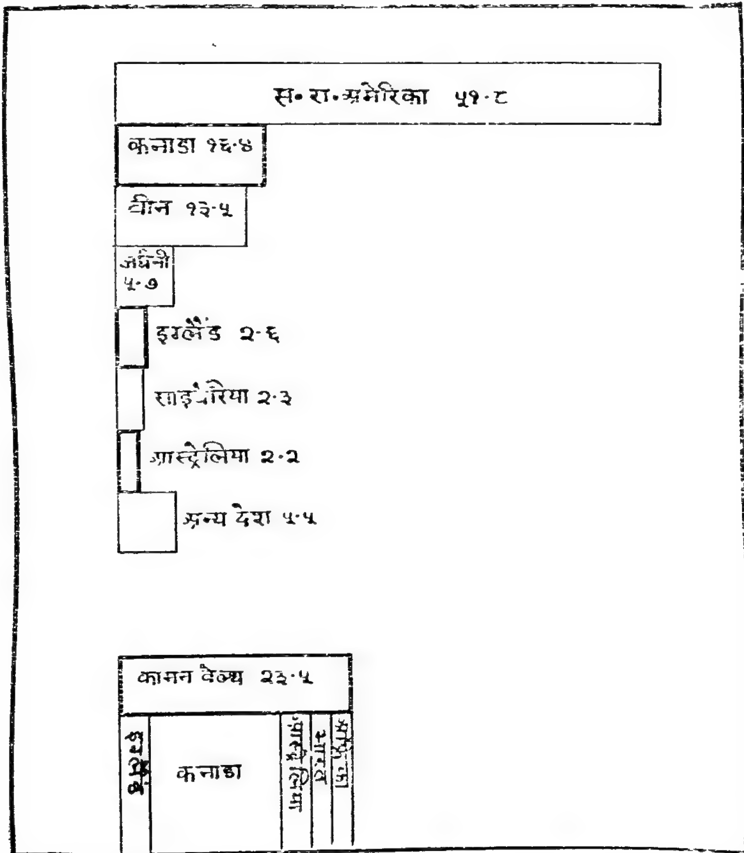
३—विद्युत् को हम ईंधन की संज्ञा दें या न दें पर धातु विज्ञान में दिनोंदिन वैद्युत् ताप का उपयोग बढ़ता जा रहा है। जल विद्युत् के निर्माण से इस दिशा में और भी प्रगति हो रही है।

अध्ययन की दृष्टि से ईंधन का निम्नलिखित विभाजन अधिक सुविधा-जनक होगा।

१.—ठोस ईंधन—

(क) प्राकृतिक—लकड़ी, पीट, कोयला (पत्थर का कोयला) ।

(ख) निर्मित—लकड़ी का कोयला, कोक और ब्रिकेट इत्यादि ।



चित्र सं० २३ संसार में कोयले का उत्पादन ।

२—द्रव ईंधन—

(क) प्राकृतिक—प्राकृतिक तेल (पेट्रोलियम) ।

(ख) शोधित—जैसे पेट्रोल, मिट्टी का तेल इत्यादि ।

३—गैसीय ईंधन—

(क) प्राकृतिक——प्राकृतिक गैस।

(ख) निर्मित——कोलया गैस (Coal gas) प्रोड्यूसर गैस (Producer gas) जल गैस (Water gas) इत्यादि।

तापीय रसायन शास्त्र

ईंधन के रासायनिक विश्लेषण में कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन तथा नाइट्रोजन पाये जाते हैं। कार्बन तथा हाइड्रोजन जलनेवाले पदार्थ हैं अर्थात् वे जब आक्सीजन के साथ मिलकर आक्साइड बनाते हैं तब ताप उत्पन्न होता है। यथा:—



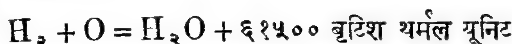
$C + O_2 = CO_2 +$ १७५१०० बृटिश थर्मल यूनिट ताप।

इसका तात्पर्य यह है कि १२ पौंड (कार्बन का अणु भार Atomic weight १२ है) कार्बन ३२ पौंड (२ × १६ = ३२) पौंड आक्सीजन के साथ मिलकर कार्बन डाइ आक्साइड गैस बनाता है तथा इस क्रिया में १७५१०० बृटिश थर्मल यूनिट ताप पैदा होता है। हिसाब की सुविधा के लिये १ पौंड दहनशील-पदार्थ का विचार किया जाता है अतः समीकरण में १२ का भाग देकर उसका मान लिखा जाता है:—



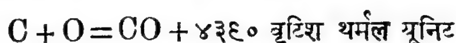
$C + O_2 = CO_2 +$ १४६०० बृटिश थर्मल यूनिट

इसी प्रकार:—



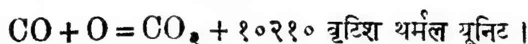
$H_2 + O = H_2O +$ ६१५०० बृटिश थर्मल यूनिट

कभी-कभी कार्बन अपूर्ण रूप से जलता है। उस हालत में कार्बन मोनोआक्साइड CO नामक गैस बनती है।



$C + O = CO +$ ४३९० बृटिश थर्मल यूनिट

जब यह CO जलकर CO_2 बनती है तब शेष (१४६०० − ४३९० = १०२१० बृटिश थर्मल यूनिट) ताप प्राप्त होता है।



$CO + O = CO_2 +$ १०२१० बृटिश थर्मल यूनिट।

अत्यधिक ताप प्राप्त करने के लिये इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कार्बन जलकर CO_2 बनाये न कि CO. कुछ गैसें (जैसे मीथेन = CH_4 इत्यादि) भी दहनशील हैं। उनकी बनावट से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। कार्बन और हाइड्रोजन दोनों आक्सीजन से मिलकर जलते हैं और गर्मी पैदा करते हैं।

साधारण गणित द्वारा यह गर्मी मालूम की जा सकती है।

दहनशील गैस का नाम	रासायनिक संगठन	दहनोपरांत क्या बनता है	ब्रृ० थ० यू० प्रति घन फुट
हाइड्रोजन	H	H_2O	२६०
कार्बन मोनोक्साइड	CO	CO_2	३४०
मीथेन	CH_4	$CO_2 + H_2O$	१०००
ईथेन	C_2H_6	$CO + H_2O$	

उष्णताकरी शक्ति (Calorific Power)

एक इकाई (Unit) ईंधन को पूर्णतः जलाने से ताप की जितनी इकाइयाँ प्राप्त होती हैं उन्हें उष्णताकरी शक्ति कहा जाता है।

ब्रिटिश थर्मल यूनिट

एक पौंड पानी का तापमान १° फैरनहीट (६० से ६१ तक) बढ़ाने से जितना ताप लगता है वह एक ब्रिटिश थर्मल यूनिट कहलाता है।

कैलोरी (Calorie)

एक ग्राम पानी का तापमान १° सेंटीग्रेड (१५° से १६°) बढ़ाने में जितना ताप लगता है उसे एक कैलोरी कहते हैं।

सेंटीग्रेड ताप यूनिट

एक पौंड पानी का तापमान १° सेंटीग्रेड बढ़ाने में जितना ताप लगता है वह एक सेंटीग्रेड ताप यूनिट (C. H. U.) कहलाता है।

ठोस ईंधन

लकड़ी—यह अच्छा ईंधन नहीं है। इसमें जलीय अंश बहुत रहता है। वायु में सुखाई हुई लकड़ी की उष्णताकरी शक्ति केवल ५६०० ब्रिटिश थर्मल यूनिट है और इसका तापमान अधिक ऊँचा नहीं जाता। अतः धातु उद्योग इसमें का उपयोग प्रायः नहीं होता।

पीट—यह भी अच्छा ईंधन नहीं है। इसमें अत्यधिक जल और राख रहती है। इसकी उष्णताकारी शक्ति केवल ५००० ब्रिटिश थर्मल यूनिट है और तापमान भी अधिक ऊँचा नहीं जाता।

कोयला—यह सबसे महत्त्वपूर्ण ईंधन है और धातु वैज्ञानिक कार्यों में जितनी गर्मी की आवश्यकता पड़ती है उसका अधिकांश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोयले से प्राप्त होता है। इसमें जलीय अंश कम होता है। इसकी उष्णताकारी शक्ति १३००० ब्रिटिश थर्मल यूनिट और इसके ताप की प्रचंडता अधिक होती है।

कोयले की सृष्टि

कोयला भूमि के अंदर खदानों में अथवा कहीं-कहीं भूमि की सतह पर पाया जाता है। बिहार प्रांत के रानीगंज, झरिया और गिरिडीह के पास कोयले के कई बड़े जमाव हैं। ये जमाव मीलों लंबे और चौड़े हैं। इनमें कई तहें हैं तथा प्रत्येक तह कुछ फुट से लेकर ८० फुट तक मोटी है। कोयले की दो तहों के बीच जलज शिलाओं (Sedimentary rocks) की तहें होती हैं। कहीं-कहीं कोयले की सब तहों की मोटाई कुल मिलाकर लगभग ३०० फुट तक है। मीलों लंबा, मीलों चौड़ा तथा ८० फुट मोटा कोयले का ठोस जमाव भूगर्भ में कहाँ से आया ?

कोयले की भौगर्भिक उत्पत्ति

आज से हजारों, लाखों वर्ष पहिले उन स्थानों में, जहाँ आजकल कोयला पाया जाता है, घने जंगल रहे होंगे। वहाँ की भूमि नीचे दबने पर ये जंगल जल में समा गये और इनमें सड़न पैदा होने पर इन उद्भिजों में से आक्सीजन और हाइड्रोजन की मात्रा कम हो गई अतः कार्बन की मात्रा स्वतः अधिक हो गई। भौगर्भिक परिवर्तनों के कारण भूमि पटल के ये जंगल भूगर्भ में कई फुट की गहराई में समा गये। ताप और दबाव के कारण धीरे धीरे वे ठोस कार्बन में परिवर्तित हो गये। यही ठोस कार्बनिक पदार्थ आज का कोयला है।

कई भूगर्भ शास्त्रियों का मत है कि आज जहाँ कोयला मिलता है प्राचीन-काल में वहीं जंगल थे। यह सिद्धांत कोयले की 'स्थानीय उत्पत्ति' (Growth-in-Situ) कहलाता है। विरोधी मत का कथन है कि जहाँ आज कोयला मिलता है वहाँ पहिले कोई बड़ा जलाशय या झील रही होगी। नदियों द्वारा जंगल के वनस्पति पदार्थ बह कर इन स्थानों में एकत्र हुए होंगे। फिर जलज

शिलाओं की तह उनके ऊपर आ गई। यह क्रम चलता रहा। जलज शिलाओं के दबाव के कारण धीरे-धीरे वनस्पतियाँ परिवर्तित होकर कोयला बन गईं। यह सिद्धांत कोयले की 'बहाव से उत्पत्ति' (Drift theory) कहलाता है। यहाँ इन सिद्धांतों के विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है।

विभिन्न प्रकार का कोयला

रासायनिक संगठन तथा भौतिक गुणों के अनुसार कोयले को चार किस्मों में बाँटा जा सकता है :—

१—लिग्नाइट (Lignite) या भूरा कोयला—इसका स्थान पीट और साधारण कोयले के बीच है। इसका रंग काला या भूरा होता है। यह सरलता से चूर हो जाता है तथा शीघ्र जलाया जा सकता है। इसकी ज्वाला लंबी तथा धुएँ से भरी होती है। इसका तापमान अधिक ऊँचा नहीं जाता। धातु उद्योग में इसका बहुत कम उपयोग होता है।

२—बिटूमेन युक्त अथवा धुआँदार कोयला—(Bituminous coal) अधिकांश कोयला इसी प्रकार का होता है। इसका रंग काला चमकीला (अथवा बिना चमक का) होता है। यह प्रकाशमय पीली तथा धुआँदार ज्वाला के साथ जलता है। इस कोयले की निम्नलिखित श्रेणियाँ होती हैं :—

(क) कोक जनक (Coking)—यह काला चमकीला तथा कड़ा होता है। इसको वायु के संपर्क से बचाकर गर्म करने से हल्का, कड़ा तथा छिद्रमय पदार्थ बच रहता है (जिसे कोक कहा जाता है) इसकी ज्वाला छोटी होती है तथा गैस कम निकलती है। इसी कोयले से कोक बनाया जाता है। इससे लगभग तीन चौथाई कोक प्राप्त होता है।

(ख) अकोक जनक—यह लंबी और धुआँ युक्त ज्वाला के साथ जलता है। इससे कोक नहीं बनाया जा सकता। इसको वायु के संपर्क से बचाकर गर्म करने पर काला चूर बच रहता है। कोक नहीं बनता।

(ग) गैसीय कोयला—यह काला और कड़ा होता है। जलाने पर प्रकाशमय लंबी ज्वाला के साथ जलता है। यह रिवर्बेरेट्री (Reverberatory) फर्नेस तथा गैस उत्पादन के काम आता है।

(घ) भट्ठी का कोयला—यह साधारण व्यवहार में आने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण कोयला है। यह प्रकाश के साथ जलता है। यह भी

रिवर्बेरेट्री फर्नेसों में जलाया जाता है। घरों में इसी कोयले का व्यवहार होता है।

३. एन्थ्रेसाइट (Anthracite)—यह काला, चमकीला, बहुत कड़ा तथा भंजनशील होता है। यह बड़ी कठिनाई से जलता है और जल जाने पर इसकी उष्णता थोड़े दायरे में तथा उच्च तापमान पर रहती है। इसमें ज्वाला या धुआँ नहीं होता। इसका उपयोग भट्ठियों में होता है। इसमें ९८ प्रतिशत तक कार्बन रहता है।

४. कैनेल कोयला (Cannel Coal)—साधारण कोयले से यह बहुत भिन्न होता है। इसका उपयोग प्रकाश देने वाली गैस बनाने में बहुत होता है क्योंकि इसको जलाने पर बहुत गैस निकलती है। इसको कम तापमान पर स्रावित (Distil) करके कोलतार निकाला जा सकता है।

कोक

जब कोक-जनक कोयले को वायु के संसर्ग से बचाकर बन्द भट्ठियों में जलाया जाता है तब वाष्पशील (volatile) गैसीय तथा द्रव पदार्थ निकल जाते हैं और ठोस तथा छिद्रमय पदार्थ बच रहता है। यह कोक कहलाता है। इसका रासायनिक संगठन यह है :—कार्बन ८५ से ९० प्रतिशत, हाइड्रोजन १ से ४ प्रतिशत, आक्सीजन ·१ से ७ प्रतिशत, नाइट्रोजन १ से २ प्रतिशत तथा राख १० से १८ प्रतिशत। हल्का होने के कारण कोक पानी पर तैर सकता है। कोक को जलाने पर धुआँ, गैसें तथा लंबी ज्वाला नहीं निकलती तथा तापमान काफी ऊँचा रहता है।

कोक उच्च कोटि का ईंधन है। जहां लम्बी ज्वाला की आवश्यकता नहीं होती और खनिज या धातु को ईंधन के साथ गलाना होता है वहां कोक का उपयोग किया जाता है (जैसे ब्लास्ट फर्नेस, क्यूपोला आदि)। भारतवर्ष में उच्च कोटि के कोक-जनक कोयले की बहुत कमी है। लौह खनिज की अपार राशि होते हुए भी उत्तम कोक-जनक कोयले की कमी से भविष्य में भारतीय लोहे के उत्पादन में खतरा उपस्थित हो सकता है क्योंकि लोहा बिना कोक के नहीं बनाया जा सकता। भारत में प्रति वर्ष लगभग ढाई करोड़ टन कोयला पैदा होता है जिसमें से अधिकांश बिहार, बंगाल की सीमा पर स्थित रानीगंज, झरिया, गिरीडीह, बराकर इत्यादि स्थानों से प्राप्त होता है। प्रतिवर्ष लगभग तीस लाख टन कोक तैयार होता है।

संसार के कोयला उत्पादक देशों में भारत का स्थान चित्र संख्या २३ में दिखाया गया है।

विचूर्ण कोयला (Pulverized coal)

बारीक पीसे हुए कोयले को वायु के झोंके के साथ विशेष प्रकार की भट्ठियों के अन्दर भेजा जाता है। वहाँ कोयले का चूर्ण जलता है। इसकी ज्वाला काफी दूर तक फैल जाती है और तापमान भी अधिक रहता है। रिवर्बरेट्री, पुनर्दाहक (Reheating) भट्ठी, ब्वायलर इत्यादि में इसका उपयोग होता है। जो काम डेढ़ टन साधारण कोयले से होता है वही एक टन विचूर्ण कोयले से हो सकता है क्योंकि विचूर्ण होने के कारण वह पूरी तरह से जलता है। प्रोड्यूसर गैस की अपेक्षा यह सस्ता पड़ता है। इसमें अधिक राख वाले कोयले का उपयोग हो सकता है।

लकड़ी का कोयला

धातु व्यवसाय में इसका अधिक उपयोग नहीं होता। मैसूर रियासत के भद्रावती कारखाने में कोक के स्थान में लकड़ी का कोयला लौह-ब्लास्ट फर्नेस में इस्तेमाल होता है। यह कोयला मुलायम होता है तथा अधिक बोझ से चूर हो जाता है इस कारण इसकी उपयोगिता सीमित है। मैसूर के पास कोयला नहीं पाया जाता तथा दूर से कोक लाने में बहुत खर्च पड़ता है। आसपास के घने जंगलों से सस्ती लकड़ी मिल जाती है इस कारण मैसूर में कोक के स्थान पर लकड़ी का कोयला इस्तेमाल होता है। आजकल पर्याप्त लकड़ी का कोयला न मिलने के कारण उसे कोक के साथ मिलाकर काम चलाया जाता है।

द्रव ईंधन

प्राकृतिक तेल (पेट्रोलियम) तथा कोयले के स्रावण से प्राप्त द्रवों का उपयोग ईंधन के रूप में होता है। वनस्पति तेल ईंधन का काम नहीं देते। तेल क्षेत्र में कुँए खोदकर पेट्रोलियम पम्प के द्वारा निकाला जाता है। हाल ही में एक अमेरिकन कम्पनी ने साढ़े तीन मील की गहराई से तेल निकाला है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस, मेक्सिको, ईरान, बर्मा आदि में पेट्रोलियम निकलता है। भारत का उत्पादन संसार के उत्पादन के १ प्रतिशत से भी कम है। आसाम के डिगबाय तथा बदरपुर (सुर्माघाटी) में पेट्रोलियम मिलता है।

पेट्रोलियम प्रधान रण-सामग्री है। हमारा देश इस सामग्री में आत्म निर्भर नहीं है अतः हमें कोयला और शक्कर की जूसी (Molasses) से पेट्रोल प्राप्त करना होगा। भारत में कोयला और जूसो पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। भट्ठी में जलाने योग्य तेल निम्नलिखित पदार्थों के स्रावण से प्राप्त होते हैं।

१—अशुद्ध खनिज तेल (Crude mineral oil) या पेट्रोलियम।

२—तेल युक्त शेल।

३—कोयले से प्राप्त कोलतार (Coal tar) तथा ऐसे अन्य पदार्थ।

अशुद्ध खनिज तेल (पेट्रोलियम) का स्रावण—

पेट्रोलियम को लोहे के रिटार्टो (Retorts) में गर्म किया जाता है और स्रावण द्वारा प्राप्त पदार्थों को विभिन्न तापमानों पर ठंडा कर अलग अलग पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं। पेट्रोल (मोटर का तेल) किरासन (मिट्टी का तेल) तथा अन्य भारी तथा गाढ़े तेल और स्निग्ध पदार्थ (lubricants) इसी प्रकार प्राप्त होते हैं। ये गाढ़े तेल हरे, भूरे या काले रंग के होते हैं और भट्ठी में जलाये जाते हैं।

तैलयुक्त शेल का स्रावण

इसका स्रावण खड़े (Vertical) रिटार्टों में किया जाता है और स्रावित पदार्थों को क्रम से ठंडा कर उनसे विविध पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं। दस टन शेल से एक टन क्रूड तेल निकलता है।

द्रव ईंधन की उष्णताकरी शक्ति अधिक (२०,००० ब्रिटिश थर्मल यूनिट) होती है। इससे उच्च तापमान प्राप्त किया जा सकता है। दूसरा लाभ यह है कि तेल की मात्रा घटा बढ़ाकर भट्ठी के तापमान और वातावरण का इच्छानुसार नियंत्रण हो सकता है। भट्ठी को चालू करने या बंद करने में कम समय लगता है तथा द्रव ईंधन को रखने के लिये कम स्थान की आवश्यकता होती है। इसमें ठोस पदार्थ नहीं होते इसलिये जलाने पर राख नहीं बनती। दोष यह है कि द्रव ईंधन कोयले या कोक से महँगा पड़ता है।

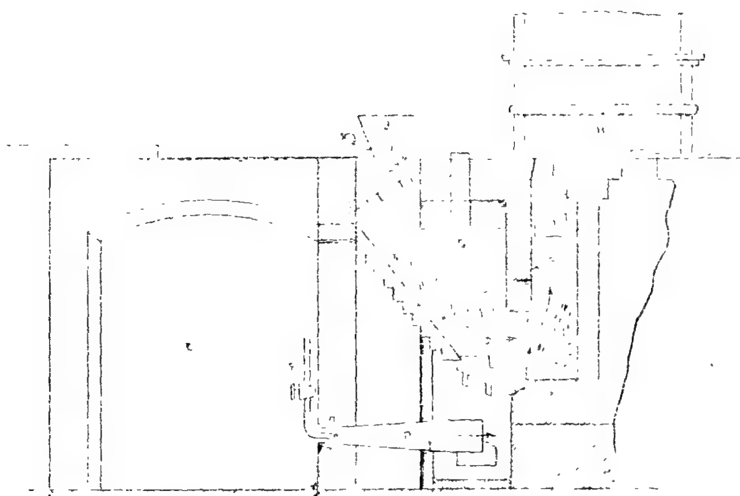
गैसीय ईंधन

गैस को पिचकारीनुमा 'दाहकों' (Burners) में से वेग के साथ भेजा जाता है तथा इसके साथ आवश्यक मात्रा में ठंडी या गर्म वायु मिला दी जाती है। गैस भट्ठी के अंदर विस्तृत दायरे में जलती है। गैसीय ईंधन की उष्णताकरी

शक्ति भी काफी अधिक होती है तथा उच्च तापमान प्राप्त होता है। भट्ठी के तापमान और वातावरण का इच्छानुसार नियंत्रण हो सकता है तथा जलाने व बुझाने में बहुत कम समय लगता है। जिस रिवर्बेरेट्री फर्नेस में गैस इस्तेमाल होती है उसमें अत्यधिक उच्च तापमान प्राप्त किया जा सकता है। जिन कारखानों में ब्लास्ट फर्नेस या कोक ओवेन है वहाँ इनसे प्राप्त होने वाली गैसों का ईंधन के रूप में उपयोग होता है। जहाँ ये नहीं हैं वहाँ प्रोड्यूसर गैस, कोयला गैस, जल-गैस, मांड गैस तथा प्राकृतिक गैस का उपयोग किया जाता है।

प्रोड्यूसर गैस

दहकते हुए कोयले की मोटी तह में से जब वाष्प के साथ सीमित मात्रा में वायु भेजी जाती है तब वायु के आक्सीजन और ईंधन के कार्बन



चित्र सं० २४ **गैस प्रोड्यूसर**

के संयोग से अंततः दहनशील CO (कार्बन मोनाक्साइड) गैस बनती है। वाष्प विघटित होकर उसका आक्सीजन CO बनाने में लग जाता है और हाइड्रोजन मुक्त होकर गैस को समृद्ध करता है क्योंकि हाइड्रोजन भी दहनशील है।

प्राड्यूसर गैस में निम्नलिखित दहनशील और अदहनशील गैसें होती हैं।

कार्बन मोनाक्साइड	CO	दहनशील
हाइड्रोजन	H	
मीथेन	$CH_४$	
कार्बन डाइआक्साइड	$CO_२$	अदहनशील
नाइट्रोजन	N	

जल गैस

दहकते कोयले में से वाष्प भेजकर यह गैस उत्पन्न की जाती है। इसमें प्रधानतः कार्बन मोनाक्साइड और हाइड्रोजन रहता है। इस गैस का उत्पादन बड़ी सरलता और कम खर्च से होता है।

कोयला गैस

यह गैस लोहे के रिटार्टों में कोयले को स्रावित कर बनाई जाती है। यह उत्तम कोटि की गैस है पर महंगी पड़ती है इसलिये सामान्यतः भट्ठी में यह नहीं जलाई जाती।

ब्लास्ट फर्नेस गैस

लोहा बनाने वाली ब्लास्ट फर्नेस में जो गैस स्वतः उत्पन्न होती है उसका अधिकांश स्टोवों के चेकर वर्क (जाली) को गर्म करने में व्यय हो जाता है। शेष गैस अन्य काम में आती है। इसमें दहनशील गैस प्रधानतः कार्बन मोनाक्साइड होती है। इसकी उष्णताकरी शक्ति अधिक नहीं होती।

कोक ओवेन गैस

यह गैस कोक बनाने वाली भट्ठी से प्राप्त होती है। यह उत्तम कोटि की गैस है।

प्राकृतिक गैस

यह कई स्थानों में भूमि में से निकलती है अतः इसका व्यहार उन्हीं स्थानों में या उनके आसपास होता है।

विभिन्न गैसों की बनावट और उनकी उष्णताकारी शक्ति नीचे लिखे अनुसार है :—

गैस का नाम	CO	CO_2	हैवी हाइड्रो कार्बन	O_2	H_2	CH_4	N	उष्णताकारी शक्ति प्रति घनफुट
१. प्रोड्यूसर गैस	२५	५	१	...	१२	३	५४	१५४
२. जल गैस	४०	४	...	१	४८	१	६	५४०
३. कोयला गैस	९	३	३	१	४३	२७	१४	६२०
४. ब्लास्ट फर्नेस गैस	२८	६	...	...	२	१	६०	६७
५. कोक ओवेन गैस	६	२	४	...	५७	३०	१	५९२
६. प्राकृतिक गैस	१	...	...	...	...	९६	३	१०४०

भट्ठियाँ

धातु उद्योग से संबंधित भट्ठी (फर्नेस) उपयोग तथा बनावट से इतनी विभिन्न प्रकार की और बहुसंख्यक है उनका वर्गीकरण करना बहुत कठिन है। ईंधन के प्रकार (ठोस द्रव, गैसीय) के अनुसार विभाजन किया जा सकता है पर कहीं कहीं एक ही प्रकार की भट्ठी में एक से अधिक प्रकार का ईंधन काम में आ सकता है, जैसे घरिया भट्ठी जिसमें कोक, तेल और गैस तीनों प्रकार का ईंधन इस्तेमाल हो सकता है। बहुतसी विशेष प्रकार की भट्ठियां वर्गीकरण में छूट जाती है। भट्ठियों के वर्गीकरण का प्रयास इस प्रकार किया गया है :

भट्ठियों का वर्गीकरण

१. किल्न (Kiln)

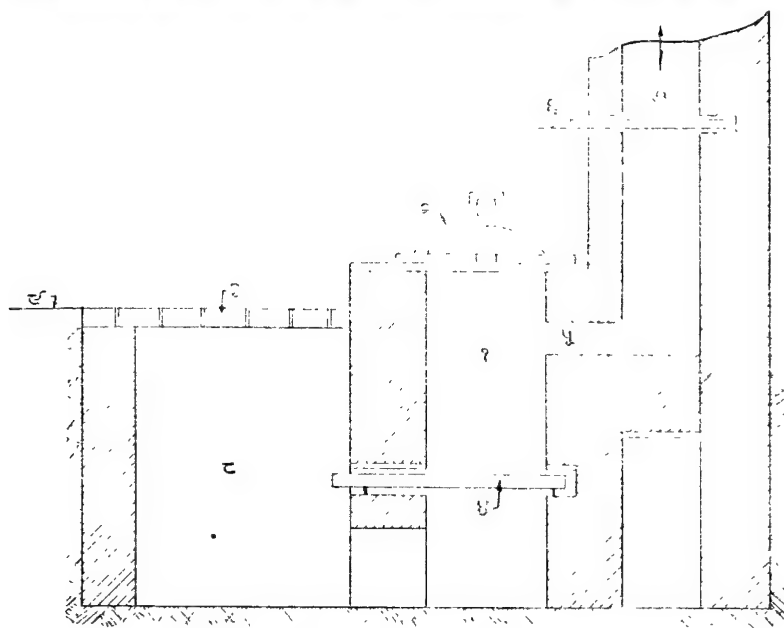
यह खड़े कदवाली भट्ठी है जिसमें नीचे ईंधन और वायु के लिये स्थान बना रहता है। इसमें ईंधन के संपर्क में पदार्थ गर्म किया जाता है। कैल्साइनिंग ऐसी ही भट्ठी में की जाती है।

२. हार्थ भट्ठी (Hearth furnace)

यह छिछली और न्यूनाधिक खुली भट्ठी होती है। इसमें पदार्थ और ईंधन को एक साथ मिला कर रखा जाता है तथा वेग के साथ वायु भेजी जाती है। भट्ठी का वातावरण आक्सीकर रहता है।

३. वायु भट्ठी (Wind furnace)

इस प्रकार की भट्ठी में कुछ गहराई पर जाकर छड़ें लगी रहती हैं जिन पर कोक या कोयला जलता है। हवा भी इन छड़ों में से होकर आती है। गैस व धुआँ ऊपर की ओर बनी चिमनी से बाहर निकल जाता है। घरिया में धातु को



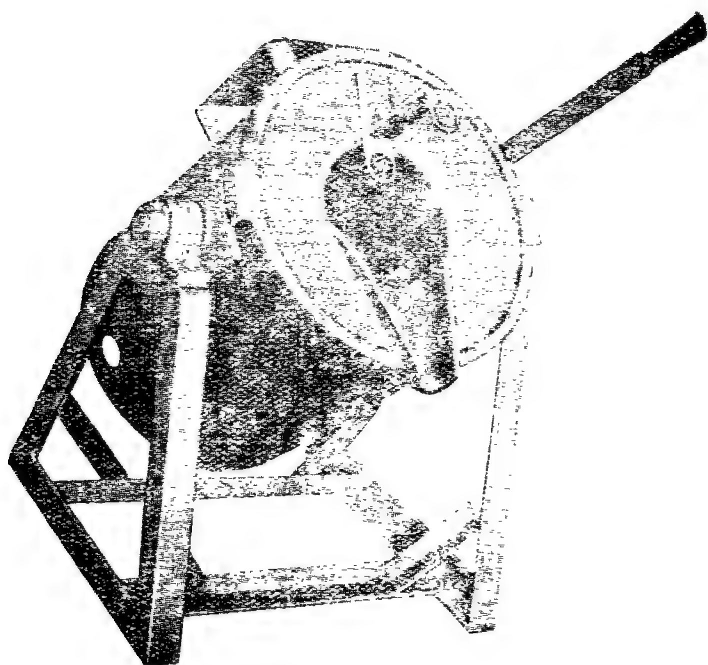
चित्र सं० २५ वायु भट्ठी

(१) कोक दहन-स्थान ; (२) ढक्कन ; (३) गलियारा ढकने का छेददार लोहे का ढक्कन ; (४) छड़ें, जिनपर कोक रखा जाता है (Grate) ; (५) गैस मार्ग (Flue) ; (६) डैम्पर, जिसके द्वारा वायु की मात्रा का नियंत्रण किया जाता है ; (७) चिमनी ; (८) गलियारा जिसमें जाकर मजदूर एक पंक्ति में बनी कई भट्ठियों की राख निकालता है तथा (६) फर्श का धरातल।

रख कर इस भट्ठी के ईंधन में धँसा दिया जाता है और गल जाने पर घरिया को सँड़सी से पकड़ कर बाहर निकाला जाता है। लोहार या ठठेरे की भट्ठियाँ इसी श्रेणी में आती हैं।

४. घरिया भट्ठी

यह कई प्रकार की होती है। अलौहिक उद्योग में कोक या तेल से जलने वाली 'टिल्टिंग' यानी झुकाने योग्य भट्ठियाँ बहुत प्रचलित हैं। इनमें घरिया को



चित्र सं० २६ झुकनेवाली घरिया भट्ठी

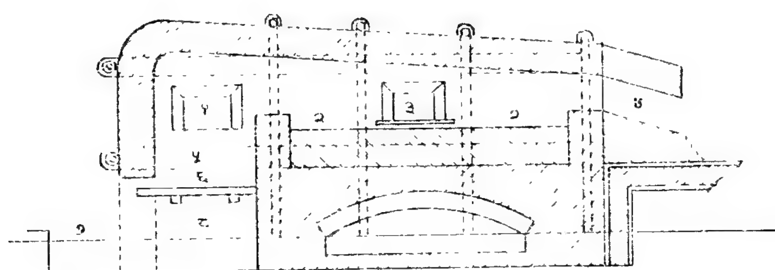
बाहर निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ती बल्कि पूरी भट्ठी को झुका कर गली धातु निकाल ली जाती है।

५. ब्लास्ट फर्नेस

ब्लास्ट का अर्थ है तीव्र वेग वाली वायु। ब्लास्ट फर्नेस को हिंदी में हम 'वात भट्ठा' कह सकते हैं। साधारण वायु भट्ठी से यह बहुत बड़ी होती है। (चित्र सं० ३१ देखिये) लोहे की ब्लास्ट फर्नेस करीब १०० फुट ऊँची और बेलनाकार होती है। उसका व्यास ऊँचाई के पंचमांश से लेकर तृतीयांश तक होता है। उसमें ग्रेट (ईंधन रखने की छड़ें) नहीं होतीं। पिघली हुई धातुकी राशि पर खनिज और ईंधन का हजारों टन का बोझ टंगा रहता है। सीसा व ताँबा बनाने की ब्लास्ट फर्नेस वर्गाकार और कम ऊंची होती है।

६. रिवर्बेरेट्री भट्ठी

चित्र से उसकी बनावट सरलता से समझ में आ जायगी। इसके एक भाग में अग्नि स्थान (६) है और दूसरे में वर्गाकर भूमि (२) जहाँ धातु गलाई या



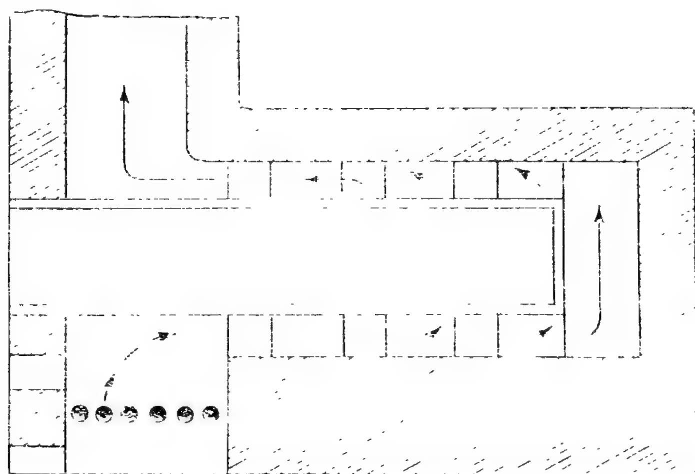
चित्र सं० २७ रिवर्बेरेट्री भट्ठी

गर्म की जाती है। इसकी छत झुकावदार होती है जिसके कारण ज्वाला नीचे की ओर परिवर्तित हो जाती है।

७. मफल फर्नेस

इस भट्ठी में मफल अर्थात् दहन कक्ष को बाहर से ईंधन या ज्वाला के द्वारा गर्म किया जाता है। कक्ष के अंदर का पदार्थ ईंधन या गैसों

के संसर्ग दोष से बचा रहता है। ऐसी भट्ठी तापोपचार के लिये बहुत उपयुक्त होती है।



चित्र सं० २८ मफल भट्ठी बीच का वर्गाकार भाग मफल है। वाण द्वारा ज्वाला का मार्ग दिया गया है।

८. रीजेनरेटिव फर्नेस

ऐसी भट्ठी में दहन के पश्चात् ज्वाला और तप्त गैसें जिस रास्ते होकर बाहर जाती हैं उसी रास्ते से पारी पारी से वायु अन्दर आती है। यह वायु उस ताप से तप्त हो जाती है जो बाहर जाने वाली गैस मार्ग में छोड़ जाती है। अतः बाहर जाने वाली गैसों के साथ ताप नष्ट नहीं होता बल्कि इस उपाय से उपयोग में आ जाता है। इस प्रकार की भट्टी ईंधन की बचत और उच्च तापमान की प्राप्ति में बहुत सहायक हुई है। इस्पात बनाने को 'ओपनहार्थ' फर्नेस इसी प्रकार की है।

९. विद्युत् भट्ठियाँ

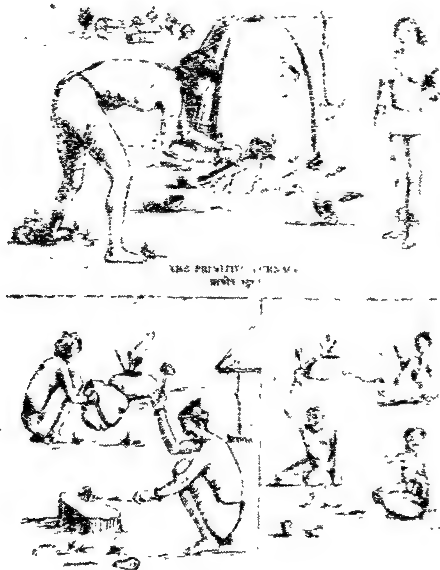
ये कई प्रकार की होती हैं इनमें विद्युत् के द्वारा ताप उत्पन्न किया जाता है। इन भट्ठियों में ताप का नियन्त्रण बहुत अच्छी तरह होता है पर खर्चीली होने के कारण इनका उपयोग सीमित है। सस्ती जल-विद्युत प्राप्त होने पर इनका उपयोग भारत में बहुत बढ़ जायगा।

उपर्युक्त भट्ठियों के अतिरिक्त और भी बहुत प्रकार की भट्ठियाँ हैं। जिनका संक्षिप्त वर्णन आवश्यक स्थलों पर किया गया है।

अध्याय ८

लोहा और इस्पात

हमारा देश प्राचीन काल से उच्चकोटि के लोहे और इस्पात का निर्माण करता आया है। खदानों के पास छोटी-छोटी भट्टियों में स्थानीय लोहार खनिज गलाकर लोहा बना लेते थे। वे लोहे से इस्पात बनाना जानते थे और कई स्थानों में इतनी उच्चकोटि का इस्पात बना करता था कि निकट भूत तक उसकी बराबरी का इस्पात तैयार करना असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य था। हैदराबाद



चित्र सं० २९ प्राचीन भट्टा

(दक्षिण) में दो हजार वर्ष पूर्व 'वुत्स' (Wutz) नामक इस्पात बनता था। इस धातु से दमिश्क (ईरान) में तलवारें बनती थीं। ये तलवारें इतनी अच्छी होती थीं कि यदि हवा में रेशम का टुकड़ा उड़ाकर इस तलवार से उस पर वार किया जाता था तो रेशम के दो टुकड़े हो जाते थे। दिल्ली में कुतुब-मीनार के

पास स्थित लौह स्तम्भ लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व निर्मित हुआ था। पृथ्वीतल से यह २२ फुट ऊँचा है और लगभग १ फुट ८ इंच धरती के अन्दर धँसा है। धरती के अन्दर इसका आकार गेंद के समान है जिसका व्यास २ फीट ४ इंच है। पूरे स्तम्भ का वजन लगभग पौने दो सौ मन है। खुली भूमि में खड़े इस स्तम्भ पर वर्षा, ताप, वायु आदि प्राकृतिक विध्वंसकों का लगातार आक्रमण होता रहा है पर इसमें आज तक मोर्चा नहीं लगा और न किसी प्रकार के धब्बे लगे हैं। चित्र सं० १ देखिये।

आधुनिक वैज्ञानिक साधनों से लैस एक कारखाना करीब ८० वर्ष पूर्व मद्रास प्रान्तों के सेलम जिले में खोला गया था पर वह ईंधन के अभाव में नहीं चल सका। कुछ समय बाद आसनसोल के पास एक कारखाना खुला जो अभी चालू है। वास्तव में सुदृढ़ लौह उद्योग का प्रारम्भ टाटा कम्पनी की स्थापना के साथ हुआ। यह कारखाना जमशेदपुर में सन् १९११ में स्थापित हुआ। 'सन् १९३७ में स्टील कार्पोरेशन आफ बेंगाल' (स्काब) नामक कारखाना बर्नपुर (आसनसोल) में खोला गया। इन दो प्रमुख कारखानों के अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे कारखाने भी खुले हैं। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक भारत अपनी आवश्यकता से अधिक पिग लोहा तथा अपनी आवश्यकता का आधा इस्पात तैयार करता था। भारत सरकार टाटा कारखाने की बराबरी के दो और कारखाने स्थापित करने जा रही है।

लोहा और इस्पात के उद्योग में मुख्यतः ये चार कच्चे माल आवश्यक होते हैं :—

१—लोहे का खनिज।

२—ईंधन (कोकजनक तथा साधारण कोयला)।

३—फ्लक्स (चूने का पत्थर या डोलोमाइट) तथा

४—रिफ्रेक्ट्री पदार्थ (अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी, स्फटिक, मेग्नेसाइट इत्यादि)।

उच्चकोटि के लौह खनिज के बड़े जमाव भारत के कई भागों में पाये जाते हैं पर अधिक महत्त्व के वे जमाव हैं जो कोयले की खानों के पास स्थित हैं। अति उत्तम कोटि का खनिज (६० प्रतिशत से ६४ प्रतिशत लोहा) का एक विस्तृत क्षेत्र बिहार प्रान्त के सिंहभूम जिले में तथा उड़ीसा प्रान्त की मयूरभंज, बोनाई, केओंझार आदि रियासतों में मौजूद है। यह क्षेत्र झरिया और रानीगंज के कोयले के क्षेत्र से १५०, २०० मील के अन्दर है। ऐसा अनुमान किया गया है कि इस क्षेत्र में तीन अरब टन से अधिक उत्तम कोटि का लोहा खनिज मौजूद है। युद्ध के पूर्व यह खनिज कारखानों में जाकर तीन रुपये टन पड़ता

था। इतना उच्च कोटि का, इतने प्रचुर परिमाण में तथा इतना सस्ता लौह खनिज संसार के किसी अन्य भाग में प्राप्य नहीं है। इस क्षेत्र की पूरी छान-बीन लगभग २० वर्ष पूर्व हुई थी। उसके पहिले संयुक्तराष्ट्र अमेरिका स्थित लेक सुपीरियर का क्षेत्र सबसे बड़ा और सर्वोत्तम समझा जाता था। यह क्षेत्र संसार भर की लौह खपत के आधे भाग की पूर्ति करता है। लेक सुपीरियर के खनिज में ५५ से ६० प्रतिशत लोहा होता है। खदान के स्टेशन पर वह खनिज सात रुपये टन के भाव से (युद्ध के पूर्व) बिकता था। उस खनिज को थल, जल तथा पुनः थल पर से ले जाकर करीब एक हजार मील दूर स्थित कारखानों तक पहुँचाया जाता है। परिणामतः वह काफी महँगा पड़ता है। सिंहभूमि का खनिज लेक सुपीरियर के खनिज से बहुत लाभप्रद स्थिति में है क्योंकि खदानें कारखानों के पास ही हैं।

विभिन्न प्रमुख देशों के लौह खनिजों का रासायनिक संगठन

देश	क़िस्म	रासायनिक संगठन				
		लोहा	मेंगेनीज़	सिलिका	फास्फरस	गंधक
भारत	हेमेटाइट	५५ से ६८		७ से १४	·००५	·०१
लेकसुपीरियर	,,	५० से ६४	·०७ से १·५	३ से १५	·०३ ·५	...
ब्रिटेन	सीडेराइट	३० से ५५	...	३ से १८	... ...	... ...

कोक

कोकजनक कोयला, अर्थात् वह कोयला जिससे कोक तैयार किया जाता है, भारत की अपार लौह राशि की तुलना में बहुत कम है। यहाँ का कोयला लोहा उत्पन्न करने वाले पाश्चात्य देशों के कोयले से खराब होता है। इसमें राख अधिक होती है अतः भट्ठी में अधिक कोक खर्च करना पड़ता है। परन्तु भारतीय कोयला सस्ता होने के कारण कोक पर होनेवाला व्यय पाश्चात्य देशों

की तुलना में अधिक नहीं पड़ता। भारतीय कोक-जनक कोयले का ठीक-ठीक अनुमान नहीं हो सका है, पर ऐसा समझा जाता है कि वह एक अरब टन के लगभग है। मोटे हिसाब से करीब १½ टन कोक जनक कोयले से १ टन कोक बनता है जिससे डेढ टन लौह खनिज को गलाकर १ टन पिग लोहा मिलता है। इसके सिवा पिग लोहे से एक टन इस्पात बनाने में लगभग २ टन अकोक जनक (Non-coking) कोयले की आवश्यकता पड़ती है। इस कोयले का जमाव भारत में पर्याप्त परिमाण में है।

फ्लक्स

जहाँ तक फ्लक्स (जैसे चूने का पत्थर, डोलोमाइट) का सम्बन्ध है, भारत उतनी अच्छी स्थिति में नहीं है जितनी लौह राशि में। परन्तु यह अधिक चिंता की बात नहीं है। कटनी और आसाम में उच्च कोटि का चूने का पत्थर मिलता है लेकिन ये स्थान लोहे और कोयले के केंद्रों से अधिक दूर हैं। साधारण अच्छा चूने का पत्थर और डोलोमाइट औद्योगिक क्षेत्र के पास में ही मिल जाता है। यद्यपि इनका उपयोग अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में करना पड़ता है तथापि इनके सस्ते पन के कारण अन्ततः ये अन्य देशों की तुलना में महँगे नहीं पड़ते।

रिफ्रेक्ट्री

रिफ्रेक्ट्री पदार्थ भारत में बहुलता से मिलते हैं। अच्छी किस्म की अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी कई स्थानों में मिलती है और इसकी ईंटों का निर्माण रानीगंज, जबलपुर आदि में बहुतायत से होता है। मुंगेर के पास खड्गपुर की पहाड़ियों में उच्च कोटिका स्फटिक (बिल्लौरी पत्थर) मिलता है। इसके द्वारा रानीगंज और कुमार धुबी (बर्दवान) में सिलिका की ईंटे तैयार की जाती है। सेलम (मद्रास प्रान्त) में मेग्नेसाइट और सिंहभूम, मैसूर तथा बलोचिस्तान में क्रोमाइट मिलता है।

लोहे और इस्पात के उद्योग के लिये भारत में अत्यधिक प्राकृतिक सुविधायें प्राप्त हैं। भारतीय पिग लोहा संसार में सबसे सस्ता होता है। यहाँ से द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक जापान, इंग्लैंड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को पिग लोहा निर्यात किया जाता था। हमारे देश में इस्पात का उत्पादन आवश्यकता से कम होता है। सुविधायें तथा औद्योगिक शांति मिलते ही इस दिशा में भी शीघ्र प्रगति होगी।

लोहे के खनिज

लोहे के खनिजों का वर्गीकरण लोहे के अनुपात के आधार पर किया जाता है। लोहे के मुख्य खनिज हेमेटाइट, मेग्नेटाइट, लीमोनाइट, तथा सीडेराइट हैं। प्रथम तीन आक्साइड और चौथा कार्बोनेट है। हेमेटाइट संसार का प्रधान लौह खनिज है।

हेमेटाइट (Hematite)

सैद्धान्तिक गणना से इसमें ७० प्रतिशत लोहा होता है। इसका रंग साधारणतः कत्थई होता है। पुलिस थानों आदि सरकारी इमारतों में जो हिर्मिजी मिट्टी पोती जाती है वह यही खनिज है। यह कड़ा होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व ४·६ से ५·३ तक होता है। यह भारत का प्रधान लौह खनिज है। यह बिहार के सिंह भूम जिले तथा समीपस्थ मयूरभंज, बोनाइ, केओंझार आदि रियासतों, मैसूर रियासत तथा अन्य स्थानों में मिलता है। इसकी किस्म बहुत अच्छी होती है। सिंहभूम में अब जो खनिज मिलता है उसमें ६० प्रतिशत लोहा रहता है। देखिये चित्र संख्या तीन।

भारत के लोहा बनाने वाले सभी कारखाने हेमेटाइट का उपयोग करते हैं, यथा—

टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी, जमशेदपुर।

खदानें—(१) मयूरभंज रियासत में गुरुमहिसानी, बदाम पहाड़ और सुलाइपत, तथा

(२) सिंहभूम जिले के नोआमंडी में।

इंडियन लोहा और इस्पात कंपनी, हीरापुर तथा कुल्टी (आसनसोल)।

खदानें—सिंहभूम जिले के गुहा और मनहरपुर में।

मैसूर लोहा और इस्पात कंपनी, शिमोगा जिला (मैसूर रियासत)।

खदानें—बाबा बुदाँ की पहाड़ियों में।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी हेमेटाइट प्रधान खनिज है। उस देश में कुल मिलाकर जितना लौह खनिज निकाला जाता है उसका ८५ प्रतिशत हेमेटाइट होता है जो लेक सुपीरियर क्षेत्र से प्राप्त होता है।

भारत में प्रतिवर्ष करीब ३० लाख टन हेमेटाइट निकाला जाता है। इसमें ६० से ६२ प्रतिशत लोहा होता है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व यह खदान के स्टेशन पर तीन रुपये प्रति टन के भाव से बिकता था।

लीमोनाइट (Limonite)

$2Fe_2O_3 + 3H_2O$. सैद्धान्तिक गणना के अनुसार इसमें ५९.९ प्रतिशत लोहा होता है तथा १४.५ प्रतिशत यौगिक जल। लोहे और जल का अनुपात स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न हुआ करता है। इसको जलयुक्त हेमेटाइट भी कहा जाता है। इसका रंग हल्के भूरे से लेकर काला तक होता है। भारत में अब इसका उपयोग प्रायः नहीं होता। प्राचीन और मध्य युगीन कालों में छोटी-छोटी भट्ठियों द्वारा इससे लोहा निकाला जाता था। जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम की सीमा पर स्थित मिनेट तथा दक्षिणी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह प्रधान खनिज है।

मेग्नेटाइट (Magnetite).

Fe_3O_4 (या $FeO.Fe_2O_3$) सिद्धान्ततः इसमें ७२.४ प्रतिशत लोहा होता है। इसका रंग सिलेटी से लेकर काला तक होता है। यह दक्षिणी भारत में बहुतायत से मिलता है। पर वहाँ कोयला न होने से इसका उपयोग नहीं हो सकता। यह स्वीडेन देश का प्रधान खनिज है।

सीडेराइट (Siderite).

$Fe\,CO_3$. सिद्धान्ततः इसमें ४८.२ प्रतिशत लोहा होता है। यह सिलेटी रंग का तथा साधारणतः कड़ा होता है। यह इंग्लैंड का प्रधान तथा जर्मनी और आस्ट्रिया का महत्वपूर्ण खनिज है।

लौह खनिजों में विद्यमान अशुद्धियाँ तथा उनका प्रभाव :—

लौह खनिज में सामान्यतः लोहे की मात्रा ३० प्रतिशत से ६५ प्रतिशत तक रहती है। सिलिका तथा अलुमीनियम प्रधान विजातीय द्रव्य हैं। खनिज में विजातीय द्रव्यों की अधिकता से लोहे की मात्रा ही नहीं घटती बल्कि फ्लक्स और ईंधन भी अधिक लगता है तथा उत्पादन व्यय अधिक बैठता है। दूसरी ओर यदि खनिज में चूने का पत्थर ($Ca\,CO_3$ या $MgCO_3$) मौजूद रहता है तो विजातीय द्रव्य को हटाने में बाहरी फ्लक्स कम लगता है। यह बात लाभदायक है। कभी-कभी विजातीय द्रव्य में सिलिका, अलुमीनियम और चूने के पत्थर का समानुपात ऐसा रहता है कि खनिज पदार्थ न्यूनाधिक

रूप में 'स्वतः फ्लक्सिंग' हो जाता है। ऐसे खनिज के उपयोग में खर्च कम पड़ता है क्योंकि उसमें बाहरी फ्लक्स की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है। कभी-कभी किसी खनिज में जब चूने का पत्थर प्रधान विजातीय द्रव्य रहता है और पास ही ऐसे खनिज मिल सकते हैं जिनमें सिलिका और अलुमोनियम प्रधानता से मौजूद रहते हैं तब दोनों खनिजों को उचित अनुपात में मिलाकर स्वतः फ्लक्सिंग बना लिया जाता है। इस रीति से निम्नकोटि के खनिज भी लाभ के साथ काम में लाये जा सकते हैं। जर्मनी, फ्रांस और बेल्जियम की सीमा पर स्थित मिनेट के लौह खनिज में यह बात लागू होती है। वहाँ के खनिज में केवल ३६ प्रतिशत लोहा होता है तथा फास्फरस भी अधिक होता है पर उपर्युक्त गुण के कारण उससे लोहे का उत्पादन लाभ पूर्वक हो रहा है।

गन्धक और फास्फरस

लोहे और इस्पात पर गन्धक और फास्फरस का बहुत हानिप्रद प्रभाव पड़ता है। ये दोनों खनिज में न्यूनाधिक रूप में मौजूद रहते हैं। ईंधन और फ्लक्स में से भी कुछ गन्धक और फास्फरस प्राप्त होता है। अच्छे इस्पात में अधिक से अधिक ०·०५ प्रतिशत गन्धक तथा इतना ही फास्फरस रहना चाहिये।

ब्लास्ट फर्नेस के धातुमैल के साथ १ प्रतिशत तक गन्धक अलग किया जा सकता है और लोहे में जाने से रोका जा सकता है परन्तु ऐसा करने में अधिक ईंधन तथा फ्लक्स की आवश्यकता पड़ती है। परिणामतः खर्च बढ़ जाता है। फास्फरस धातुमैल के साथ अलग नहीं किया जा सकता। खनिज, फ्लक्स और ईंधन में मौजूद सब का सब फास्फरस धातु में मिल जाता है और हानि पहुँचाता है। फास्फरस युक्त पिग लोहे का उपयोग ढलाई में अथवा क्षारीय पद्धति द्वारा इस्पात बनाने में होता है।

जिस खनिज में ०·०५ प्रतिशत से कम फास्फरस रहता है उसे अम्लीय तथा जिसमें अधिक फास्फरस रहता है उसे क्षारीय खनिज कहा जाता है। अम्लीय खनिज से लोहा कम खर्च में प्राप्त होता है।

खनिज में स्वल्प मात्रा से लेकर १·५ प्रतिशत तक मैंगेनीज़ अशुद्धि के रूप में मौजूद रहता है। इसकी उपस्थिति लाभप्रद होती है। इसका आधे से दो तिहाई भाग लोहे में प्रवेश कर गन्धक को आक्रान्त करता है और MnS बनाता है, जो FeS से कम हानिकर होता है। इसके सिवा, यदि अधिक मैंगेनीज़ युक्त पिग लोहे को अधिक समय तक द्रव रूप में रखा जाय तो कुछ

MnS (हल्का होने के कारण) ऊपर उठकर धातुमैल में मिल जाता है। कुछ गन्धक SO_2 बनकर उड़ जाता है। इस प्रकार लोहे में गन्धक की मात्रा कम हो जाती है। जब खनिज में गन्धक अधिक और मैंगेनीज कम रहता है तब अलग से मैंगेनीज़ मिलाया जाता है। ढलाई के लोहे में ०.६ से १ प्रतिशत, तथा क्षारीय पद्धति द्वारा इस्पात बनाने के लिये लोहे में १ से १.५ प्रतिशत तक मैंगेनीज़ रहना चाहिये।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि खनिज का मूल्य केवल उसके लौह अनुपात पर निर्भर नहीं है। लौह अनुपात में कमी उतनी अवांछनीय नहीं है जितनी विजातीय द्रव्य और अशुद्धियों के अनुपात में वृद्धि। क्योंकि इसमें कई प्रकार के व्यय बढ़ जाते हैं, यथा :—

१. रेल किराया में वृद्धि—एक टन रद्दी खनिज ले जाने में उतना ही खर्च पड़ता है जितना कि एक टन अच्छे खनिज में।
२. अधिक फ्लक्स लगता है।
३. अधिक धातुमैल बनता है। इसे गलाने के लिये अधिक ईंधन चाहिये।
४. अधिक श्रम लगता है। भट्ठे तथा यंत्रादि शीघ्र खराब होते हैं।

ईंधन

ब्लास्ट फर्नेस में ईंधन को दो काम करने पड़ते हैं। पहिला, आवश्यक ताप की पूर्ति करना तथा दूसरा, लौह आक्साइड (खनिज) में से आक्सीजन अलग करना। यह आक्सीजन ईंधन जलाने में खर्च हो जाता है। दहन के लिये शेष आक्सीजन 'ब्लास्ट' (वायु के झोंके) से प्राप्त होता है।

ब्लास्ट फर्नेस के लिये उपयुक्त ईंधन कड़ा कोक है यद्यपि कई प्रकार का कोयला भी कठिनाई के साथ काम में लाया जा सकता है। कोयले में ठोस कार्बन (Fixed-carbon) की मात्रा कम रहती है और गैसीय पदार्थों की मात्रा अधिक। गैसीय पदार्थ कम तापमान पर फर्नेस के ऊपरी हिस्से में ही (जहाँ अधिक ताप की आवश्यकता नहीं रहती) जल जाते हैं और नीचे पहुँचने पर जब तेज आँच की आवश्यकता पड़ती है तब कोयला आवश्यक आँच देने में असमर्थ हो जाता है क्योंकि बचे हुए ठोस कार्बन की मात्रा कम होती है और तेज आँच ठोस कार्बन से ही प्राप्त होती है। कोक का अधिकांश (७० प्रतिशत से ९० प्रतिशत) ठोस कार्बन रहता है इसलिये वह आवश्यक आँच दे सकता है। कोक में राख की मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिये। अधिक राख

से न केवल ठोस कार्बन की मात्रा कम हो जाती है बल्कि फ्लक्स भी अधिक लगता है। भारतीय कोक में राख अधिक होती है।

ब्लास्ट फर्नेस के काम आने वाले कोक में निम्नलिखित गुण होने चाहियेः—

१. अधिक ठोस कार्बन, कम राख।

२. अधिक कठोरता—कठोर कोक चार्ज के बोझ से विचूर्ण नहीं होता अतः वायु का मार्ग अवरुद्ध नहीं होने पाता। कोक जितना ही कड़ा होगा, फर्नेस की ऊँचाई उतनी ही बढ़ाई जा सकती है।

३. घनत्व (Density) यदि कोक घना न होगा तो अधिक मात्रा में गैस बनेगी और ताप का अपव्यय होगा।

४. छिद्रमयत्व—कोक में पर्याप्त छिद्रमयत्व (Porosity) भी होना चाहिये जिससे फर्नेस के निचले भाग में वह वायु के सम्पर्क में अधिक आ सके तथा तेज आँच उत्पन्न हो सके।

५. समान आकार—कोक के टुकड़े समान आकार के हों। बहुधा चार-चार इंच के कोक के टुकड़े काम में लाये जाते हैं। समान आकार रहने से वायु का मार्ग प्रशस्त रहता है।

६. गन्धक और फास्फरस यथासम्भव कम हों।

बढ़िया कोक सिलेटी रंग का होता है। हाथ में लेने से दाग नहीं पड़ता तथा ठोकने पर धातु के समान ध्वनि निकलती है। वह कठिनाई से जलता है। उसका आ० घ० ०·६ से १·१, छिद्रमयत्व ४० से ५० प्रतिशत तथा चूर्ण करने की शक्ति (Crushing Strength) ६०० पौंड प्रति वर्ग इंच होती है। एक टन पिग लोहा बनाने में १६ से २५ हन्डरवेट कोक लगता है।

फ्लक्स

भारतीय लौह खनिज के विजातीय द्रव्य में अधिकांशतः सिलिका रहता है इसलिये फ्लक्स के रूप में चूने के पत्थर का उपयोग होता है। कभी-कभी डोलोमाइट ($Ca\,CO_3 . Mg\,CO_3$) का भी उपयोग होता है। इसके धातुमैल का द्रवणांक कम होता है। फ्लक्स के काम आने वाले चूने के पत्थर में सिलिका गन्धक और फास्फरस कम होना चाहिए। सिलिका फ्लक्स के कुछ भाग को निष्क्रिय कर देता है। भारतीय चूने के पत्थर में ४ से ७ प्रतिशत सिलिका रहता है। $CaCO_3$ ९० प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिये। भारत में प्रति टन पिग लोहे के लिए १० हन्डरवेट फ्लक्स लगता है।

———

अध्याय ६

पिग लोहे का उत्पादन

'पिग' शब्द का इतिहास

पिग अंग्रेजी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है शूकरी (सुअरिया)। ब्लास्ट फर्नेस की पिघली हुई धातु को विशेष पद्धति से 'इंगटो' में ढाला जाता है। धातु को एक सीधी नाली में बहने दिया जाता है। इस बड़ी नाली की दोनों बगलों में छोटी-छोटी नालियाँ होती हैं जिनमें जाकर धातु जम जाती है। एक बड़ी नाली की एक ओर छोटी-छोटी कई नालियाँ उसी प्रकार दिखाई पड़ती हैं जैसे भूमि पर लेटकर बहुत से बच्चों को स्तनपान कराती हुई शूकरी। इसी कल्पना पर 'पिग आयरन' (शूकरी लोहा) शब्द की उत्पत्ति हुई। 'पिग' शब्द बहुत प्रचलित हो गया है। इस पुस्तक में भी 'पिग' शब्द का ही प्रयोग किया जायगा। ब्लास्ट फर्नेस में से प्राप्त लोहे को 'पिग लोहा' और इस लोहे के इंगट को केवल 'पिग' कहा जाता है।

'ब्लास्ट फर्नेस' का अर्थ

फर्नेस शब्द का अर्थ है 'भट्ठी या भट्ठा'। ब्लास्ट* का अर्थ है तीव्रगामी वायु अथवा वायु का झोंका, जैसा धौंकनी में से निकलता है। जिस भट्ठे में वायु झोंके से भेजी जाय उसे 'ब्लास्ट फर्नेस' कहना चाहिये। पर इस शब्द का प्रयोग केवल उन्हीं भट्ठों के अर्थ में किया जाता है जो बड़े होते हैं, जैसे लोहे, तांबे, या सीसे के भट्ठे। कई प्रकार की छोटी भट्ठियों में भी वायु झोंके से भेजी जाती है। इनके नाम 'विन्ड फर्नेस' (Wind Furnace) या और कुछ होते हैं। इस पुस्तक में ब्लास्ट फर्नेस को 'वात भट्ठा' न कहकर 'ब्लास्ट फर्नेस' का उपयोग किया जायगा।

---

* 'ब्लास्ट' के लिए 'अभिधमन' शब्द का उपयोग किया जा सकता है—डा० रघुवीर।

उत्पादन पद्धति की रूपरेखा

पिग लोहे का उत्पादन लौह खनिज को ऊँचे बेलनाकार भट्ठे में (ब्लास्ट फर्नेस) में गलाकर किया जाता है। इस कार्य में तीन पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है :—

१—कठोर, छिद्रमय कोक (या लकड़ी का कोयला) जो खनिज को गलाता तथा उसके आक्सीजन को अलग करता है।

२—उपयुक्त फ्लक्स जैसे चूने का पत्थर जो खनिज के विजातीय द्रव्य एवं ईंधन की राख के साथ मिलकर धातुमैल बनाता है तथा—

३—वायु का झोंका जो ईंधन के जलने के लिये आवश्यक आक्सीजन देता है। खनिज, ईंधन और फ्लक्स को उचित अनुपात में क्रम से फर्नेस के ऊपरी भाग में छोड़ा जाता है। फर्नेस के नीचे से समान दूरी पर स्थित कई बेलनाकार नलियों (tuyers) में से वायु का झोंका भेजा जाता है। इस प्रकार वायु और गैसें 'चार्ज'[1] में से होती हुई ऊपर जाती हैं और बाहर निकल जाती हैं तथा चार्ज बहुत धीरे-धीरे नीचे सरकता है। फर्नेस प्रायः सदैव चार्ज से भरी रहती है। नालियों (टूयरों) के धरातल के ऊपर बननेवाली द्रव धातु तथा द्रव धातुमैल टपककर नीचे आता है और फर्नेस के निचले भाग में स्थित कूप या हार्थ (well or hearth) में एकत्र होता है। यहाँ धातुमैल हल्का होने के कारण अलग होकर धातु की सतह पर तैरता है। हार्थ के निचले भाग में एक छिद्र होता है जिसमें से द्रवधातु निकलती है। इसे 'टैप होल' (tap hole) कहा जाता है। इस छिद्र के ऊपर विरुद्ध दिशा में टूयरों के धरातल से २ या ४ फुट नीचे दूसरा छिद्र होता है जिसमें से धातुमैल निकलता है। धातु को कुछ घंटों (साधारणतः चार घंटों) के नियमित अंतर से निकाला जाता है तथा धातुमैल को जल्दी-जल्दी (साधारणतः २ घंटों में)। एक बार चालू होने पर फर्नेस ३ से ४ वर्ष या इससे अधिक समय तक लगातार चालू रहती है। आधुनिक ब्लास्ट फर्नेस प्रतिदिन लगभग १००० टन लोहा तैयार करती है। इस प्रकार एक बार चालू होने पर १० से १५ लाख टन लोहा

---

१ 'चार्ज' (charge) शब्द का आशय खनिज, ईंधन, फ्लक्स आदि उन पदार्थों से है जो फर्नेस में छोड़े जाते हैं। छोड़ने की क्रिया को 'चार्जिंग' कहा जाता है।

तैयार कर लेने के बाद वह बंद होती है। आवश्यक मरम्मत तथा नई रिफ्रेक्ट्री लाइनिंग के बाद वह पुनः चालू की जाती है।

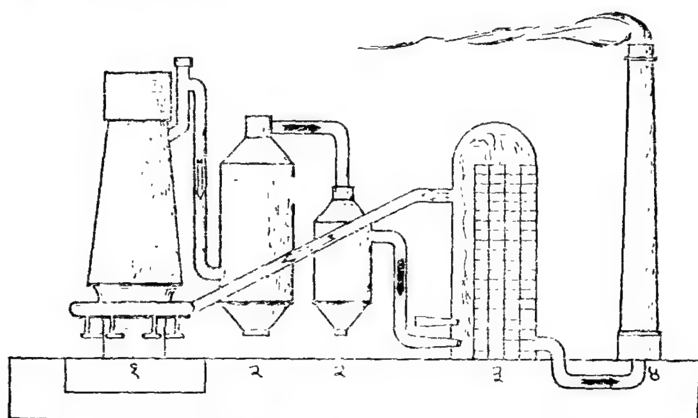
ब्लास्ट फर्नेस तथा चार्जिंग के साधन

लोहा उत्पन्न करनेवाले आधुनिक ब्लास्ट फर्नेस प्लांट में निम्नलिखित वस्तुएँ होती हैं :—

१—ब्लास्ट फर्नेस

२—वे यंत्र और साधन जिनसे खनिज, ईंधन और फ्लक्स ब्लास्ट फर्नेस के ऊपरी भाग तक भेजे जाते हैं तथा फर्नेस में छोड़े जाते हैं।

३—धमन यंत्र (blowing engine) जिनसे वायु का झोंका फर्नेस के अंदर भेजा जाता है।



चित्र सं० ३० ब्लास्ट फर्नेस प्लान्ट—(१) ब्लास्ट फर्नेस ; (२) डस्ट कैचर ; (३) स्टोव तथा (४) चिमनी।

४—ब्लास्ट को गर्म करने के लिये स्टोव।

५—बाष्प उत्पन्न करने तथा फर्नेस की दीवालों को ठंडा रखने के जल भेजने वाले पंप।

६—ब्लास्ट फर्नेस में बनी गैस को साफ करने का साधन।

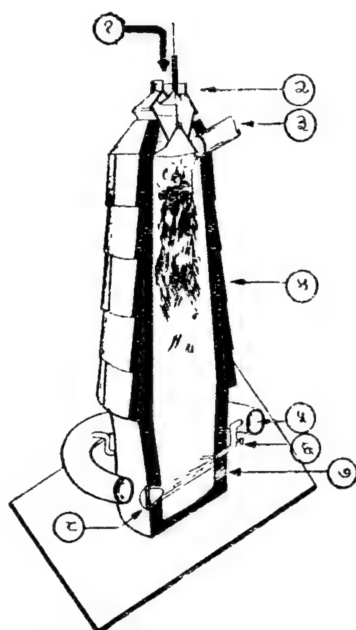
७—फर्नेस से प्राप्त गैस से चलने वाला प्लान्ट तथा—

८—पिग लोहा और धातुमैल स्थानान्तरित करने के साधन।

१ 'प्लांट' शब्द का अर्थ है यंत्रादि।

ब्लास्ट फर्नेस तथा चार्जिंग के साधन

ब्लास्ट फर्नेस ऊँची, बेलनाकार फर्नेस होती है। इसकी ऊँचाई करीब १०० फुट तथा सबसे चौड़े भाग में इसका व्यास बाहर से ३० या ३५ फुट होता है। इसके ऊपरी भाग को जो ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः चौड़ा होता जाता है 'स्टैक' (Stack) कहा जाता है। स्टैक का निचला भाग कान्ती लोहे के बने १२ या १६ मजबूत खम्भों पर टिका रहता है। फर्नेस का शेष भाग जो स्टैक के नीचे रहता है तथा ऊपर से नीचे पतला होता जाता है, 'बाश' (Bosh) कहलाता है। स्टैक का सारा बोझ खम्भों पर रहता है, बाश पर नहीं, इसलिये बाश को आवश्यकतानुसार खोलकर मरम्मत की जा



(१) लौह खनिज, कोक तथा चूने का पत्थर चार्ज करने का स्थान।
(२) दोहरे कप और कोन।
(३) डाउन कमर।
(४) अग्नि प्रतिरोधक ईंटों की लाइनिंग।
(५) बसल पाइप जिसमें गरम वायु दौड़ती है।
(६) टूयर।
(७) धातु मैल निकालने का मार्ग।
(८) धातु का टैप होल।

चित्र सं० ३१ ब्लास्ट फर्नेस

सकती है। आधुनिक ब्लास्ट फर्नेस में स्टैक के निचले ५ फुट तथा शीर्ष के १० फुट बिल्कुल खड़े (उदग्र वा vertical) रहते हैं। बाश एक छोटे बेलनाकार कूप (जिसे हार्थ कहा जाता है) के उपर स्थित रहता है। स्टैक और बाश का संधिस्थल फर्नेस का सबसे चौड़ा भाग होता है।

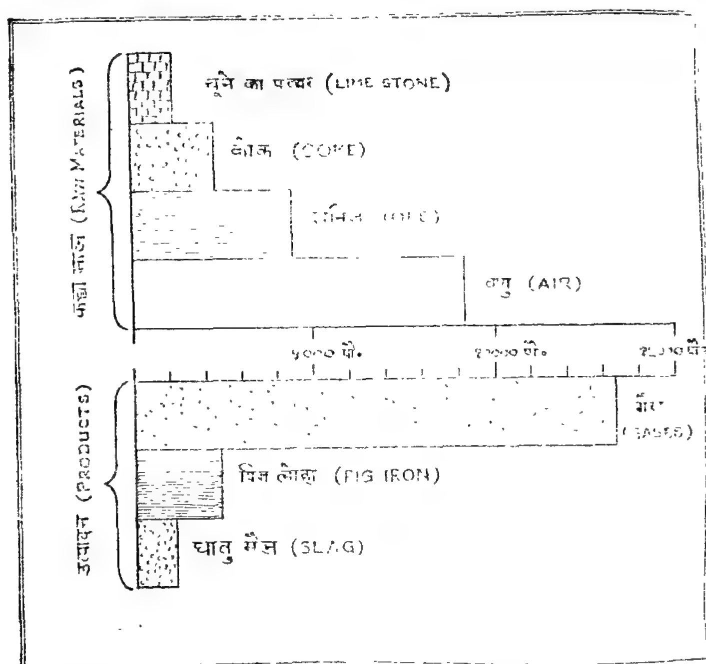
खनिज इत्यादि स्टैक के ऊपरी भाग में चार्ज किया जाता है। स्टैक नीचे की ओर क्रमशः चौड़ा होता जाता है जिससे चार्ज जो ऊर्ध्वगामी तप्त गैसों द्वारा गरम हो जाने के कारण आयतन में किंचित् बढ़ जाता है, आसानी से नीचे सरक सके। खनिज का Fe_2O_3 कार्बन या CO के द्वारा लघ्वीकृत होकर FeO बन जाता है तथा $CaCO_3$ खंडित होकर CaO और CO_2 बन जाता है। FeO पुनः लघ्वीकृत होकर Fe बन जाता है। स्टैक में चार्ज ऊपर से नीचे तक ठोस रूप में ही रहता है क्योंकि तापमान इतना ऊँचा नहीं होता कि द्रवण हो सके। फर्नेस का सबसे गरम भाग 'बाश' है। इसमें पिघलने की क्रिया सम्पन्न होती है। बाश ऊपर से नीचे की ओर सकरा होता जाता है। इसके ऊपरी भाग का व्यास करीब २५ फुट तथा ऊँचाई करीब १४ फुट होती है। हार्थ या कूप फर्नेस के सबसे नीचे का भाग है। यह बेलनाकार होता है तथा इसकी गहराई १० फुट और व्यास करीब २५ फुट होता है। इस कूप में गली हुई धातु एकत्र होती है तथा समय-समय पर टैप होल खोलकर बाहर निकाली जाती है। यह कूप ठोस कांक्रीट की बहुत गहरी तथा विस्तृत नीव पर बना रहता है। फर्नेस का बाह्य ढाँचा (जिसका नाम 'शाफ्ट' है) इस्पात की मोटी चद्दरों का बना रहता है जिसके अन्दर की ओर अग्नि प्रतिरोधक ईंटों की ४ या ५ फुट मोटी दीवार बनी रहती है। 'बाश' में ईंटों की दीवार २ या ३ फुट मोटी रहती है तथा 'बाश प्लेटों' की सहायता से जल संचालन द्वारा दीवार का तापमान अत्यधिक होने से बचाया जाता है अन्यथा ईंटें मुलायम होकर खराब हो सकती हैं। फर्नेस के शीर्ष भाग के पास आमने-सामने दो छिद्र रहते हैं। ये पाइप के द्वारा ढके रहते हैं तथा कुछ दूर जाकर दोनों पाइप मिलकर एक हो जाते हैं। इसे 'डाउन कमर' (Down comer या अधोगामी) कहा जाता है। यह अधोगामी पाइप 'डस्ट कैचर' (Dust catcher या धूलिग्राही कक्ष) से जुड़ा रहता है। गर्म गैस के साथ जो धूल चली आती है उसका अधिकांश इस कक्ष में रुक जाता है। शेष धूल शुष्क या तरल विधियों से अलग कर ली जाती है। स्वच्छ की हुई गैस स्टोवों या ब्वायलर में जलाई जाती है या अधिक शुद्ध कर गैस इंजन में उसका उपयोग होता है।

फर्नेस के शीर्ष भाग में खनिज आदि चार्ज करने तथा गैसों को वायु मंडल में जाने से रोकने के लिये विशेष प्रबन्ध रहता है इसको 'कप और कोन' (Cup and Cone) प्रबन्ध कहते हैं। चार्ज को पहियेदार डब्बों में भरकर

झुके हुए पुल सदृश ढाँचे पर से डब्बों को रस्सों द्वारा ऊपर खींचा जाता है। ऊपर पहुँच कर ये डब्बे (Bins) उलट दिये जाते हैं। दोहरे कप और कोन प्रबन्ध के द्वारा चार्ज फर्नेस में पहुँच जाता है पर गैसें बाहर नहीं जाने पातीं।

प्रतिदिन एक हजार टन लोहा उत्पन्न करने वाली ब्लास्ट फर्नेस की नाप नीचे दी जाती है :—

हार्थ या धातु कूप का आन्तरिक व्यास	...	...	२५ फुट
बॉश ,, ,,	...	...	२८ ,,
फर्नेस के उपरी भाग का आन्तरिक व्यास		...	१६ ,,
बाश की ऊँचाई (अंशतः झुकी हुई तथा अंशतः खड़ी)	...	...	१४ ,,
हार्थ की गहराई	...	...	१० ,,
फर्नेस की कुल ऊँचाई ...	...	...	९८ ,,



चित्र सं० ३२ एक टन पिग लोहा उत्पन्न करने में लगने वाले पदार्थ तथा उनकी मात्रा

इस प्रकार के भट्ठे में प्रतिदिन लगभग ३६०० टन ठोस चार्ज (१८०० टन खनिज, १२०० टन कोक, ६०० टन फ्लक्स) तथा ४००० टन से अधिक वायु की आवश्यकता पड़ती है। चार्ज का क्रम यह रहता है--खनिज, ईंधन, फ्लक्स। फर्नेस सदैव लगभग पूर्णतः भरी रखी जाती है। गला हुआ लोहा प्रति ४ घंटे (या कुछ कम ज्यादा) के अन्तर से निकाला जाता है। यह या तो सीधे छोटे पिगों के रूप में ढाल दिया जाता है अथवा डब्बुओं (laddles) में भरकर पिग ढालने की मशीन अथवा इस्पात उत्पादन विभाग में भेज दिया जाता है। धातुमैल फर्नेस में द्रव लोहे के ऊपर तैरता रहता है। यह प्रति २ से ३ घन्टे के अन्तर से निकाला जाता है। धातुमैल बहुधा कुछ दूर लेजाकर फेंक दिया जाता है या कभी-कभी उससे सस्ते प्रकार की सीमेंट, ईंटे या सड़क बनाने की सामग्री बनाई जाती है।

ब्लास्ट (वायु का झोंका)

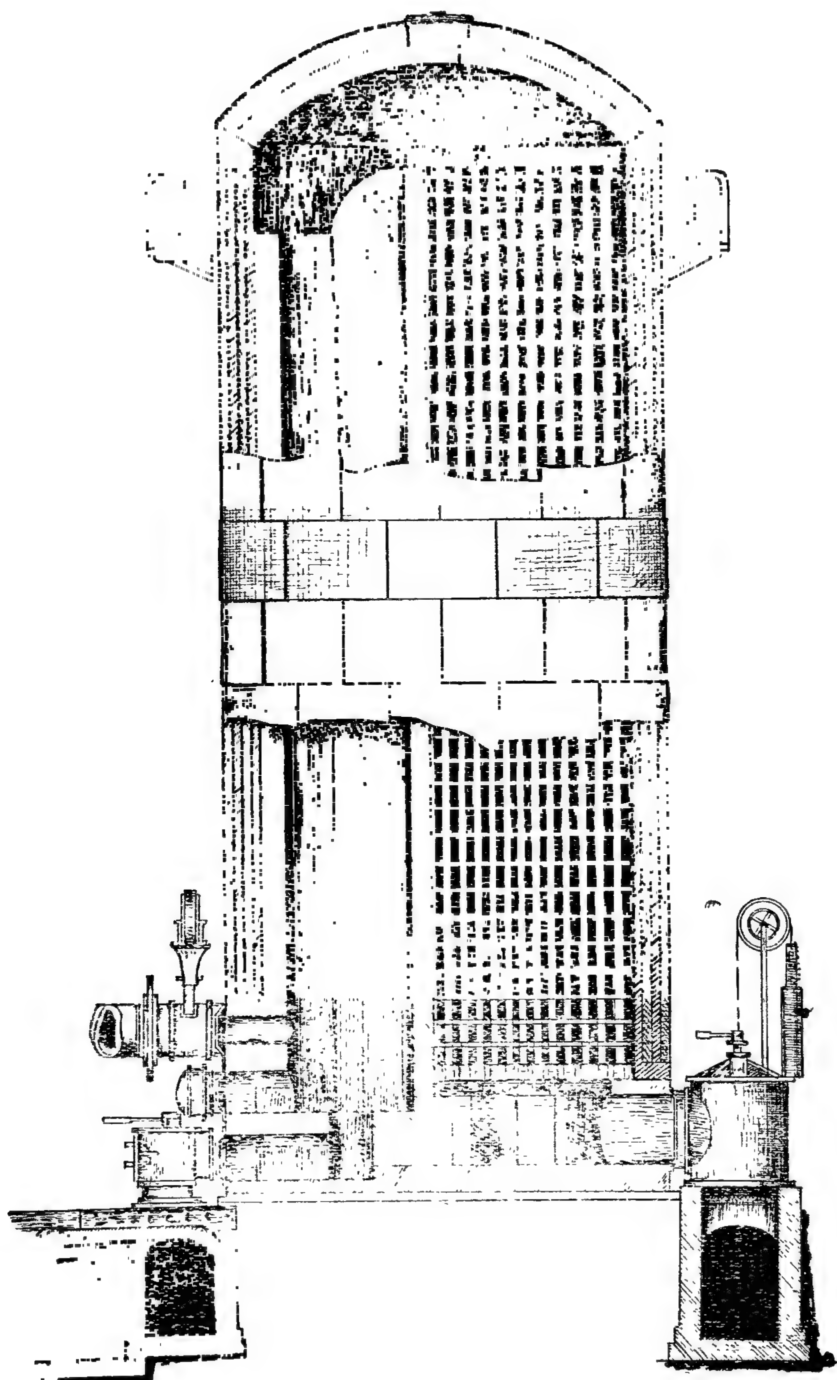
विशाल धमन यंत्रों के द्वारा प्रति मिनिट १०००००० घनफुट वायु (१५ से ३५ पौन्ड प्रति वर्ग इंच के दबाव पर) फर्नेस में भेजी जाती है। धमन यन्त्र (Blower) में से वायु स्टोवों में जाकर तप्त होती है और फिर एक बड़े पाइप में से जिसका नाम 'ब्लास्ट मेन' (Blast main) है, होती हुई वृत्ताकार बसल पाइप[1] (Bustle pipe) में जाती है। फर्नेस के सब टूयर बसल पाइप में जुड़े रहते हैं अतः वायु टूयरों के रास्ते, फर्नेस में पहुँचती है। वायु को गरम कर लेने से दो लाभ होते हैं—एक तो फर्नेस की गर्मी अंशतः पुनः फर्नेस को वापस मिल जाती है, दूसरे फर्नेस का तापमान बहुत ऊँचा (१८००° से० तक) पहुँच जाता है।

स्टोव (Stove)

एक ब्लास्ट फर्नेस के लिये अक्सर चार स्टोव रहते हैं। इनकी ऊँचाई करीब १०० फुट तथा व्यास २२ फुट होता है। ये बेलनाकार होते हैं। इनका ऊपरी भाग गुम्बजाकार होता है। स्टोव का चतुर्थांश नीचे से उपर तक एक कुएँ के समान रहता है। शेष भाग अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी की बनी जालियों से आच्छादित रहता है।

---

१. बसल पाइप—यह पाइप वृत्ताकार होता है तथा टूयर छिद्रों के कुछ ऊपर स्थित रहता है। देखिये चित्र सं० ३१।



चित्र सं० ३२   स्टोव

स्टोव का वाह्य ढाँचा इस्पात की मोटी चद्दरों का बना रहता है। भीतर चारों ओर अग्नि प्रतिरोधक ईंटों की दीवार रहती है। 'डाउन कमर' (अधोगामी) के रास्ते फर्नेस की गरम गैसें स्टोव के कूप सदृश भाग में नीचे से प्रवेश करती हैं और ऊपर पहुँचकर जालियों की राह नीचे उतरती हुई स्टोव के अधोभाग से बाहर निकल जाती हैं तथा चिमनी के द्वारा वायु मंडल में प्रवेश करती हैं। इन गैसों का अधिकांश ताप स्टोव हर लेता है और जब वायु स्टोव में से भेजी जाती है तब वह तप्त हो जाती है। इस प्रकार ताप वायु के द्वारा फर्नेस को वापस चला जाता है। स्टोव तीन घंटे तक गैस द्वारा गरम होते हैं तथा एक घंटे में वायु का झोंका सब गर्मी सोख लेता है। इस प्रकार चार स्टोवों की आवश्यकता पड़ती है। जब एक स्टोव वायु को गरम करता है, शेष तीन स्वयं गरम होते रहते हैं। ब्लास्ट फर्नेस की गैसों का तृतीयांश स्टोव गरम करने में व्यय होता है। वायु का झोंका स्टोव में गैस की दिशा की विरुद्ध दिशा से प्रवेश करता है। स्टोव द्वारा तप्त वायु का तापमान ६००° से ७००° सें० रहता है।

पम्पिंग प्लांट (Pumping Plant)

आधुनिक ब्लास्ट फर्नेस के लिए जल की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि बाश की दीवारों तथा ट्रयरों को अति उच्च तापमान का सामना करना पड़ता है। जल प्रवाह द्वारा ठंडा रखकर इस ताप से निरंतर उनकी रक्षा करना चाहिये अन्यथा वे गल जायँगे। १००० टन वाली फर्नेस में ट्रयर, हाथ तथा बाश को ठंडा रखने के लिये प्रति मिनट २००० से ३००० गैलन (१ गैलन = ५ सेर) पानी चाहिये। यदि पानी की पूर्ति १ मिनट के लिये रुक जाय तो ट्रयर और ठंडा करनेवाली प्लेटें जल उठेंगी। ब्वायलर, कंडेंसर तथा गैस साफ करने के लिये भी जल की आवश्यकता पड़ती है। सब मिलाकर प्रतिदिन प्रति ब्लास्ट फर्नेस के लिये ५० से ६० लाख गैलन पानी की आवश्यकता होती है। जल-पूर्ति की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है तथा ब्लास्ट फर्नेस की स्थापना करने के पहिले उस स्थान की जलपूर्ति का अध्ययन कर लेना चाहिये। कारखाने के पास विशाल जलाशय बनाये जाते हैं तथा 'मल्टी स्टेज सेंट्रीफ्यूगल पंपों' (multistage centrifugal pumps) के द्वारा पानी प्राप्त किया जाता है।

ब्लास्ट फर्नेस गैस

एक हजार टनवाली ब्लास्ट फर्नेस में प्रतिदिन लगभग ५७०० टन गैसें पैदा होती हैं। उनका रासायनिक संगठन कुछ इस प्रकार है :—

कार्बन डाइ आक्साइड	...	...	९ प्रतिशत
कार्बन मोनाक्साइड	...	...	२८ ,,
हाइड्रोजन ...	...	...	३ ,,
नाइट्रोजन ...	...	...	६० ,,

ब्लास्ट फर्नेस गैस की उष्णताकारी शक्ति (Calorific value) १०० बृटिश ताप यूनिट प्रति घनफुट है अर्थात् प्रत्येक टन लोहे के साथ १,२०,००,००० बृटिश ताप यूनिट ताप गैसों द्वारा उत्पन्न होता है। उसका करीब २५ प्रतिशत ब्लास्ट को गर्म करने में तथा १५ प्रतिशत धमन यंत्र चलाने में व्यय होता है। शेष ६० प्रतिशत दूसरे कार्यों में खर्च किया जा सकता है। चूँकि ब्लास्ट फर्नेस प्लान्ट में इतनी अधिक मात्रा में तापीय शक्ति प्राप्त हो सकती है तथा इस्पात उत्पादन और रोलिंग मिलों में शक्ति का अत्यधिक व्यय होता है, अतएव आजकल बहुधा ब्लास्ट फर्नेस तथा इस्पात उत्पादन केंद्र और रोलिंग मिल पास-पास और एक ही कंपनी के नियंत्रण में रखी जाती हैं। इससे खर्च में बहुत कमी हो जाती है। योरोप और अमेरिका में ब्लास्ट फर्नेस गैस का थोड़ा भाग कोक ओवन (Coke ovens) गरम करने में खर्च होता है। शेष गैस कोक ओवन गैस के साथ बराबर अनुपात में मिलाकर इस्पात बनाने की ओपन हार्थ भट्ठियों में जलाई जाती है।

गैस साफ करने का प्लान्ट

ब्लास्ट फर्नेस में गैस तीव्रगति (५ मील प्रति मिनट) से बहती है। अतः उसके साथ चार्ज की धूल पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहती है। यदि इस धूल को अलग न किया जाय तो स्टोव की जालियाँ धूल से अवरुद्ध हो जाती हैं। यह स्थिति अवांछनीय है अतः स्टोव में जाने के पूर्व गैस साफ कर ली जाती है। यदि धूल को बैठने का अवसर दिया जाय तो उसका अधिकांश स्वतः अलग हो जाता है। 'डस्ट कैचर' में यह कार्य सम्पन्न होता है। उसमें पहुँचते ही वायु एकाएक फैल जाती है क्योंकि उसका व्यास २० फुट होता है। इस प्रकार वायु का वेग कम हो जाता है। वायु को पुनः ऊपर उठकर और घूमकर बाहर जाना पड़ता है जिससे धूल के कण वायु के साथ शीघ्रतापूर्वक घूम सकने में

असमर्थ होने के कारण नीचे बैठ जाते हैं। एक डस्ट कैचर के बाद अंशतः स्वच्छ की हुई गैस बहुधा दूसरे वैसे ही डस्ट कैचर में भेजी जाती है। इससे बची हुई धूल का अधिकांश भी अलग हो जाता है। और अधिक साफ करने की आवश्यकता हो तो गैस को जल की बौछार या विद्युत् द्वारा साफ किया जाता है। डस्ट कैचर से निकलकर गैस का एक भाग स्टोवों में चला जाता है, शेष अन्यत्र।

शक्ति का उत्पादन

अतिरिक्त ब्लास्ट फर्नेस गैस का उपयोग गैस एंजिनों को चलाने अथवा ब्वायलरों में वाष्प उत्पन्न करने में होता है। योरोप में उससे गैस एंजिन चलाकर बिजली पैदा की जाती है। भारत में ब्वायलर गर्म किये जाते हैं तथा उनसे उत्पन्न वाष्प से टर्बाइन चलाकर शक्ति उत्पन्न की जाती है।

भट्ठियों और स्टोवों की लाइनिंग

फर्नेस का टिकाऊपन उचित प्रकार की लाइनिंग पर निर्भर रहता है। एक ब्लास्ट फर्नेस की लाइनिंग में नौ इंच वाली करीब बारह लाख ईंटें लगती हैं और पंद्रह-बीस लाख टन लोहा उत्पन्न करने के बाद ये बदल दी जाती हैं। ये ईंटें अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी से बनाई जाती हैं तथा भट्ठी के विविध भागों में तापमान और घर्षण की विभिन्नता के अनुसार भिन्न-भिन्न कोटि की ईंटें लगती हैं।

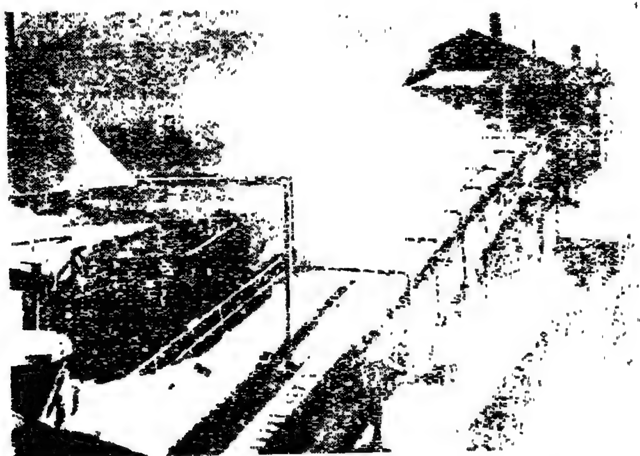
लोहा और धातुमैल

द्रव पिग लोहे का वितरण निम्नलिखित प्रकार से होता है :—

१—**बालू की नालियों में ढलाई**—एक दूसरे से जुड़ी हुई बहुत सी नालियाँ बनाई जाती हैं। ये सब मुख्य बड़ी नाली की दोनों ओर रहती हैं। फर्नेस की गली हुई धातु सीधे इन नालियों में बहती है और छोटे-छोटे पिग तैयार हो जाते हैं। यह पद्धति पुरानी है। कान्ती लोहे की ढलाई करने वाले इस प्रकार के पिग लोहे को पसन्द करते हैं, क्योंकि इसको तोड़कर टूटे हुए भाग के निरीक्षण से वे समझ लेते हैं कि ढलाई का माल कैसा होगा। पिगों में बालू के कण लग जाते हैं इसलिए उनका उपयोग क्षारीय ओपनहार्थ द्वारा इस्पात बनाने में नहीं किया जाता क्योंकि बालू अम्लीय होता है। उसके लिए अतिरिक्त

फ्लक्स की आवश्यकता पड़ती है तथा क्षारीय लाइनिंग भी खराब हो जाती है। इस काम में यंत्र द्वारा ढले पिग पसन्द किये जाते हैं।

२—यन्त्र द्वारा ढलाई—इस पद्धति में कान्ती लोहे के बने साँचों में ढलाई की जाती है। जिस प्रकार साइकिल की चेन अन्तहीन होती है उसी प्रकार की बहुत लम्बी और बड़ी चेन पर कान्ती लोहे के साँचे मढ़े रहते हैं। यह चेन गाइडों पर घूमती है। चेन की एक सीमा पर धातु गिरती है। एक साँचे के भरते ही दूसरा साँचा उसकी जगह पर आ जाता है। धातु के साँचे के सम्पर्क में आकर द्रव लोहा ठंडा हो जाता है तथा चेन के दूसरे छोर तक



चित्र सं० ३४ यन्त्र द्वारा पिग की ढलाई

पहुँचने पर पूरा पिग ठंडा होकर नीचे खड़े रेल के डब्बे में गिर जाता है, क्योंकि इस स्थान पर साँचा उल्टा हो जाता है और वापस चला जाता है। वापस होते समय मार्ग में इन साँचों पर चूने का घोल छिड़का जाता है। घोल का जल तुरंत सूख जाता है और चूने की पतली पर्त साँचे में लगी रहती है जिससे पिग साँचे में चिपकने नहीं पाता।

३—यदि ब्लास्ट फर्नेस प्लांट से लगे हुए इस्पात के उत्पादन का भी विभाग हो तो द्रव लोहे को रेलगाड़ी पर लदे डब्बुओं में भरकर इस्पात विभाग को भेज दिया जाता है जहाँ द्रव लोहा 'मिक्सर' (Mixer) में उड़ेल दिया जाता है। मिक्सर विशालकाय पात्र होता है जिसमें ६०० से १२०० टन तक द्रव लोहा समा सकता है। यह इस्पात की चद्दरों से बनाया जाता है तथा

अंदर रिफ्रेक्ट्री लाइनिंग रहती है। इसे यंत्र द्वारा झुकाया जा सकता है। इस पात्र के अंदर धातु एक अर्से तक द्रव अवस्था में रहती है। दाहकों (burners) के द्वारा इसे गर्म रखा जाता है। डब्बुओं में गर्म धातु एक घंटे तक पड़ी रह सकती है। कुल्टी स्थित ब्लास्ट फर्नेस के द्रव लोहे को १५ मील दूर बर्नपुर स्थित 'स्काब' (SCOB) के इस्पात विभाग को रेल द्वारा द्रव रूप में भेजने का प्रयत्न हो रहा है। ब्लास्ट फर्नेस के टैप होल (धातु छिद्र) को बंद करने के लिये एक छोटी तोप द्वारा मिट्टी के बहुत से लौंदे फेंके जाते हैं। ये टैपहोल में समाकर ताप द्वारा बहुत कड़े हो जाते हैं और धातु का बहना रोक देते हैं। छिद्र को सब्बलों से तोड़कर खोला जाता है।

धातु मैल का वितरण

प्रति टन द्रव लोहे के साथ आधे से एक टन तक धातु मैल तैयार होता है। इसे पानी की बौछार से ठंडा करके छोटे-छोटे टुकड़े बना लिये जाते हैं। इन टुकड़ों से गिट्टी, सीमेंट अथवा ईंटें बनाई जा सकती हैं। यदि धातु मैल का उपयोग न करना हो तो उसे रेलगाड़ियों में भरकर कुछ दूर ले जाकर फेंक दिया जाता है। कुछ कारखानों में दूर से ही धातु मैल के पहाड़ देखे जा सकते हैं।

ब्लास्ट फर्नेस के कार्य

ब्लास्ट फर्नेस के मुख्य पाँच कार्य हैं :—

१ वह खनिज के आक्सीजन को अलग करता है।
२ लोहे में कार्बन प्रवेश कराकर उसका द्रवणांक कम करता है।
३ लोहे को गलाता है।
४ धातु मैल को गलनशील बनाता है।
५ गलित धातु और धातु मैल को एक दूसरे से अलग करता है।

लौह खनिज में से आक्सीजन अलग करना

बहुतेरी धातु वैज्ञानिक क्रियाएँ इस सामान्य सिद्धान्त पर अवलंबित हैं कि आक्सीजन युक्त (Oxidized) पदार्थ आक्सीजन रहित पदार्थों के साथ मिश्रित नहीं होते तथा आक्सीजन युक्त पदार्थ आपस में मिलकर यौगिक बनाते हैं।

उदाहरणार्थ कार्बन, सिलिकन, फास्फरस आदि धातु में रासायनिक यौगिकों के रूप में विद्यमान रहते हैं। गलाये जाने पर आक्सीजन के साथ मिश्रित होकर (अर्थात् आक्साइड बनने पर) उनके आक्साइड धातु से अलग हो जाते हैं। इसके विपरीत जब कोई आक्सीजन युक्त पदार्थ आक्सीजन रहित (reduce) हो जाता है तब वह भट्ठे के अन्दर की धातु में प्रवेश कर जाता है। इसलिए यदि लौह आक्साइड फर्नेस में लघ्वीकृत होकर लोहा नहीं बन जाता तो यह धातु मैल के साथ मिलकर नष्ट हो जाता है।

लोहे में कार्बन का प्रवेश

शुद्ध लोहे का तापमान बहुत ऊँचा होता है (१५३०° सें०)। गलन परिधि के अधिकांश भाग में जो तापमान रहता है उससे शुद्ध लोहे को गलाना बहुत कठिन है। जब लोहे में कार्बन प्रवेश कर जाता है तब उसका द्रवणांक घट जाता है और वह न केवल सरलता से गल जाता है बल्कि द्रव लोहे का तापमान द्रवणांक से भी काफी ऊँचा हो जाता है। यह आवश्यक भी है क्योंकि अधिक गरम होने से लौह द्रव बहुत पतला हो जाता है जिससे धातु मैल सरलता से अलग हो जाता है।

लोहे का द्रवण

गलने पर ही आक्सीजन युक्त और आक्सीजन रहित पदार्थ दो समूह में विभक्त हो सकते हैं इसलिए लोहा (जो लौह आक्साइड से आक्सीजन अलग होने पर बनता है) प्राप्त करने तथा धातुमैल से उसे अलग करने के लिये खनिज को गलाना आवश्यक है।

विजातीय द्रव्य का गलनशील धातु मैल में परिवर्तन

धातु मैल को जन्म देने वाले मुख्य तीन पदार्थ हैं :—

१. खनिज का विजातीय द्रव्य
२. ईंधन की राख तथा
३. फ्लक्स का चूना।

गलने पर ये सिलिका के साथ सिलिकेट बनाते हैं। गन्धक चूने के संसर्ग से Cas बनाता है जो आक्साइड न होते हुए भी धातुमैल में चला जाता है क्योंकि स्वभावतः उसका आकर्षण धातु की अपेक्षा धातुमैल की ओर अधिक

होता है। चूना (CaO), अलूमिना (Al_2O_3), मैंगेनीज़ आक्साइड (MnO) इत्यादि इस तापमान पर द्रवणशील नहीं हैं पर उनके सिलिकेट द्रवणशील हैं।

लोहे का धातुमैल से अलग होना

विगलित अवस्था में आक्सीकृत पदार्थ लघ्वीकृत पदार्थों से अलग हो जाते हैं। धातुमैल पहिले और लोहा दूसरे समूह में आता है। दोनों पदार्थ रासायनिक दृष्टि से असमान हैं और दोनों तरल तथा विभिन्न आपेक्षित घनत्व के हैं इसलिए वे सरलता से अलग हो जाते हैं। धातु भारी होने के कारण नीचे बैठ जाती है और धातुमैल उसके धरातल पर तैरता है। दोनों को बाहर निकालने के लिए अलग अलग छेद होते हैं।

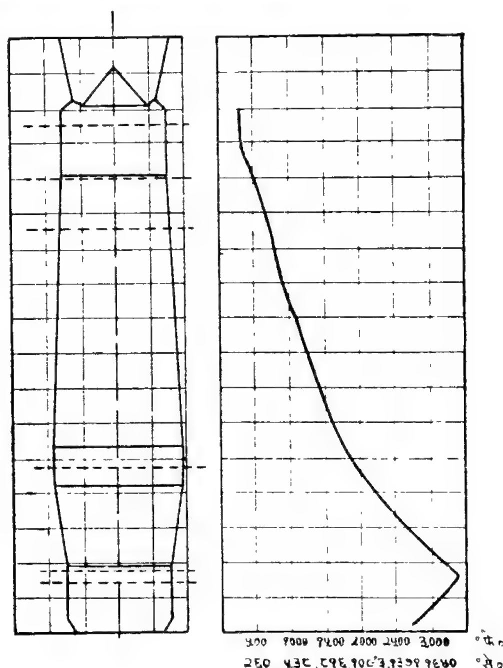
ब्लास्ट फर्नेस पद्धति का रसायन विज्ञान

ठोस चार्ज जैसे जैसे नीचे सरकता है वैसे-वैसे तापमान क्रमशः बढ़ता जाता है। भट्ठे के शीर्ष भाग का तापमान २००° सें० होता है और नीचे की ओर बढ़ता हुआ यह टूयर के धरातल पर १८५०° सें० हो जाता है। नीचे की ओर गैस में CO की मात्रा भी बढ़ती जाती है। शीर्ष भाग से टूयर तक पहुँचने में चार्ज को १५ घंटे लग जाते हैं जब कि गैस को पूरी फर्नेस पार करने में एक सेकंड से भी कम समय लगता है। कोक ही ऐसा पदार्थ है जो टूयर तक पहुँचकर दृढ़ रूप में रहता है।

फर्नेस को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। आसन्न विभागों में कोई स्पष्ट सीमा नहीं होती। जब चार्ज १० फीट से नीचे उतर आता है तब उसका तापमान ४००° सें० हो जाता है। इस तापमान पर चार्ज की सब आर्द्रता लुप्त हो जाती है। इस भाग का नाम 'आर्द्रता वाष्पीकरण परिधि' (Zone of moisture evaporation) है।

जब चार्ज अगले निम्न भाग में उतरता है तब उसका तापमान और भी बढ़ जाता है। कार्बन और CO द्वारा लघ्वीकरण की तीव्रता बढ़ जाती है तथा ५० फुट की निचाई तक पहुँचते पहुँचते सब आक्साइड लघ्वीकृत होकर लोहा बन जाता है। इस स्थान का तापमान लगभग १०५०° सें० रहता है। इस भाग का नाम 'लौह आक्साइड के लघ्वीकरण की परिधि' (Zone of reduction of iron oxide) है। Fe_2O_3 से Fe_3O_4, FeO तथा अंततः Fe

प्राप्त होता है। क्रिया १ से १२ तक देखिये। इस भाग के नीचे लोहा मधुमक्खी के छत्ते की तरह (Spongy) हो जाता है क्योंकि लौह आक्साइड में से आक्सीजन निकल जाता है और उसके निकलने से ये छिद्र से बन जाते हैं।



चित्र सं० ३५ ब्लास्ट फर्नेस के विविध भागों के तापमान

इस भाग के निचले छोर के पास चूने के पत्थर (फ़्लक्स) का विघटन (Decomposition) होकर CaO तथा CO_2 बन जाता है। इसी प्रकार $MgCO_3$ विघटित होकर MgO तथा CO_2 बनाता है। क्रिया ६ तथा १० देखिये। यहीं से चूने की फ़्लक्सिंग क्रिया आरम्भ हो जाती है। मुक्त CO_2 ऊर्ध्वगामी गैसों में मिल जाता है।

चार्ज और नीचे उतरकर गलन परिधि (Smelting zone) में आ जाता है। छिद्रमय (स्पंज सदृश) लोहा यहाँ तेज दहकते हुए कोक के घने सम्पर्क में आता है। अतः उसमें कार्बन प्रवेश करता है। क्रिया १७ देखिये। लोहा लगभग १३५०° सें० पर पिघलने लगता है यद्यपि शुद्ध लोहे का

द्रवणांक १५००° सें० से अधिक है। इस समय तक लोहा बॉश के पास तक पहुँच जाता है। मुक्त CaO बराबर SiO_2 तथा Al_2O_3 को फ्लक्स करता रहता है, अर्थात् इनके सिलिकेट बनते रहते हैं। १३५०° सें० पर यह रासायनिक क्रिया (फ्लक्सिंग) बहुत तीव्र हो जाती है (क्रिया १५ तथा १८) तथा टूयर के पास पूर्ण होकर समाप्त हो जाती है। यह परिधि ५० फुट की निचाई से लेकर बॉश से कुछ फीट ऊपर तक रहती है जहाँ का तापमान १३५०° सें० के ऊपर रहता है। इस परिधि में CO_2 नहीं रह सकता। वह तुरत CO में परिवर्तित हो जाता है। कुछ MnO, $Ca_3P_2O_8$ और SiO_2 भी लघ्वीकृत हो जाते हैं। (क्रिया १६ तथा २०)।

इस परिधि के नीचे बाश आ जाता है। यह तीव्रतम रासायनिक क्रियाओं की परिधि है। वातावरण अत्यन्त लघ्वीकर तथा तापमान बहुत ऊँचा रहता है। यहाँ आकर लोहा कार्बन से संतृप्त (Saturated) हो जाता है (क्रिया १७ देखिये)। उसका तापमान द्रवणांक से काफी ऊँचा पहुँच जाता है। यह अतिरिक्त ताप हार्थ में काम आता है। $Ca_3 P_2 O_8$ का लघ्वीकरण (क्रिया २०) पूर्ण हो जाता है तथा कुछ और Si और Mn लोहे में समा जाते हैं। क्रिया २१ देखिये। क्षारीय धातुमैल की क्रिया से लोहा अंशतः गन्धक मुक्त हो जाता है। क्रिया १६ देखिये।

ब्लास्ट फर्नेस के अन्दर जिस रासायनिक क्रियाओं के होने का विश्वास किया जाता है वे तथा उनका धरातल और तापमान निम्नलिखित सूची में दिये गये हैं :—

चार्ज के धरातल से गहराई	तापमान सें०	रासायनिक क्रियाएँ		क्रिया संख्या
१० फुट	४५०	$२Fe_2O_3 + ६CO$	$= ४Fe + ६CO_2$	(१)
		$Fe + CO_2$	$= FeO + CO.$	(२)
२० ,,	५७५	$Fe + CO$	$= FeO + C$	(३)
		$३Fe_2O_3 + C$	$= २Fe_3O_4 + CO$	(४)
		$Fe_3O_4 + C$	$= ३FeO + CO$	(५)

चार्ज के धरातल से गहराई	तापमान से०	रासायनिक क्रियाएँ	क्रिया संख्या
३० ,,	६५०	$Fe_3O_४ + CO = ३FeO + CO_२$	(६)
४० ,,	७५०	$FeO + CO = Fe + CO_२$	(७)
		$CO_२ + C$ २CO	(८)
४५ ,,	९००	$CaCO_3 = CaO + CO_२$	(९)
		$MgCO_3 = MgO + CO_२$	(१०)
		$Fe_3O_४ + C = ३FeO + CO$	(११)
		$FeO + C = Fe + CO$	(१२)
५० ,,	१०५०	$३FeO + ४C = Fe_3C + ३CO$	(१३)
		$MnO + C = Mn + CO$	(१४)
		$CaO+Al_२O_3+SiO_२$ = सिलिकेट	(१५)
६० ,,	१२००	$MnO + C = Mn + CO$	(१६)
७० फुट	१३५०	$३Fe + C = Fe_3C$	(१७)
		$CaO + Al_२O_3 + SiO_२$ = सिलिकेट समूह	(१८)
		$FeS + CaO + C = Fe+CaS+CO$	(१९)
८० ,,	१८००	$Ca_3P_२O_८ + ३SiO_२ + ५C + ६Fe = ३CaO\ SiO_२+५CO+२Fe_3P$	(२०)
९० ,,	१९००	$SiO_२ + २C + Fe = FeSi + २CO$	(२१)

नीचे लिखी सूची में ब्लास्ट फर्नेस द्वारा प्राप्त होनेवाले धातु पदार्थों के प्रकार तथा उनका रासायनिक संगठन दिया गया है :—

श्रेणी	प्रतिशत					
	सिलिकन	गन्धक	फास्फरस	मैंगेनीज़	कुल कार्बन	लोहा
नं० १ फाउंड्री पिग	२.५ से ३.०	.०३६से कम	०.२५से १ ०	१.०से कम	३.५०से ४.२५	शेष
नं० २ फाउंड्री पिग	२.० से २.५	.०४५से कम	०.२५से १.०	१ ० ,,	३.५०से ४.२५	,,
नं० ३ फाउंड्री पिग	१.५ से २.०	.०६०से कम	० २५से १.०	१.० ,,	३ ५०से ४.२५	,,
मैलेब्ल ढलाई	१·० से २·०	·०५० से कम	०·२	१·० से क५	३ ५० से ४·२५	शेष
फोर्ज	१·५ से करीब	१०० से कम	१·०	१ ० से कम	३·५० से ४·२५	,,
अम्लीय बेसिमर	१·० से १·५	·०५० से कम	०·१ या कम	·५ के करीब	३·५० से ४·२४	,,
क्षारीय बेसिमर	१·०से कम	·०५० ,,	२·० से ३ ०	·५ से कम	३·५० से ४·२५	,,

श्रेणी	प्रतिशत					
	सिलिकन	गंधक	फास्फरस	मैंगेनीज़	कुल कार्बन	लोहा
न्यूनफास्फरस अम्लीय लोहा	२·०से कम	·०३० ,,	·०३०	१·० कम	३·५ से ४·२५	,,
क्षारीय लोहा	१·२५ ,,	·०५० ,,	·१० से १०	१·० से २·५	३·५ से ४·२५	,,
स्पीगल	१·०	·०५० ,,	·१५०	१८ से २२	५ ० से ६·०	,,
लौह मैंगेनीज़	·५से१·०	·०३० ,,	·१० से ·३०	७८ से ८२	५·० से ७·०	,,
लौह सिलिकन	८ से १५	·०७० ,,	·१ से ३	·५	१·० से २·०	,,

फर्नेस में सिलिकन, मैंगेनीज़, गन्धक और फास्फरस का वितरण :—

सिलिकन

खनिज, ईंधन और फ्लक्स तीनों के साथ सिलिकन (मुक्त Si या SiO_2 के रूप में) फर्नेस में प्रवेश करता है। गलन परिधि में पहुँचकर वह FeO, MnO, CaO, MgO आदि के साथ मिलकर उनको सिलिकेट बनाता है। उच्च तापमान पर कुछ सिलिकेट विच्छिन्न (Decompose) हो जाते हैं। अत्यन्त उच्च तापमान (१५००° से १७५०° सें०) पर सिलिका कार्बन या CO द्वारा लघ्वीकृत होकर Si बनता है जो लोहे के साथ मिलकर FeSi बनाता है। यह लोहे में घुल जाता है। $CaO.SiO_2$ कठिनता से विघटित होता है परन्तु अन्य सिलिकेट सरलता से विघटित हो जाते हैं। चार्ज में फ्लक्स की मात्रा बढ़ाकर लोहे में प्रवेश करने वाले सिलिकन को कम किया जा सकता है।

$\frac{CaO + MgO}{SiO_2}$ धातु मैल का अनुपात कहलाता है।

गन्धक

यह ईंधन और खनिज में मौजूद रहता है। इसका अधिकांश भाग CaS बनकर धातु मैल में मिल जाता है। कुछ भाग SO_2 गैस बनकर उड़ जाता है। शेष पिग लोहे में प्रवेश करता है। यदि मैंगेनीज़ अनुपस्थित हो तो गन्धक पूर्णतः FeS के रूप में और यदि मैंगेनीज उपस्थित हो तो अधिकांश गन्धक MnS के रूप में लोहे में मौजूद रहता है। गन्धक का नियन्त्रण बहुत आवश्यक है और वह निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है :—

१. धातुमैल का अनुपात बढ़ाकर—इससे क्षारों की मात्रा बढ़ जाती है और अधिक CaS बनता है।

२. धातुमैल का आयतन बढ़ाकर—इससे धातुमैल में गन्धक का अनुपात कम हो जाता है।

३. धातुमैल की तरलता बढ़ाकर—फ्लक्स में MgO का अनुपात बढ़ा देने से धातुमैल की तरलता बढ़ जाती है साथ ही धातुमैल का अनुपात भी कम नहीं होता।

४. धातुमैल में मैंगेनीज का अंश बढ़ाकर—इससे MnS बनकर क्रमशः धातुमैल में चला जाता है जब कि FeS धातु में घुल जाता है। गन्धक लोहे की अपेक्षा मैंगेनीज़ की ओर अधिक आकर्षित होता है अतः FeS से पहिले MnS बनता है।

मैंगेनीज़

यह चार्ज में अधिकतर आक्साइड (MnO) के रूप में मौजूद रहता है। इसका कुछ भाग FeO के साथ लघ्वीकृत होकर Mn बनता है। मैंगेनीज़ का ३/५ भाग धातु में तथा २/५ भाग धातुमैल में चला जाता है। तापमान तथा धातुमैल की क्षारीयता की अधिकता से अधिक मैंगेनीज़ लोहे में घुलता है।

फास्फ़रस

खनिज और कोक दोनों में फास्फ़रस मौजूद रहता है। फर्नेस के अंदर जिस तापमान पर धातुमैल बनता है उसपर CaO सिलिका (SiO_2) से मिल जाता है और P_2O_5 मुक्त होकर लोहे में प्रवेश करता है। चार्ज में मौजूद

सबका सब फास्फरस लोहे में प्रवेश कर जाता है और Fe_3P के रूप में मौजूद रहता है।

ब्लास्ट फर्नेस का धातुमैल

Al_2O_3 की मात्रा (१७ प्रतिशत तक) बढ़ाने से धातुमैल का द्रवणांक कम हो जाता है। धातुमैल का सबसे महत्वपूर्ण कार्य लोहे के गन्धक का नियंत्रण करना है। चित्र संख्या २० देखिए। तापमान बढ़ाने पर अधिकाधिक FeS, CaS में परिवर्तित होता है और धातुमैल की तरलता बढ़ने पर CaS सरलता से ऊपर उठकर धातुमैल में मिल जाता है। जब मैंगेनीज़ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है तब वह FeS से मिलकर (Fe, Mn) S बनाता है जो लोहे में अघुलनशील होने के कारण धातुमैल में चला जाता है। वहाँ CaO के सम्पर्क में आकर CaS, FeO और MnO की उत्पत्ति होती है। ये सब धातुमैल में मौजूद रहते हैं। अतः मैंगेनीज़ गंधक नष्ट करने का प्रधान साधन है। धातुमैल में लोहे की मौजूदगी से उसका रंग काला हो जाता है। धातुमैल का तापमान घटने पर उसमें लोहा चला जाता है। धातुमैल का रंग देखकर उसके तापमान का अनुमान किया जा सकता है। यदि धातुमैल का रंग काला हो तो उसका तापमान कम और यदि रंग हल्का हो तो तापमान अधिक होना चाहिये।

निम्नलिखित सूची में विभिन्न देशों के ब्लास्ट फर्नेस-धातुमैल की रासायनिक बनावट दी गई है :—

देश	SiO_2	CaO	MiO	Al_2O_3	MnO	FeO
भारत (टाटा)	२७	३०	२०	१७	१	५
भारत (भद्रावती)	३८	३२	,,	२८	१	१
इंग्लैण्ड	२५	४५	४	१७	१	२
	SiO_2	CaO	MgO	Al_2O_3	MnO	FeO.
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	३३	४०	५	२०	१	१

सारांश

१. क्षारीय धातुमैल तथा उच्चतापमान न्यून सिलिकन और न्यून गंधक युक्त पिग लोहा उत्पन्न करते हैं।

२. जब तापमान उच्च हो और धातुमैल इतना क्षारीय रहे कि वह गन्धक को घोल सके पर इतना क्षारीय न रहे कि सिलिका को लघ्वीकृत होने से रोक सके तब पिग लोहे में सिलिकन अधिक और गन्धक कम रहता है।

३. अम्लीय धातुमैल और कम तापमान के द्वारा लोहे में कम सिलिकन और अधिक गन्धक रहता है।

४. अम्लीय धातुमैल तथा उच्च तापमान के द्वारा लोहे में अधिक सिलिकन और अधिक गन्धक रहता है।

पिग लोहे का वर्गीकरण

सामान्यतः पिग लोहे का व्यापारिक वर्गीकरण संख्याओं के द्वारा (१ से ४ तक) किया जाता है। ४ के बाद 'माटल्ड' (Mottled) और उसके बाद 'श्वेत' कान्ती लोहा आता है। इस वर्गीकरण में क्रमशः सिलिकन और मुक्त कार्बन (ग्रेफाइट) कम होते जाते हैं तथा गन्धक और संयुक्त कार्बन (सीमेन्टाइट) बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार मुक्त कार्बन नं० १ फाउन्ड्री लोहे में सबसे अधिक रहता है तथा श्वेत लोहे में सबका सब कार्बन संयुक्त रहता है। बहुधा लोहे को तोड़कर देखने से उसकी बनावट का अनुमान किया जा सकता है, पर यह रीति अधिक विश्वसनीय नहीं है। अतः रासायनिक विश्लेषण आवश्यक है।

नं० १ फाउन्ड्री—यह मुलायम और काले रंग का होता है। तोड़ने पर इसके रवे साफ-साफ दिखाई पड़ते हैं। इसमें कार्बन और सिलिकन की मात्रा अधिक रहती है। कार्बन मुक्त रूप में (ग्रेफाइट की लम्बी वर्तिकाओं के रूप में) रहता है। अतः यह कमजोर होता है। यह शीघ्र पिघलता है परन्तु अल्प दृढ़ता के कारण इसका उपयोग पतली ढलाइयों में होता है, जहाँ दृढ़ता की अधिक आवश्यकता नहीं रहती या फिर दूसरी कोटि के लोहे के साथ मिलाकर उन्हें शीघ्र तरल बनाने में होता है।

नं० २ फाउंड्री :—यह रंग में नं० १ से हल्का होता है तथा उसके रवे छोटे और घने होते हैं। यह नं० १ से कड़ा तथा दृढ़ होता है और गलाने पर कम तरल होता है। इसका उपयोग भी छोटी ढलाइयों में होता है।

नं० ३ फाउंड्री :—इसके रवे नं० २ से भी छोटे तथा अधिक घने होते हैं। टूटने पर यह अधिक खुरदरा नहीं मालूम होता। इसमें ग्रेफाइट की मात्रा कम होती है और उसकी वर्तिकाएँ बहुत बारीक होती हैं। यह नं० २ से कठोरतर तथा दृढ़तर होता है और पिघलने पर उससे कम तरल होता है। दूसरी किस्मों या स्क्रैप (Scrap) के साथ मिलाकर इसका उपयोग ढलाई के काम में बहुत होता है।

नं० ४ फाउंड्री किस्म का उपयोग मुलायम या मैलेबल ढलाई में तथा 'फोर्ज' किस्म का उपयोग पिटवाँ (Wrought) लोहा बनाने में होता है।

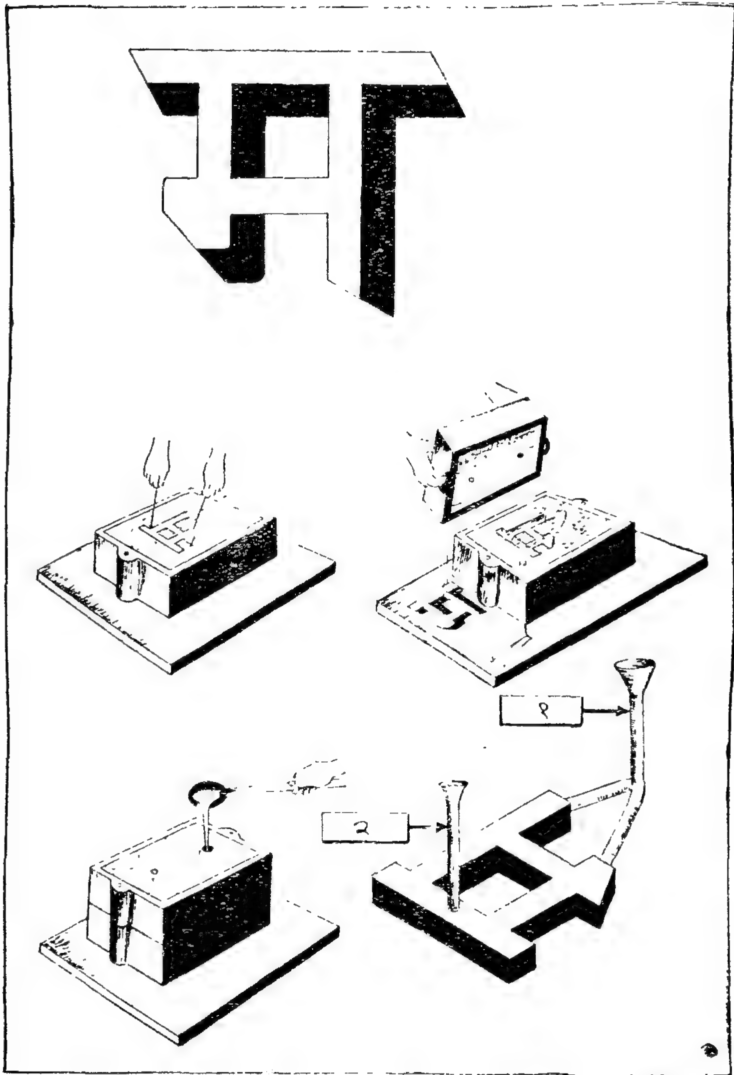
———

अध्याय १०

फाउन्ड्री (ढलाई घर)

दैनिक व्यवहार में आनेवाली धातु की बहुतेरी वस्तुएँ ढालकर बनाई जाती हैं। मंदिरों के घंटे, मूर्तियाँ, रसोई के बर्तन, पहिए, यंत्र के अवयव इत्यादि असंख्य पदार्थ ढाले जाते हैं। ढलाई का सिद्धान्त बहुत साधारण है यद्यपि व्यवहार में अनेक जटिल कठिनाइयाँ सामने आती हैं। इच्छित वस्तु का साँचा बनाकर उसमें पिघली हुई धातु भर दी जाती है। ठंडी होने पर धातु का आकार साँचे के अनुरूप हो जाता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

मान लीजिये कि धातु का ठोस "म" ढालना है। लकड़ी या अन्य पदार्थ का एक ठोस प्रतिरूप (Pattern) जो आकार और विस्तार में इच्छित "म" अक्षर के समान होता है बना लिया जाता है। फर्मे में ढलाई के काम आने योग्य रेत भरकर प्रतिरूप को उसमें फिट कर दिया जाता है, जिससे रेत में प्रतिरूप के बराबर स्थान बन जाता है। अब प्रतिरूप को निकाल कर फर्मे को ढँक दिया जाता है तथा छिद्र में से पिघली हुई धातु छोड़ी जाती है। ठंडी होने पर धातु का ठोस "म" अक्षर बन जाता है। चित्र संख्या ३६ में ये क्रियाएँ क्रमवार दिखाई गई हैं। सबसे ऊपर ठोस "म" अक्षर है जिसकी ढलाई करनी है। मध्य में बाईं ओर समतल तख्ते पर दोनों ओर से खुला लोहे का आयताकार बक्स रखा है जिसके दोनों छोरों पर लम्बे छिद्र हैं। बक्स में रेत भरकर उसके ऊपर लकड़ी का बना ठोस "म" रख दिया जाता है। लोहे के टुकड़े से रेत को इस प्रकार चिकना कर दिया जाता है कि बक्स के किनारे "म" की ऊपरी सतह तथा रेत की ऊपरी सतह समतल हो जाती है। लोहे के दूसरे बक्स में जो आकार और विस्तार में पहिले के समान होता है और जिसके छोरों पर दो मोटी कीलें निकली रहती हैं रेत भरकर ठस और चौरस कर दी जाती है। अब सावधानी से लकड़ी के "म" को ऊपर उठाकर अलग कर लिया जाता है। मिट्टी में "म" के अनुरूप स्थान बन जाता है। ये बातें चित्र के मध्य भाग की दाहिनी ओर दिखाई गई हैं। ऊपरी बक्स को सावधानी से निचले बक्स पर रख दिया जाता है। उसकी कीलें निचले बक्स



चित्र सं० २६ ठोस 'म' की ढलाई

(१) 'रनर' धातु अन्दर जाने का मार्ग; (२) 'राइज़र' ढलाई के उपरान्त अतिरिक्त धातु के बाहर निकलने का मार्ग। ढला पदार्थ 'म' जब ठण्डा होकर सिकुड़ने लगता है तब राइज़र स्थित द्रव धातु के कारण ठोस ढले पदार्थ में सिकुड़न नहीं पड़ता।

के छिद्रों में फिट हो जाती हैं जिससे ऊपरी बक्स तनिक भी इधर-उधर नहीं सरक सकता। अब मिट्टी से आच्छादित चमचों या डब्बुओं में पिघली हुई धातु भरकर ऊपरी बक्स में बने छिद्र की राह से साँचे में छोड़ी जाती है। जब धातु ऊपरी बक्स के ऊपर निकलकर बहने लगती है तब समझ लेना चाहिये कि साँचा पूर्णरूप से भर गया है। कुछ समय के बाद जब धातु ठंडी हो जाती है तब ऊपरी बक्स हटा दिया जाता है और ढला हुआ "म" निकाल लिया जाता है (देखिये चित्र का अधोभाग)। ठोस "म" के साथ कुछ अनावश्यक धातु भी जो पिघली हुई धातु छोड़ते समय छिद्र में भर जाती है, लगी रहती हैं। इसको तोड़कर अलग कर लिया जाता है।

पोली वस्तुओं की ढलाई में साँचा दो भागों में बनाया जाता है। कटोरी का उदाहरण लीजिए। साँचे के एक भाग में कटोरी को धँसा कर एक स्थान बना लिया जाता है और दूसरे भाग में समतल रेत के ऊपर रेत उठाकर कटोरी के भीतरी भाग के बराबर एक स्तूप-सा बना लिया जाता है। अब दूसरे भाग को उल्टा करके प्रथम भाग पर सावधानी से बैठा देने पर प्रथम भाग के गोलाकार स्थान तथा द्वितीय भाग के 'स्तूप' के बीच कुछ खाली स्थान बच रहता है जो ठीक कटोरी के बराबर होता है। छिद्र द्वारा इस रिक्त स्थान में पिघली धातु भर कर कटोरी तैयार कर ली जाती है।

उपर्युक्त दो उदाहरणों से ढलाई की क्रिया का आभास मिल जाता है। वास्तव में ढलाई बहुत ही मनोरंजक और चतुरतापूर्ण कला है। बहुतेरे यंत्रों के अवयव जो अपने आकार की विचित्रता के कारण यंत्र द्वारा नहीं बनाये जा सकते, ढलाई के द्वारा ही बनाये जाते हैं।

धातुएँ ठंडी होने पर निश्चित अनुपात में सिकुड़ती हैं। लकड़ी का प्रतिक्रम (Pattern) बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये और उसे वास्तविक पदार्थ के आकार से कुछ बड़ा रखना चाहिये। लकड़ी के प्रतिरूप बनाने वाले बढ़ई के पैमाने में इंच सूत आदि कुछ बड़े रहते हैं, बढ़ई नक्शे Drawing में लिखे नापों को इस विशेष पैमाने से नाप कर प्रतिरूप बनाता है।

ठंढी होने पर कौन धातु कितनी सिकुड़ती है इसका हिसाब निम्नलिखित सूची में किया जाता है :—

धातु		सिकुड़न प्रतिफुट
अलुमीनियम	... ...	५।३२ से ६।३२ इंच
पीतल	... ...	५।३२ से ३।१६ इंच
श्वेत कांती लोहा	... ...	१।४ इंच

काला कांती लोहा	...	...	...	१।१० से ५।३२ इंच
गन मेटल	...	...	...	१।८ से ३।१६ इंच
सीसा	...	...	...	५।१६ इंच
गिलट	...	...	...	१।४ इंच
जस्ता	...	...	...	५।१६ इंच
इस्पात	...	...	...	३।१६ से १।४ इंच

साँचा बनाने योग्य रेत

धातु की ढलाई रेत या धातु के बने साँचों में की जाती है। धातु के साँचे प्रायः कान्ती लोहे के होते हैं। ये साँचे बहुत टिकाऊ होते हैं। ये ताप के अच्छे संचालक होते हैं इस कारण ढली हुई वस्तु का बाह्य भाग अत्यन्त शीघ्रता से ठंडा (Chilled चिल्ड) हो जाता है। उसमें कठोरता आ जाती है। पिघली धातु में घुली हुई गैस के निकलने में कठिनाई होती है अतः ढलाई में धमन छिद्र (Blow holes) बन जाते हैं। मिट्टी या रेत के साँचों में ये अड़चनें नहीं पैदा होतीं किन्तु ये साँचे केवल एक बार काम में आते हैं। सस्तेपन और उत्पादन की बहुलता की दृष्टि से लोहे के साँचे तथा उत्तमता और ढलाई की विभिन्नता की दृष्टि से मिट्टी या रेत के साँचे पसन्द किये जाते हैं।

सब प्रकार की रेत साँचे बनाने के काम नहीं आ सकती। जिन रेतों में तापावरोध (Refractoriness), नम्यता (Plasticity), छिद्रमयत्व (Porosity), दृढ़ता (Strength) इत्यादि गुण होते हैं वे साँचे बनाने के उपयुक्त होती हैं। इस प्रकार की मिट्टी या रेत के बने साँचे अति उत्तम होते हैं।

तापावरोध

द्रव धातु का तापमान बहुत ऊँचा होता है अतः साँचे की रेत ऐसी होनी चाहिये जो उच्च तापमान सह सके और धातु के सम्पर्क में आनेवाले धरातल खराब न हों। दूसरे शब्दों में रेत (Silica सिलिका) के रवे शुद्ध हों। हल्की ढलाइयों में तापावरोध की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी भारी ढलाइयों में होती है।

दृढ़ता

साँचे में छोड़ी जानेवाली द्रव धातु बहुत वज़नदार होती है और वेग के कारण उसकी शक्ति और बढ़ जाती है। अतः साँचे की रेत या मिट्टी इतनी दृढ़ होनी चाहिये कि साँचा न टूटने पावे और न उसकी बारीकियाँ नष्ट होने पावें। रेत की यह दृढ़ता बहुत कुछ उस मिट्टी पर निर्भर रहती है जो रेत के लघु कणों को परस्पर आबद्ध करने के लिए मिलाई जाती है। रेत को विशेष प्रकार की चक्कियों में पीस देने से उसके कण एक से हो जाते हैं और रेत में विद्यमान या अलग से मिलाई गई मिट्टी के बारीक कण रेत के कणों के चारों ओर लग जाते हैं। इससे रेत के कण सरलता से आपस में आबद्ध हो जाते हैं और साँचे की दृढ़ता बढ़ जाती है।

छिद्रमयत्व

साँचे में रेत के टुकड़ों के बीच-बीच लघु छिद्र रहने चाहिये जिससे ठंढी होती हुई धातु तथा साँचे में से निकलनेवाली गैसों और वाष्प को बाहर जाने का मार्ग मिल सके। यदि ये छिद्र न रहें (अर्थात् साँचे में छिद्रमयत्व न रहे) तो गैसें और वाष्प अन्दर ही कैद रह जाती हैं तथा ढलाई में 'धमन छिद्र' पड़ जाते हैं। साँचे को छिद्रमय बनाने के लिए समान आकार के रेत कण तथा गोबर, बुरादा, कोयले का चूर्ण इत्यादि का रेत में रहना आवश्यक है।

रेत का चुनाव

रेतें विभिन्न प्रकार की होती हैं और उनके भौतिक गुण भी अलग-अलग होते हैं। किसी में मिट्टी का अंश अधिक होता है तो किसीके कण बिखरे हुए होते हैं। और भी बहुतेरी विभिन्नताएँ मौजूद रहती हैं। अलग-अलग प्रकार की रेतों को आवश्यकतानुसार विविध अनुपातों में मिलाकर साँचे बनाये जाते हैं। सभी स्थानों में साँचे के योग्य उत्तम रेत नहीं मिलती। अतः उपयुक्त रेत का चुनाव समीपस्थ प्रदेश में उपलब्ध रेतों के द्वारा सीमित हो जाता है। कभी-कभी दूर से भी उत्तम कोटि की रेत मंगानी पड़ती है।

आर्द्र रेत (Green Sand)

छोटी वस्तुओं की ढलाई में जो रेत उपयोग में लाई जाती है उसे आर्द्र रेत कहते हैं। इसमें प्रकृत रूप में गीली रेतों का मिश्रण रहता है अथवा किंचित् जल मिलाकर साँचा बनाया जाता है। इसमें गोबर, बुरादा इत्यादि

दहनशील पदार्थ नहीं मिलाये जाते न साँचे को गरम कर सुखाने की ही आवश्यकता पड़ती है। साँचा बन जाने पर कोयले की धूल ग्रेफाइट (Blacking) का घोल या सेलखरी (गोरा पत्थर, संजराहट, सोपस्टोन या talc) की बुकनी साँचे की सतह पर लगा दी जाती है। ऐसा करने से ढले पदार्थ में रेत कण चिपकने नहीं पाते, और ढलाई साफ तथा चिकनी होती है। इस रेत के बने साँचे में दृढ़ता नहीं होती इसीलिए बड़ी ढलाई में इसका उपयोग कम किया जाता है। इस्तेमाल की गई रेत में थोड़ी सी नई रेत मिलाकर साँचा बनाया जाता है।

आर्द्र रेत की बनावट धातुओं की विभिन्नता के अनुसार अलग-अलग प्रकार की होती है। लोहे की ढलाई में काम आनेवाली आर्द्र रेत की बनावट का उदाहरण यह है :—

फेसिंग[1] रेत	पैकिंग रेत[2]
४ टोकरी जली हुई रेत (पूर्व ढलाई से प्राप्त रेत)	६ टोकरी जली हुई रेत
१ टोकरी कोयले का चूर्ण २ टोकरी नदी की सिलिकामय (पीली) रेत ३ टोकरी सिलिकामय शिला से प्राप्त रेत	२ टोकरी सिलिकामय शिला से प्राप्त रेत थोड़ी नदी किनारे की रेत (छिद्रमयत्व बढ़ाने के लिये)

शुष्क रेत (Dry Sand)

बड़ी ढलाई के साँचों में पर्याप्त दृढ़ता होनी चाहिये। आर्द्र रेत में मजबूती नहीं होती इस कारण इस कार्य में शुष्क रेत का उपयोग किया जाता है।

---

१ फेसिंग : इसका तात्पर्य उस रेत से है जो धातु के संपर्क में आती है।

२. पैकिंग : इसका तात्पर्य उस रेत से है जो साँचे के शेष स्थान को भरने के काम आती है।

इसमें बहुधा पीसी हुई रेत (जिसमें मिट्टी का पर्याप्त अंश रहता है) गोबर, घोड़े की लीद या बुरादा इत्यादि रहता है। जल की मात्रा कम रहती है। साँचा तैयार हो जाने पर २००° सें० से ३००° सें० तापमान पर गर्म किया जाता है। इससे उसकी मजबूती और बढ़ जाती है। दहनशील पदार्थ (गोबर इत्यादि) गैस बनकर तथा जल वाष्प बनकर उड़ जाता है जिससे साँचा छिद्रमय हो जाता है। शुष्क रेत की ढलाई में गैस कम पैदा होती है तथा ढलाई साफ होती है। बड़ी वस्तुएँ ढालने में इसी रेत का उपयोग किया जाता है। इस्पात की ढलाई में भी यही काम आती है। आवश्यकता पड़ने पर आर्द्र रेत या शुष्क रेत दोनों में कोयले का चूर्ण मिलाया जाता है।

लोम रेत (Loam Sand)

यह एक प्रकार का गारा (लेई) है जो मिट्टी और रेत को एक साथ पीसकर तथा पानी मिलाकर तैयार किया जाता है। इससे आसानी से साँचा बनता है। तैयार साँचे को भट्ठी में निश्चित समय तक गर्म किया जाता है जिससे साँचे की रेत कठोर और दृढ़ हो जाती है। आर्द्र या शुष्क रेत के साँचों में तार धँसाकर कई छेद करके उन्हें छिद्रमय बनाया जाता है पर लोम रेत में छेद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि रेत को तैयार करते समय उसमें दहनशील पदार्थ (गोबर, लीद, बुरादा आदि) मिला दिये जाते हैं। वे साँचे को गर्म करने में जल जाते हैं जिससे पूरा साँचा छिद्रमय हो जाता है।

ढलाई हो चुकने के बाद साँचे की जली हुई मिट्टी चाल ली जाती है। फिर पानी मिलाकर उसको आर्द्र कर लिया जाता है। इस प्रकार की रेत को 'फर्श की रेत' (Floor sand) कहा जाता है। इसका उपयोग साँचे के बक्सों की फालतू जगह भरने में किया जाता है। साँचे के आसपास की रेत अच्छी मजबूत और ताजी होती है। इस रेत को फेसिंग रेत (Facing sand) कहा जाता है।

रेत की बनावट ढलाई की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित की जाती है। विविध प्रकार के साँचों अथवा एक ही साँचे के विभिन्न भागों में अलग-अलग प्रकार की रेत लगाई जाती है। जिन भागों में अधिक दबाव पड़ने की संभावना हो, वहाँ की रेत कठोर, मजबूत तथा छिद्रमय होनी चाहिये।

लौहिक और अलौहिक ढलाई की रेतों में कुछ भिन्नता होती है। लोहे की ढलाई के आकार विस्तार में बहुत अन्तर रहता है पर अलौहिक (पीतल,

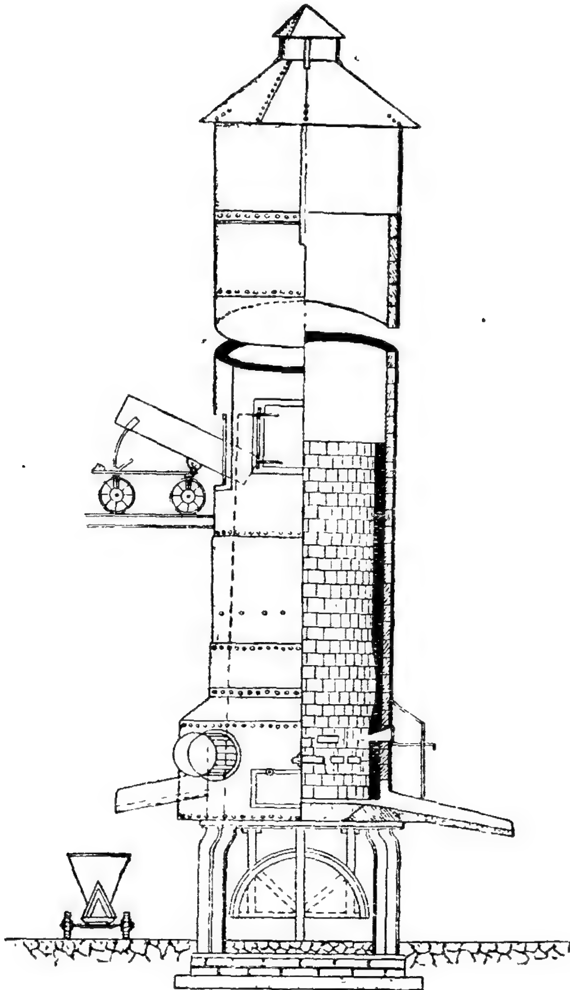
ताँबा, अलुमीनियम इत्यादि) ढलाइयों में यह अन्तर अधिक नहीं होता। अलौहिक ढलाइयों में तापमान पर्याप्त कम रहता है, इसलिए साँचे की रेत उतनी अधिक खराब नहीं होती जितनी लोहे की ढलाई में। अतः पुरानी रेत में नई रेत कम अनुपात में मिलाई जाती है। पानी की मात्रा भी इसमें कम रखी जाती है क्योंकि अधिक पानी से ढले पदार्थ के किंचित् चटख जाने का डर रहता है।

अलौहिक ढलाई में अधिक सावधानी की आवश्यकता पड़ती है पर लौहिक ढलाई में अधिक चतुरता और अनुभव अपेक्षित है।

क्यूपोला (Cupola)

कान्ती लोहे की ढलाई में जिस प्रकार के भट्ठे का उपयोग होता है उसे 'क्यूपोला' कहा जाता है। यह बेलनाकार तथा पर्याप्त ऊँचा होता है। बहुधा ब्वायलर के दोनों छोरों को खोलकर उसे चार मजबूत पायों पर खड़ा कर दिया जाता है। देखिये चित्र संख्या ३७। ब्वायलर के अंदर की ओर अग्नि प्रतिरोधक ईंटों की लाइनिंग लगाई जाती है। भट्ठा अंदर से गोल कुएँ के समान होता है। ऊपर की ओर एक खिड़की रहती है जिसमें से कच्चा माल फर्नेस में छोड़ा जाता है। नीचे एक छोटा छेद होता है जिसमें से पिघला हुआ लोहा निकलता है। इस छेद के कुछ ऊपर विरुद्ध दिशा में एक दूसरा छेद होता है जिसमें से धातुमैल निकलता है। इस छेद के ऊपर वायु मार्ग (Tuyeres) होते हैं। ये आमने सामने रहते हैं तथा इनकी संख्या क्यूपोला के आकार के अनुसार (दो, चार, छः या आठ) होती है। इन छिद्रों में से वेग के साथ वायु भट्ठे के अंदर भेजी जाती है और वह ऊपर उठकर चिमनी की राह बाहर निकल जाती है। धातु गलाने की गति वायु के नियंत्रण द्वारा घटाई बढ़ाई जा सकती है। बड़े क्यूपोलों में वायुमार्गों (Tuyeres) के चारो ओर एक पोला आच्छादन लगा रहता है। इसको अंग्रेजी में (Wind Box) याने 'वायु बक्स' कहा जाता है। पहिले वायु इस वायु बक्स में आती है और फिर सब वायु मार्गों में से होती हुई क्यूपोला में प्रवेश करती है। क्यूपोला के खुले पेंदे को बन्द करने के लिए दो अर्ध-वृत्ताकार इस्पात के ढक्कन रहते हैं। इस प्रकार क्यूपोला बन्द हो जाता है। अब इस ढक्कन के ऊपर रेत की करीब चार इंच मोटी तह बिछा दी जाती है। इसके ऊपर जलाऊ लकड़ी रखकर आग सुलगाई जाती है। लकड़ी के ऊपर

कोक के बड़े टुकड़े रखे जाते हैं। जब आग ठीक से जल जाती है तब वायु मार्ग (Tuyere level) के कुछ ऊपर तक कोक भर दिया जाता है।



चित्र सं० ३७ क्यूपोला

जब यह जलने लगता है और कोक का धरातल अपेक्षित ऊँचाई पर पहुँच जाता है तब कोक, चूने के पत्थर और पिग लोहे को क्रम से चार्जिङ्ग खिड़की

(जहाँ से माल क्यूपोला में झोंका जाता है) तक भर दिया जाता है। माल चार्ज करने का यह क्रम अन्त तक चालू रहता है।

यदि उचित ढंग से लोहा गलाया जाय तो एक टन लोहे के लिए दो या तीन हंडरवेट कड़ा कोक तथा ५० या ६० पौंड चूने का पत्थर लगता है।

क्यूपोला में लोहा गलाने का उदाहरण :—

क्यूपोला का आंतरिक व्यास	...	४१ इंच
प्रति टन लोहा लगाने में कोक की खपत	...	२ हन्डरवेट
प्रति पौंड कोक के लिए वायु का घनफल	...	११३ घनफुट
प्रति टन धातु ,, ,,	...	२५००० घनफुट
प्रति घंटा खर्च होनेवाले ,,	...	१६०,००० घनफुट
प्रति घंटे धातु गलाने की गति	...	७.५ टन
हार्थ के क्षेत्रफल के प्रतिवर्ग फुट पीछे प्रति मिनट धातु गलाने की गति	...	३०.६ पौंड
धातु का औसत तापमान	...	१३५०° सें०

ढलाई घर के उपयोग में आनेवाली कुछ अन्य भट्ठियाँ

क्यूपोला का उपयोग लोहा गलाने में किया जाता है। अलौहिक धातुओं को (या कभी कभी लोहे को भी) गलाने के लिये दूसरे प्रकार की भट्ठियों का उपयोग किया जाता है। उनमें से मुख्य ये हैं :—

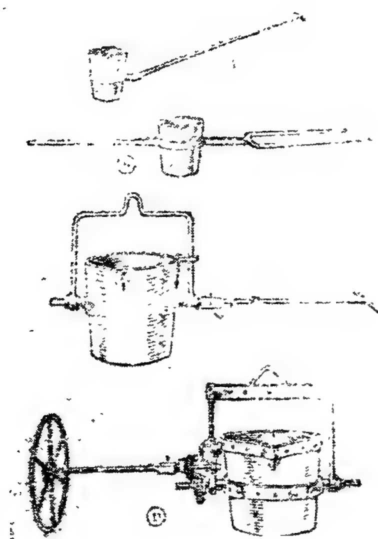
वायु भट्ठी (विण्ड फर्नेस)

अच्छे प्रकार की वायु भट्ठी की बनावट चित्र सं० २४ में दी है। यह करीब दो फुट लम्बी दो फुट चौड़ी और चार या ६ फुट गहरी होती है। तीन या चार फुट की गहराई पर छड़ें लगी रहती हैं। छड़ों के नीचे राख गिरने की जगह तथा एक बगल में हवा आने का मार्ग रहता है। इसी मार्ग से राख बाहर निकाली जाती है। छड़ों के ऊपर कोक जलाया जाता है। इस प्रकार की भट्ठी में २०० पौंड धातु गला सकने वाली घरिया इस्तेमाल की जाती है। वह ग्रेफाइट की बनी रहती है और कोक में धँसा दी जाती है जिससे उसके ऊपर धरातल के कुछ ऊपर तक कोक के टुकड़े आ जाते हैं। फर्नेस के मुँह से करीब एक बित्ता

नीचे चौकोर (९ × ९ इंच) छेद रहता है जिसमें से होकर तप्त वायु और गैसें चिमनी में चली जाती हैं। फर्नेस के मुँह को चौकोर पटिया से ढक दिया जाता है। इस भट्ठी में अन्दर की ओर अग्नि प्रतिरोधक ईंटें लगाई जाती हैं।

पीतल आदि की ढलाई करने वाले छोटे-छोटे कारीगर भूमि के अन्दर भट्ठियाँ बना लेते हैं। वे अग्नि प्रतिरोधक ईंटों का उपयोग भी कम करते हैं। उनकी भट्ठियों में ताप बहुत नष्ट होता है और गलाने का खर्च अपेक्षाकृत बहुत अधिक होता है।

अलौहिक उद्योग में झुकनेवाली (Tilting) फर्नेसों का भी उपयोग होता है। ये जमीन के ऊपर रहती हैं। देखिये चित्र सं० २५। घरिया और फर्नेस के बीच चारों ओर कुछ खाली स्थान रहता है जिनमें कड़ा कोक या ईंधन तेल (Furnace Oil) जलाया जाता है। नीचे की ओर एक छेद रहता है जिसमें से धमन यंत्र द्वारा तीव्र गति से वायु भेजी जाती है। तेल से जलने वाली फर्नेस में वायु के साथ बर्नर में से तेल की फुहार भी आती है।



चित्र सं० ३८ गली हुई धातु ले जाने के डब्बू

वायु तथा ज्वाला घरिया के चारों ओर घूमती हुई ऊपर उठती है जिससे घरिया समान रूप से तप्त होती है। धातु ढालते समय घरिया को बाहर निकालने की

आवश्यकता नहीं पड़ती। पूरी भट्ठी एक हैंडिल के द्वारा झुका दी जाती है जिससे धातु नीचे रखे डब्बू में गिरती है। इस प्रकार की भट्ठियों की कीमत अधिक होती है परन्तु इनमें घरिया अधिक समय तक चलती है तथा तापमान और वातावरण का नियंत्रण अच्छी तरह होता है। ईंधन द्वारा जो ताप उत्पन्न होता है, वायु भट्ठी में उसका २ से ५ प्रतिशत तक तथा घरिया फर्नेस (Tilting crucifle furnace) में १५ प्रतिशत धातु को गलाने में व्यय होता है, शेष नष्ट हो जाता है।

कांती लोहे की बनावट (Constitution of Cast Iron)

कान्ती लोहे के सूक्ष्म घटक (Micro constituents) ये हैं—फेराइट (Ferrite), ग्रेफाइट (Graphite), सीमेंटाइट (Cementite), पर्लाइट (Pearlite) और आस्टेनाइट (Austenite)।

फेराइट

व्यावहारिक दृष्टि से यह शुद्ध लोहा है। इसमें अत्यल्प मात्रा में FeSi तथा Fe_3C घन विलयन (Solid solution) के रूप में मौजूद रहते हैं। यह नरम, तान्तव तथा अत्यधिक चुम्बकीय होता है। इसकी ब्रिनेल कठोरता संख्या (B. H. N.) ८० है।

ग्रेफाइट

यह शुद्ध कार्बन है। यह काले कान्ती लोहे में वर्तिकाओं (Flakes) तथा लघुकणों के रूप में पाया जाता है। यह नरम होता है तथा इसकी उपस्थिति से कांती लोहे की मशीनिंग में सुगमता होती है। कांती लोहे में ग्रेफाइट का अनुपात सिलिका की मात्रा तथा ठंडा करने की गति पर निर्भर रहता है। कांती लोहे के गुण उसमें उपस्थित ग्रेफाइट की मात्रा, आकार (Size) तथा वितरण द्वारा अधिकांशतः नियंत्रित होते हैं। लम्बी और अखंडित ग्रेफाइट की वर्तिकाएँ खोखली जगह (Voids) के तुल्य होती हैं। यदि शुद्ध लोहे में बहुत सी खोखली जगहें हों तो स्वभावतः वह कमजोर हो जायगा। यदि ग्रेफाइट छोटे कणों के रूप में सब ओर बराबर वितरित रहे तो लोहे की दृढ़ता अपेक्षाकृत कम प्रभावित होती है।

सीमेन्टाइट

यह (Fe_3C) लौह कार्बाइड है जिसमें ६.६७ प्रतिशत कार्बन होता है। यह अत्यन्त कठोर और कड़कीला होता है।

पर्लाइट

यह फेराइट और सीमेन्टाइट का मिश्रण होता है। इसमें फेराइट की पर्त के बाद सीमेन्टाइट की पर्त तथा उसके बाद पुनः फेराइट की पर्त इस प्रकार एकान्तर रूप में दोनों मौजूद रहते हैं। साधारण उपयोग में आनेवाले लोहे में पर्लाइट की अधिकता होती है।

आस्टेनाइट

यह शुद्ध लोहे में सीमेन्टाइट का घन विलयन है जिसमें कार्बन की मात्रा साधारणतः ० से १.७ प्रतिशत तक होती है। लोहे में उपस्थित अन्य पदार्थों की मात्रा के अनुसार कार्बन की यह सीमा परिवर्तित होती रहती है। उदाहरणार्थ जिस कान्ती लोहे में २ प्रतिशत सिलिकन रहता है उसके अन्दर संपृक्त आस्टेनाइट में केवल १ ५ प्रतिशत कार्बन रहता है।

कांती लोहे के रासायनिक घटक

कान्ती लोहे के रासायनिक घटक ये हैं।

कार्बन

क्यूपोला में गलाये हुए कांती लोहे में साधारणतः ३ से ४ प्रतिशत कार्बन होता है। गलित अवस्था में कार्बन अधिकांशतः लोहे में घुला रहता है। ठंडा होने पर कार्बन Fe_3C के रूप में अलग हो जाता है। लोहे में सिलिकन की मात्रा अधिक होने से तथा उसे धीरे-धीरे ठंढा करने से कार्बन अधिकाधिक मात्रा में Fe_3C से मुक्त होकर ग्रेफाइट की वर्तिकाओं के रूप में अलग हो जाता है। ग्रेफाइट और सीमेन्टाइट के संतुलन पर कान्ती लोहे के गुण निर्भर रहते हैं।

सिलिकन

वह कांती सीसे में ०.५ से ३.० प्रतिशत तक रहता है। यह Fe_3C का विच्छेदन कर कार्बन को ग्रेफाइट की वर्तिकाओं के रूप में अलग कर देने में सहायक होता है। इस प्रकार सिलिकन के नियंत्रण द्वारा कांती लोहे को कठोर श्वेत कांती लोहे से लेकर काले नरम कांती लोहे तक के विविध रूपों में प्राप्त किया जा सकता है। यह ढलाई में आक्साइड तथा धमन छिद्र नहीं बनने देता और गलत धातु की तरलता बढ़ाता है।

मैंगेनीज़

कांती लोहे में इसकी मात्रा ०.५–१ प्रतिशत तक होती है। यह MnS या (Fe-Mn $)_3$C के रूप में मौजूद रहता है। MnS लोहे से बहुत हल्का होता है अतः उठकर तरल धातु की सतह पर आ जाता है और धातु मैल के साथ अलग हो जाता है। मैंगेनीज कांती लोहे की कठोरता और दृढ़ता बढ़ाता है तथा ढलाई को दोष रहित रखता है।

गंधक

इसकी मात्रा साधारणतः ०.२२ प्रतिशत से कम ही रहती है। यह Fe_3C में से कार्बन को अलग होने से रोकता है अतः लोहे की दृढ़ता बढ़ जाती है पर साथ ही उसकी भंजनशीलता बहुत बढ़ जाती है इसलिये इसकी उपस्थिति अवांछनीय समझी जाती है।

फास्फरस

यह लोहे की तरलता बढ़ाता है। उसके द्रवणांक तथा आकुंचन को कम करता है। सजावट की सुंदर ढलाइयों में फास्फरस १ प्रतिशत तक हो सकता है। साधारणतः फास्फरस की उपस्थिति से लोहे में भंजनशीलता आ जाती है इसलिये लोहे में इसकी मात्रा बहुत कम रखी जाती है।

आकुंचन या सिकुड़न (Shrinkage)

ठंडा होने पर लोहा सिकुड़ता है इसलिए ढलाई में उसके प्रतिरूप (Pattern) ठीक नाप से कुछ बड़े रखे जाते हैं। श्वेत लोहे में प्रतिफुट १।४ इंच तथा काले लोहे में प्रतिफुट १।८ इंच का आकुंचन होता है। यह केवल स्थूल अनुमान है। ढलाई के आकार विस्तार के अनुसार आकुंचन की मात्रा बदलती रहती है।

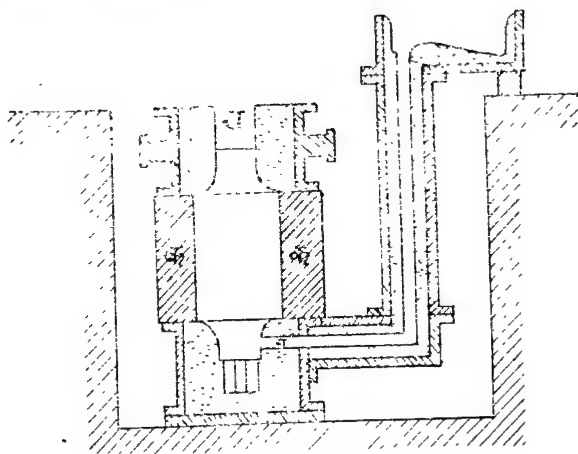
"चिल्ड" ढलाई (Chillled Casting)

"चिल्ड" अंग्रेजी भाषा का शब्द है। धातु विज्ञान में इसका अर्थ होता है 'अति शीघ्रता से ठंडा किया हुआ'। इस प्रकार की ढलाई धातु के बने साँचों में की जाती है। धातु के साँचे बहुत शीघ्रता से पिघले लोहे की गर्मी खींच लेते हैं। द्रव धातु इतनी शीघ्रता से जमती है कि उसमें से ग्रेफाइट की वर्तिकाएँ अलग नहीं हो पातीं अतः ढली हुई वस्तु में सीमेंटाइट की बहुलता होती है और धातु की कठोरता बढ़ जाती है।

रेल के पहिये, लोहे के बेलन इत्यादि में बाहरी धरातल कठोर तथा आंतरिक भाग नरम होना चाहिये। कठोरता के कारण बाह्य धरातल बहुत कम घिसता है तथा अन्दर का भाग नरम होने से मजबूत रहता है।

इस प्रकार की ढलाइयों में बहुत सी कठिनाइयाँ सामने आती हैं। धातु के रासायनिक संगठन तथा साँचे और ढाली जाने योग्य धातु के तापमान का नियंत्रण बारीकी से होना चाहिये। इस कारण इस प्रकार की ढलाई के लिए लोहा "वायु" भट्टी (Air furnace) में गलाया जाता है। "चिल्ड" (अर्थात् ढलाई के "चिल्ड" किए हुए श्वेत भाग) की मोटाई सिलिकन तथा गंधक की मात्रा से नियंत्रित होती है। फास्फरस और मैंगेनीज़ का प्रभाव चिल की मोटाई पर बहुत कम होता है, यद्यपि मैंगेनीज के द्वारा उसकी कठोरता और बढ़ जाती है। ढालते समय धातु का तापमान जितना अधिक होता है चिल की मोटाई उतनी ही अधिक होती है।

चित्र संख्या ३९ में लोहे के बेलन की ढलाई की रीति दिखाई गई है। इसमें बेलन की समानांतर सतह धातु के साँचे में तथा उसके छोर (Necks) रेत के साँचों में ढाले जाते हैं।



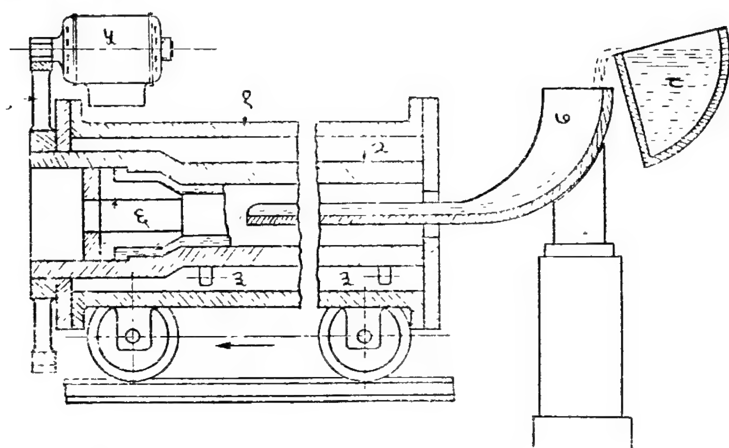
चित्र सं० ३९ चिल्ड बेलन की ढलाई, 'क' लोहे का साँचा जो 'चिल' उत्पन्न करता है ; 'ख' रेत का साँचा

ढलाई के बाद "चिल्ड" पदार्थ को हवा में (या एनीलिंग भट्ठी में) धीरे धीरे ठंडा किया जाता है। इससे धातु के असमान गति से ठंडी होने के कारण जो आंतरिक तनाव (Strain) पैदा हो जाता है वह दूर हो जाता है।

सेन्ट्रीफ्यूगल (केन्द्रापसारी) ढलाई

इस प्रकार की ढलाई का प्रचार कुछ दिनों से हुआ है। इसमें तीव्र गति से घूमते हुए साँचे में तरल धातु छोड़कर ढलाई की जाती है। यह पद्धति बेलनाकार (जैसे पाइप इत्यादि) पदार्थों अथवा ऐसे पदार्थ जो बेलनाकार अन्तर्भाग के दोनों ओर एक से हों (Symmetrical about a cylindrical interior) की ढलाई में काम आ सकती है। घूमते हुए साँचे को इस प्रकार रखा जाता है कि उसका बेलनाकार अक्ष (Axis) खड़ा, आड़ा या तिरछा रहता है। साँचे का आन्तरिक आकार ढलाई के बाहरी आकार के तुल्य होता है। इसमें 'कोर' (Core) की आवश्यकता नहीं होती पर अक्ष की दिशा में खुले छोर को बन्द करने के लिए उपयुक्त ढकनों की आवश्यकता होती है। तरल धातु को लम्बी नली अथवा अन्य उपयुक्त साधन से साँचे के दूरस्थ छोर पर समवेग से गिराया जाता है। या तो साँचा स्थायी रहता है और नली पीछे सरकती है अथवा नली स्थायी रहती है और साँचा सरकता है जिससे धातु की ढलाई अबाध गति से होती है। साँचे के घुमाव के कारण जो केन्द्रपसारी शक्ति उत्पन्न होती है उससे तरल धातु साँचे के चारों ओर फैलकर साँचे से सट जाती है। जब ढलाई कुछ ठंडी होती है तो उसे बाहर निकाल लिया जाता है।

निम्नलिखित चित्र में केन्द्रापसारी पद्धति द्वारा पाइप ढालने की रीति दिखाई गई है।



चित्र संख्या ४०   केन्द्रापसारी ढलाई की मशीन

(१) पाइप, जिसमें शीतल जल संचालित कर साँचे को अत्यधिक गर्म होने से बचाया जाता है; (२) इस्पात का साँचा; (३) जलप्रवाह का मार्ग; (४) साँचे को घुमाने के लिये पहिया; (५) मोटर; (६) साँचा; (७) धातु छोड़ने की नली तथा (८) पिघली हुई धातु रखने का पात्र।

केन्द्रपसारी ढलाई से निम्नलिखित लाभ होते हैं—

१. दृढ़ता में वृद्धि, जिससे ढलाई की मोटाई कुछ कम की जा सकती है।
२. मोटाई की एकरूपता (Uniformity)।
३. ढलाई की उत्तमता या निर्दोषिता।
४. कम खर्च में अधिक उत्पादन।
५. स्थायी साँचा।
६. 'कोर' की न्यूनता या निराकरण।

कुल्टी (जिला बर्दवान) स्थित इंडियन लोहा और इस्पात कम्पनी के कारखाने में इस पद्धति से लोहे की पाइप तैयार की जाती है। एक मशीन में प्रति घंटे २५ पाइप तैयार होती है।

मैलेबल कान्ती लोहा (Malleable Cast Iron)

"मैलेबल" शब्द का अर्थ है घनवर्धनीय। साधारणतः कान्ती लोहा मैलेबल या घनवर्धनीय नहीं होता। यह गुण इस्पात में होता है। अतः "मैलेबल कान्ती लोहा" भ्रामक शब्द है। इस शब्द को संकुचित अर्थ में ग्रहण करना चाहिये तथापि यह श्वेत और काले कान्ती लोहों की अपेक्षा अधिक नर्म और दृढ़तर होता है।

मैलेबल लोहा विशिष्ट रासायनिक संगठन वाले श्वेत कान्ती लोहे को (जिसमें सब कार्बन Fe_3C के रूप में रहता है) एनील[1] करके प्राप्त किया जाता है। एनील करने से Fe_3C में से कार्बन अलग हो जाता है और वह लघुकणों के रूप में (ग्रेफ़ाइट की वर्तिकाओं के रूप में नहीं) लोहे में समान रूप से व्याप्त हो जाता है। ग्रेफ़ाइट के इन लघुकणों को "टेम्पर कार्बन" (Temper Carbon) कहा जाता है। Fe_3C का निराकरण हो जाने से

---

१. एनीलिंग—धातु को विशिष्ट उच्च तापमान पर पर्याप्त समय तक गर्म कर उसे धीरे-धीरे ठंढा करने को एनीलिंग कहा जाता है।



चित्र सं० ४१



चित्र सं० ४२

चित्र सं० ४१ में काले कांती लोहे की सूक्ष्म रचना दिखाई गई है। इसमें काली रेखायें ग्रेफाइट की वर्तिकाएँ हैं। चित्र सं० ४२ में श्वेत कांती लोहे की सूक्ष्म रचना दिखाई गई है।

लोहा नर्म हो जाता है। मूल ढलाई में यदि ग्रेफाइट की वर्तिकाएँ विद्यमान रहें तो वे एनीलिंग से अपरिवर्तित रहती हैं।

मैलेबल लोहे में ०·९ से १·१ प्रतिशत तक सिलिकन होना है। कार्बन २·२ से २·५ प्रतिशत तक होना चाहिये। अधिक होने से ग्रेफाइट की वर्तिकाएँ बनने लगती हैं। गंधक Fe_3C के विच्छेदन को रोकता है इसलिये उसकी मात्रा ०·१ प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये। गंधक को अलग करने के लिये जितने मैंगेनीज की आवश्यकता होती है वह उससे अधिक नहीं होना चाहिये। फास्फरस ०·२ प्रतिशत से अधिक न होना चाहिये।

इस प्रकार मैलेबल ढलाई के लिए वायु फर्नेस में जैसा लोहा गलाया जाता है उसका रासायनिक संगठन यह है।

कुल कार्बन	...	...	...	२·२ से २·५ प्रतिशत
सिलिकन	...	...	...	०·८ से १·१ प्रतिशत
गंधक	...	...	...	०·१ प्रतिशत से कम
फास्फरस	...	...	...	०·१ से ०·२ प्रतिशत
मैंगेनीज़	...	...	...	०·५ प्रतिशत

एनीलिंग पद्धति

मैलेबल बनाने के लिए ढलाई श्वेत कांती लोहे की की जाती है। इसमें सब कार्बन Fe_3C के रूप में रहता है, अतः कठोरता बहुत अधिक होती है। ढली वस्तु को वायु के संपर्क से बचाकर अधिक समय तक एनील किया जाता है जिसके फलस्वरूप कार्बन या तो पूर्णतः ग्रेफाइट के लघुकणों के रूप में फैल जाता है या CO_2 बनकर बिल्कुल अलग हो जाता है। इस प्रकार एनीलिंग दो पद्धतियों से की जाती है :—

१—'ब्लैक हार्ट' (Black Heart) पद्धति—इसमें लोहे के बक्स में (खाली या रेत भरकर इसके बीच में) ढले पदार्थ को रख दिया जाता है। बक्स के जोड़ों को मिट्टी से बन्द कर दिया जाता है जिससे वायु उसके अंदर प्रवेश न कर सके।

२—ह्वाइट हार्ट (White Heart) पद्धति—इसमें ढले पदार्थ को लोहे के बक्स में लौह खनिज भरकर उसके मध्य में गाड़ दिया जाता है। बक्स के जोड़ों को मिट्टी से बंद कर दिया जाता है।

इन बक्सों को फर्नेस में एक के ऊपर एक रखकर उसके दरवाजे को बन्द कर दिया जाया है। फर्नेस के कई स्थानों पर उच्च तापमापक लगा दिये जाते हैं जिससे तापमान का नियंत्रण हो सके। फर्नेस को गर्म करके उसका तापमान ८७०° सें० तक बढ़ाया जाता है। जब विचूर्ण कोयले से फर्नेस तप्त की जाती है तब इस प्रारम्भिक (८७०° सें० तक) तापमान प्राप्त करने में २० से ४० घंटे तक का समय लगता है। उसके बाद और ४० से ५० घंटे तक तापमान ८७०° सें० पर रखा जाता है। तत्पश्चात् फर्नेस को ५° से १०° सें० प्रति घंटे के हिसाब से ठंडा किया जाता है। जब तापमान ७००° सें० के नीचे आ जाता है तब दरवाजा खोल दिया जाता है और कुछ समय बाद बक्सों को निकाल लिया जाता है। ४८ घंटे ठंडा करने तथा २४ घंटे बक्सों को खोलने, ढले पदार्थों को साफ करने इत्यादि में लगते हैं। इस प्रकार इनीलिग करने में कुल मिलाकर ६ या ७ दिन लग जाते हैं।

कान्ती लोहे के ढले पदार्थ जो स्वभावतः कठोर और किंचित् भंजनशील होते हैं, मैलेबल क्रिया के पश्चात् नरम और तान्तव (ductile) हो जाते हैं। इनके तनाव की दृढ़ता २२ से २३ टन प्रति वर्ग इंच होती है।

मैलेबल कान्ती लोहे के ढले पदार्थ का उपयोग मोटरकार और रेल के डब्बों के अवयवों, खेती के औजारों, पाइप फिटिंग तथा औद्योगिक मशीनों के

बनाने में होता है। जिन पदार्थों को उनके आकार की विचित्रता के कारण पीटकर नहीं बनाया जा सकता उन्हें ढालकर मैलेबल कर दिया जाता है।

पिटवां लोहा (Wrought Iron)

लोहे और इस्पात में रासायनिक दृष्टि से प्रधान अन्तर यह है कि लोहे में १.७ प्रतिशत से अधिक तथा इस्पात में १.७ प्रतिशत से कम कार्बन होता है। पिटवां लोहे में कार्बन की मात्रा अत्यल्प होती है जिससे वह बहुत नरम तान्तव तथा घनवर्धनीय होता है। अच्छे पिटवें लोहे का रासायनिक विश्लेषण यह है :—

कार्बन	...	.०४ प्रतिशत
फास्फरस	...	० ९ प्रतिशत
मैंगेनीज	...	०.०५ प्रतिशत
सिलिकन	...	०.०८ प्रतिशत
धातुमैल	...	१.५ प्रतिशत

पिटवां लोहा बनाने की पद्धति यह है कि पिग लोहे को (जिसमें सिलिकन १ प्रतिशत, गन्धक ०.०३ प्रतिशत से कम तथा फास्फरस .५ प्रतिशत के कम होता है), हार्थ फर्नेस में लगाया जाता है। गलने पर आक्सीजन के संसर्ग से उसके सिलिकन तथा मैंगेनीज़ के आक्साइड बन जाते हैं। फिर लौह आक्साइड (Fe_2O_6) का चूर गलित धातु के ऊपर बिखेर दिया जाता है।

लौह आक्साइड का आक्सीजन वायु मंडल के आक्सीजन के साथ पहिले फास्फरस तथा बाद में कार्बन को आक्साइड बनाकर अलग कर देता है। लोहे में कार्बन की मात्रा बहुत कम रह जाती है। लोहे के पिंड बनाकर निकाल लिये जाते हैं। इन पिंडों में कुछ धातु मैल भी आ जाता है। पिंडों को हथौड़े से पीटकर अधिकांश धातुमैल अलग कर लिया जाता है। बाद में बेलन द्वारा दबाकर और धातुमैल अलग किया जाता है। अणुवीक्षण यंत्र द्वारा निरीक्षण करने पर पिटवां लोहे में प्रायः शुद्ध लोहा तथा धातुमैल को वर्तिकाएँ दिखाई पड़ती हैं। चित्र संख्या १३ तथा १४ देखिये।

———

अध्याय ११

इस्पात

इस्पात मूलतः लोहे और कार्बन का धातुमेल है। उसमें गंधक और फास्फरस जैसी अवांछित अशुद्धियाँ रहती हैं जिन्हें आसानी से अलग नहीं किया जा सकता। सिलिकन मैंगेनीज़ जैसे कुछ अन्य पदार्थ वास्तव में अशुद्धि हैं पर उनकी उपस्थिति से धातु में कई आवश्यक गुण आ जाते हैं इसलिये जान बूझकर उन्हें धातु में मिलाया जाता है।

शुद्ध लोहे का व्यावसायिक रूप पिटवाँ लोहा है। वह बहुत मुलायम और तान्तव होता है। उससे औजार तथा और बहुत सी वस्तुएँ नहीं बनाई जा सकतीं। अतः शुद्ध लोहे को कड़ा और दृढ़ बनाना आवश्यक हो जाता है। थोड़ी मात्रा में कार्बन मिला देने से उसकी दृढ़ता और कठोरता बढ़ जाती है।

लौह खनिज को घरिया में लकड़ी के कोयले के साथ गलाकर सीधे (बिना 'पिग' बनाये) इस्पात बनाया जा सकता है पर ऐसे इस्पात का रासायनिक संगठन इतना अनिश्चित होता है कि इस पद्धति से इस्पात नहीं बनाया जाता।

प्राचीन काल में इस्पात बनाने की दो पद्धतियों का विकास हुआ :— **सीमेंटेशन** (Cementation) पद्धति और **घरिया** (Crucible) पद्धति। भारतवर्ष का प्रसिद्ध 'वुत्स' इस्पात और दमिश्क तथा टोलेडो (स्पेन) का तलवार बनाने का इस्पात घरिया तथा सीमेंटेशन पद्धतियों के योग से बनाया जाता था। मध्य युग में संभवतः ये पद्धतियाँ लुप्त हो गई थीं।

सन् १६०० के करीब बेल्जियम में सीमेंटेशन पद्धति का तथा सन् १७४२ में इंग्लैंड में घरिया पद्धति का पुनर्प्रचलन हुआ। हेनरी बेसिमर ने सन् १८५६ में इस्पात बनाने की पद्धतियों में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। 'बेसिमर' पद्धति द्वारा दस पन्द्रह मिनट के अल्प समय में गले पिग लोहे से इस्पात बनाया जा सकता है। इसमें बाहरी ईंधन की आवश्यकता नहीं पड़ती। बेसिमर पद्धति के आविष्कार के कुछ वर्षों के बाद सीमेंस और मार्टिन ने 'ओपन हार्थ'

पद्धति का आविष्कार किया। सन् १६०० में फ्रांस के हेरोल्ट तथा स्वीडन के केलिन ने विद्युत् फर्नेस द्वारा इस्पात बनाने की पद्धति चलाई।

इस प्रकार अब इस्पात बनाने की पाँच पद्धतियाँ हैं :—

१. सीमेंटेशन, २. बरिया, ३. बेसिमर, ४. ओपनहार्थ और ५. विद्युत्।

अंतिम तीन में अम्लीय और क्षारीय विभेद भी होते हैं। कुछ मिली जुली पद्धतियाँ भी हैं, जैसे डुप्लेक्स (Duplex) और 'ट्रिप्लेक्स' (Triplex)।

सीमेंटेशन पद्धति

इस पद्धति का उपयोग अब कम हो गया है। केवल इंग्लैंड में कुछ लोग इसका उपयोग करते हैं।

यदि शुद्ध लोहे की छड़ें लकड़ी के कोयले के संपर्क में बहुत समय तक गर्म की जायँ तो कार्बन क्रमशः धातु में प्रवेश कर जाता है। जिन बर्तनों में लोहे का परिवर्तन इस्पात में किया जाता है उन्हें परिवर्तक पात्र (Conversion Pots) कहा जाता है। वे पत्थर की पटियों से बनाये जाते हैं। लंबाई १२ फुट, चौड़ाई ४ फुट तथा गहराई ४ फुट होती है। जोड़ों पर अग्निप्रतिरोधक मिट्टी लगाई जाती है। दो पात्रों के बीच में अग्नि स्थान होता है। पात्र ईंटों के ऊपर इस प्रकार रखे जाते हैं कि अग्नि की ज्वाला उनके नीचे तथा चारों ओर स्वतंत्रतापूर्वक जा सकती है। दोनों पात्र महराबदार छत से ढँके रहते हैं, जिसमें होकर तप्त गैसें जाती हैं। पात्रों के एक ओर पर छोटा छेद रहता है। इसमें से निरीक्षण के लिए छड़ें बाहर निकाली जाती हैं।

प्रत्येक पात्र के पेंदे में लकड़ी के कोयले के पाव इंच के टुकड़ों की करीब आध इंच मोटी तह बिछा दी जाती है। उसके ऊपर पिटवें लोहे की छड़ों की एक पर्त दी जाती है। ये छड़ें करीब ३ इंच चौड़ी और डेढ़ इंच मोटी होती हैं। दो छड़ों के बीच में कुछ जगह छूटी रहती है जिससे प्रत्येक छड़ के चारों ओर लकड़ी के कोयले की पर्त मौजूद रहती है। छड़ें और लकड़ी के कोयले की पर्तें एक के बाद एक बिछाई जाती हैं। प्रत्येक पात्र में करीब तीस टन पिटवाँ लोहा समाता है। इस प्रकार प्रत्येक फर्नेस में ६० टन इस्पात तैयार होता है। पात्रों के जोड़ों को अच्छी तरह बंद कर दिया जाता है जिससे उनमें

वायु प्रवेश न कर सके अन्यथा कार्बन जलकर लोहे का आक्साइड बन सकता है।

आग जलाकर करीब दो दिनों में १०००° सें० तापमान प्राप्त किया जाता है। इस तापमान को ७ से ६ दिनों तक कायम रखा जाता है। इस्पात में कार्बन की मात्रा अधिक रखने के लिए उसे अधिक समय तक गर्म रखा जाता है। जब कार्बन पर्याप्त गहराई तक पहुँच जाता है (यह बात निरीक्षण के लिए नियत छड़ों को देखने से मालूम हो जाती है) तब पात्रों को धीरे-धीरे ठंडा होने दिया जाता है। ठंडा होने में करीब एक सप्ताह का समय लगता है। उसके बाद पात्रों को खोल कर इस्पात की छड़ें बाहर निकाली जाती हैं।

इस पूरी क्रिया में करीब तीन सप्ताह लगते हैं। प्रत्येक फर्नेस में प्रति वर्ष ६० टन के १५ चार्ज (कुल ९०० टन) इस्पात तैयार किया जा सकता है। प्रत्येक पात्र २०,३० बार काम देता है।

आरंभ में छड़ें चिकनी होती हैं पर इस्पात बनते समय उनकी सतह खुरदरी (या "छालेयुक्त" Blistered) हो जाती है। इसलिये इस इस्पात को "छालेयुक्त इस्पात" या "ब्लिस्टर इस्पात" कहा जाता है।

'शियर' इस्पात (Shear Steel)

पूर्वोक्त छड़ों को काटकर १० इंच लंबे टुकड़े बना लिए जाते हैं। इन्हें लाल गर्म करके पीटा जाता है तथा चौड़ाई डेढ़ इंच और मोटाई आध इंच कर दी जाती है। फिर कई टुकड़ों को एक साथ बाँधकर बहुत बड़े हथौड़े से पीटा जाता है। सब टुकड़े "वेल्ड" होकर एक हो जाते हैं। इस प्रकार का इस्पात "सिंगल शीयर" (Single Shear) इस्पात कहलाता है। उसको अधिक एकरूप बनाने के लिए काटकर दो समान भागों में कर दिया जाता है तथा दोनों भाग एक साथ बाँधकर पुनः पूर्ववत् पीटे जाते हैं। इस प्रकार "डबल शीयर" इस्पात प्राप्त होता है।

घरिया पद्धति (Crucible Process)

डबल शीयर या ट्रिपल शीयर इस्पात भी न्यूनाधिक रूप में असम (Heterogeneous) रहता है। सीमेन्ट इस्पात को घरिया में गलाने पर

गलित धातु का रासायनिक संगठन एक-सा हो जाता है। सीमेन्ट इस्पात में धातुमैल के जो कण मौजूद रहते हैं वे भी अलग हो जाते हैं।

मिट्टी की बनी घरिया में करीब ५० पौंड धातु गलाई जाती है। घरिया को उपयोग में लाने के पूर्व तपाकर लाल कर लिया जाता है। एक घरिया तीन बार काम देती है। भट्ठी में कोक द्वारा घरिया को गर्म किया जाता है। धातु गलाने में दो-तीन घंटे का समय लगता है। जब तरल धातु का उबलना बन्द हो जाता है और सतह बिलकुल शान्त दिखाई देती है तब कान्ती लोहे के साँचे में उसे ढाला जाता है। घरिया की दीवाल में मौजूद सिलिकन धातु में प्रवेश कर जाता है अतः धातु गैसों को अपने में घोल लेती है, जिससे ढलाई करने पर धमन छिद्र नहीं बन पाते। अन्य प्रकार के इस्पातों की अपेक्षा घरिया इस्पात में सिलिकन अधिक (१·५ प्र० श० तक) होता है। घरिया पद्धति में धातु का परिष्कार नहीं होता। मूल चार्ज में जो अशुद्धियाँ होती हैं वे न्यूनाधिक रूप में मौजूद रहती हैं। इसलिये मूल चार्ज शुद्ध होना चाहिये। पहिले घरिया इस्पात ब्लिस्टर इस्पात से बनता था बाद में लकडी के कोयले के साथ पिटवाँ लोहे को गलाकर बनाया जाने लगा। घरिया पद्धति द्वारा उच्चतम कोटि का औजार का इस्पात (Tool Steel) बनाया जा सकता है।

बेसिमर पद्धति

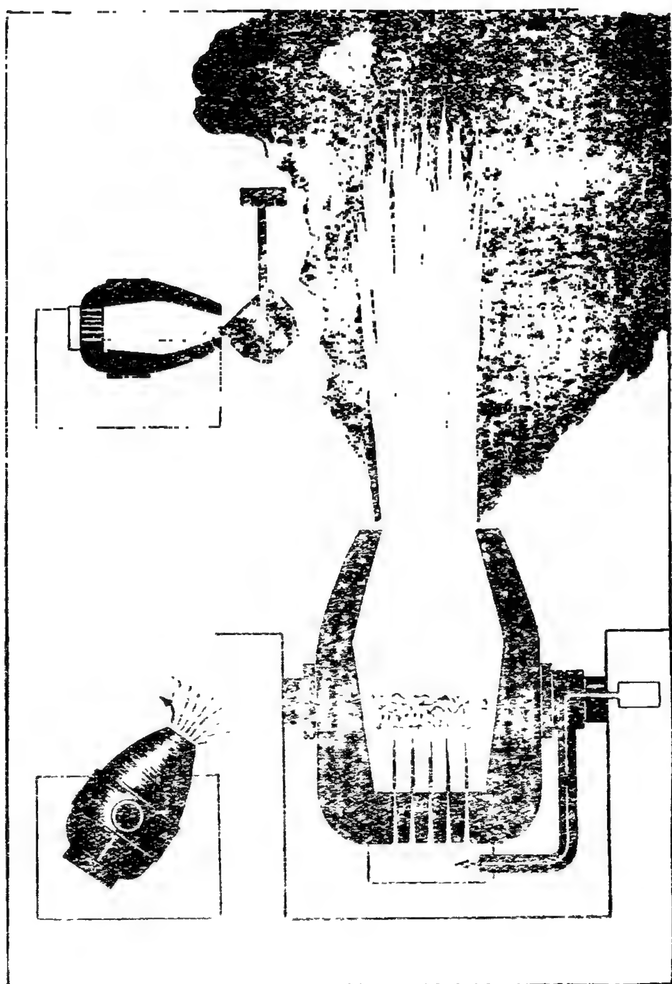
बेसिमर पद्धति द्वारा इस्पात का उत्पादन उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे महत्त्वपूर्ण धातु वैज्ञानिक आविष्कार है। इस पद्धति से इस्पात बनाने का व्यय बहुत कम हो गया तथा उस शताब्दी के उत्तरार्ध में होने वाली महान औद्योगिक प्रगति संभव हो सकी। सन् १८५० ई० में हेनरी बेसिमर नामक धातु-शास्त्री ने अपनी निराली फर्नेस में, गले पिग लोहे में से वायु भेजकर उसे शुद्ध करने की पद्धति चलाई। वायु के आक्सीजन तथा धातु में मौजूद अशुद्धियों के योग से रासायनिक ताप उत्पन्न होता है। इस ताप के कारण धातु ठंडी नहीं होने पाती।

फर्नेस[1] का आकार नाशपाती के समान होता है। चित्र सं० ४३ देखिये। इसका बाहरी ढाँचा इस्पात का बना रहता है तथा अन्दर की ओर रिफ्रेक्ट्री

---

१. बेसिमर फर्नेस का प्रचलित नाम बेसिमर कन्वर्टर (Bessemer Converter) है।

लाइनिंग रहती है। पेंदे में बहुत से छेद रहते हैं जिनमें से ठंडी वायु वेग से



चित्र सं० ४३ वेसिमर कन्वर्टर

आती है और धातु को भेदकर ऊपर निकल जाती है। वायु के संसर्ग में आकर अशुद्धियों के आक्साइड बन जाते हैं।

ब्लास्ट फर्नेस का गलित पिग लोहा ६० से ८० टन धातु भर सकने योग्य डब्बुओं में भरकर एक बहुत बड़े पात्र 'मिक्सर' (Mixer) में छोड़ा जाता है। मिक्सर इस्पात का बना रहता है। अन्दर की ओर अग्निप्रतिरोधक ईंटों की लाइनिंग रहती है। ऊपरी भाग की ओर मुँह खुला रहता है। इसमें १००० से १५०० टन तक पिघला लोहा समा सकता है। दाहकों द्वारा धातु को द्रव रूप में रखा जाता है। मिक्सर में धातु का रासायनिक संगठन एक सा हो जाता है।



चित्र सं० ४४ मिक्सर

मिक्सर में से करीब १५ टन धातु निकाल कर बेसिमर कन्वर्टर में छोड़ जाती है। धातु छोड़ने के पूर्व कन्वर्टर को झुकाकर जमीन के समानान्तर कर दिया जाता है जिससे धातु पेंदे के छिद्रों (जिन्हें 'ट्यूयर' छिद्र कहा जाता है) से होकर बाहर न बह सके। उसके बाद ३० पौंड प्रति वर्ग इंच के दबाव पर वायु ट्यूयर छिद्रों में से भेजी जाती है और कन्वर्टर को सीधा खड़ा कर दिया जाता है। प्रति मिनट ३०,००० घन फुट वायु खर्च होती है। वायु की पतली धाराएँ करीब १० मिनट तक धातु में से होकर बहती हैं और कुछ लोहे को FeO बना देती हैं। FeO द्रव धातु में घुलकर उसके अन्दर मौजूद सिलिकन, मैंगेनीज़ तथा कार्बन को आक्रांत करता है। फलतः उनके आक्साइड बन जाते हैं। ये आक्साइड धातुमैल में चले जाते हैं। कार्बन CO_2 और CO_2 बनकर उड़ जाता है। आक्सीकरण क्रिया में अत्यधिक रासायनिक ताप उत्पन्न होता है जिससे गलित धातु का तापमान कम होने के बजाय बढ़ जाता है।

उसके बाद कन्वर्टर को झुकाकर पुनः जमीन के समानान्तर कर लिया जाता है तथा वायु बंद कर दी जाती है। चूँकि आक्सीकरण द्वारा कार्बन CO और CO_2 बनकर उड़ जाता है अतः गलित धातु में कार्बन की मात्रा ठीक रखने के लिये आवश्यक परिमाण में कार्बन मिलाया जाता है। अंत में इस्पात को डब्बुओं में भरकर अलग कर लिया जाता है।

धमन के प्रारंभ में चिनगारियों की बौछार छूटती है। उसके बाद भूरे रंग के धुएँ के बादल उठते हैं और फिर छोटी लाल ज्वाला दिखाई देती है। इसमें करीब चार मिनट का समय लगता है। इस अवधि में सिलिकन और मैंगेनीज़ आक्सीकृत हो जाते हैं। यद्यपि इतने समय में कार्बन भी कुछ कम हो जाता है पर सिलिकन और मैंगेनीज़ के अलग हो जाने के बाद ही अधिकांश कार्बन आक्सीकृत होता है। कन्वर्टर में होने वाली रासायनिक क्रियाओं के कारण ताप का उद्भव होता है तथा तापमान १३००° सें० (आरंभ में) से बढ़कर १६००° सें० हो जाता है। तत्पश्चात् कार्बन जलकर CO बनता है अतः गर्जना के साथ ऊँची शुभ्र ज्वाला उठती है। धमन क्रिया का अंत होने पर ज्वाला शांत हो जाती है। कन्वर्टर को झुका दिया जाता है तथा आवश्यक मात्रा में पुनर्कार्बनीकारक या रीकार्बुराइजर* मिलाया जाता है। अंत में शोधित द्रव धातु कन्वर्टर में से निकाल ली जाती है।

कन्वर्टर

कन्वर्टर का आकार नाशपाती के समान होता है। उसके तीन भाग होते हैं—(१) अलग हो सकनेवाला पेंदा ; (२) मध्यवर्ती बेलनाकार भाग, जिसमें ऐसा प्रबंध रहता है कि पूरे कन्वर्टर को झुकाया जा सके तथा (३) ऊपर का शंक्वाकार भाग जो बहुधा विकेंद्रित (eccentric) होता है। कन्वर्टर का ढाँचा इस्पात का होता है। उसके अंदर उच्चकोटि की रिफ्रेक्टरी लाइनिंग रहती है। पूरा कन्वर्टर दो ट्रुनियन (trunions) पर टिका रहता है। एक ट्रुनियन पोला होता है जिसमें से धमन के लिए वायु कन्वर्टर के निम्न भाग में स्थित वायु कक्ष में भेजी जाती है।

---

* रीकार्बुराइजर (Recarburizer)—वह पदार्थ जिसमें कार्बन की मात्रा पर्याप्त हो तथा गलित इस्पात में मिलाने पर कार्बन इस्पात में प्रवेश कर जाए।

अम्लीय कन्वर्टर की लाइनिंग

इस्पात के समूचे ढाँचे में उच्चकोटि के अम्लीय रिफ्रेक्टरी पदार्थ की लाइनिंग लगाई जाती है। ये पदार्थ गैनिस्टर के ब्लाक, सिलिकामय क्वार्ट्ज़ाइट शिला या अभ्रक शिष्ट (mica schist) जिसमें बारीक मिट्टी और कोक चूर्ण मिश्रित रहते हैं, के होते हैं। लाइनिंग की मोटाई १२ इंच से १५ इंच तक होती है। प्रत्येक धमन के बाद लाइनिंग का निरीक्षण किया जाता है। एक लाइनिंग बहुधा कई महीने तक चलती है।

पेन्दा

कन्वर्टर का पेन्दा आवश्यकतानुसार अलग किया जा सकता है। पेन्दे में करीब ३० इंच लम्बी ईंटें रहती हैं तथा ३।८ इंच से ५।८ इंच तक के लगभग २० टूयर छेद रहते हैं। ईंटों के चारों ओर सिलिकामय रिफ्रेक्टरी पदार्थ रहता है। पेन्दा करीब २० बार काम आता है। इतने समय में उसकी लाइनिंग काफी नष्ट (संक्षारित) हो चुकती है। बहुत से पेंदे पहिले से तैयार रखे जाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर १५ या २० मिनट में पुराना पेंदा हटाकर नया पेन्दा लगा दिया जाता है।

कन्वर्टर का आकार

यद्यपि अम्लीय कन्वर्टर १६ से १८ फुट ऊँचा तथा बाहर से १२ फुट व्यास का होता है तथापि उसमें एक बार में केवल १५ टन धातु रखी जाती है। जिस कन्वर्टर का ऊपरी भाग विकेन्द्रित होता है वह सहकेन्द्रित (Concentric) ऊर्ध्वभाग वाले से अच्छा होता है क्योंकि उसमें धमन के समय कम धातु और धातुमैल उड़कर बाहर गिरते हैं। साथ ही उड़कर बाहर जानेवाले पदार्थ चारों ओर न गिरकर केवल एक ही ओर गिरते हैं।

वायु का झोंका

ठंडी वायु का झोंका, जिसके द्वारा पिघले द्रव में की अशुद्धियाँ आक्सीकृत होकर अलग हो जाती हैं, मजबूत धमन यंत्रों (Blowing Engines) द्वारा भेजा जाता है। वायु का दबाव इतना रखा जाता है जिससे पिघली हुई धातु

छेदों की राह बहकर नीचे वायु कक्ष में न जा सके। वायु का दबाव लगभग २५ पौंड प्रतिवर्ग इंच रखा जाता है और कार्बन अलग करने के समय उसे घटा-कर १२ पौंड प्रतिवर्ग इंच कर दिया जाता है। कन्वर्टर में प्रति मिनट ३०,००० घन फुट वायु भेजी जाती है।

उपयुक्त पिग का रासायनिक संगठन

अम्लीय बेसिमर पद्धति में जो धातुमैल बनता है वह अम्लीय होता है अतः मूल चार्ज में मौजूद गन्धक और फास्फरस अलग नहीं होते इसलिए पिग लोहे में ये तत्व बहुत कम मात्रा में होने चाहिये। धातु बनाने तथा आवश्यक रासायनिक ताप उत्पन्न करने के लिए सिलिकन कम से कम १ प्रतिशत होना चाहिये इस पद्धति में सिलिकन के आक्सीकरण से पर्याप्त ताप मिलता है। १·२ प्रतिशत सिलिकन द्रव धातु का तापमान २०० सें० बढ़ा देता है। मैंगेनीज़ का प्रभाव सिलिकन के प्रभाव का चतुर्थांश होता है। कार्बन जलकर CO बनता है इसलिए उसमें अपेक्षाकृत कम ताप प्राप्त होता है। उपर्युक्त बातों का विचार करते हुए अम्लीय पद्धति से इस्पात बनाने के लिए काम आने वाले पिग लोहे का रासायनिक संगठन यह होना चाहिये :—

सिलिकन	१·५ प्रतिशत।	फास्फरस अधिकतम	·०१ प्रतिशत
मैंगेनीज़	०·५ प्रतिशत।	गन्धक ,,	०·०७ प्रतिशत

यदि सिलिकन की मात्रा कम होगी तो द्रव धातु का तापमान कम रहेगा।

कन्वर्टर की क्रियाएँ

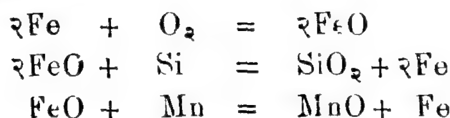
कन्वर्टर को झुकाकर क्षितिज के समानान्तर कर दिया जाता है तथा उसमें १३००° सें० पर १५ टन द्रव पिग लोहा (जिसकी बनावट ऊपर दी गई है) मिक्सर से लाकर छोड़ दिया जाता है। वायु का झोंका आरम्भ करने के बाद कन्वर्टर खड़ा कर दिया जाता है। आरम्भ में वायु का आक्सीजन धातु के सिलिकन से मिलकर छोटी लाल ज्वाला उत्पन्न करता है तथा भूरे रंग के धुएँ के घने बादल उठते हैं। फिर CO के जलने के कारण ज्वाला क्रमशः पीली होकर करीब ३० फीट ऊँची हो जाती है। जब द्रव के कार्बन की मात्रा घटकर ०·०४ प्रतिशत हो जाती है तब ज्वाला शांत हो जाती है। अनुभवी कर्मचारी ज्वाला का रंग तथा विस्तार देखकर कार्बन की मात्रा का ठीक

अनुमान कर लेता है। निम्नलिखित सूची में अम्लीय बेसिमर धमन का सारांश दिया है। धमन में कुल १२ मिनट का समय लगता है।

अवस्था	रासायनिक क्रियाएँ	ज्वाला के रूप
धातुमैल अवस्था समय ४ मिनट। Si और Mn के आक्सीकरण के कारण तापमान में वृद्धि।	कुछ लोहा आक्सीकृत होकर FeO बन जाता है, अधिकांश Si और Mn आक्सीकृत होकर SiO_2 और MnO बन जाते हैं। ये सब आक्साइड मिलकर धातुमैल बनाते हैं।	चूँकि Fe, Mn और Si के दहन से प्राप्त पदार्थ ठोस होते हैं अतः ज्वाला बहुत छोटी और कम चमक वाली होती है।
कथन अवस्था ६ मिनट	कार्बन जलकर CO तथा CO_2 बनता है अतः धातु में अत्यधिक उबाल आता है।	CO के दहन के कारण ज्वाला बहुत लम्बी और प्रकाशमान होती है।
समाप्ति अवस्था २ मिनट	कार्बन के आक्सीकरण का अन्त।	ज्वाला शान्त हो जाती है।

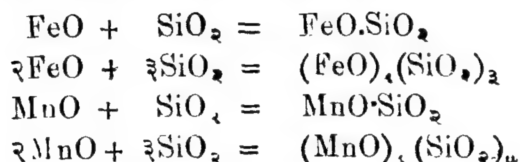
इस पद्धति की रासायनिक क्रियाएँ :

धातुमैल अवस्था :—



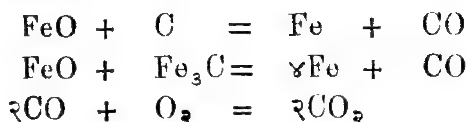
$$२Fe + O_2 = २FeO$$
$$२FeO + Si = SiO_2 + २Fe$$
$$FeO + Mn = MnO + Fe$$

इसके बाद उपर्युक्त आक्साइडों के योग से धातुमैल बनता है।



$$FeO + SiO_2 = FeO.SiO_2$$
$$२FeO + ३SiO_2 = (FeO)_2(SiO_2)_3$$
$$MnO + SiO_2 = MnO\cdot SiO_2$$
$$२MnO + ३SiO_2 = (MnO)_2(SiO_2)_3$$

कथन अवस्था :—



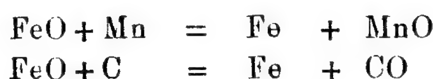
$$FeO + C = Fe + CO$$
$$FeO + Fe_3C = ४Fe + CO$$
$$२CO + O_2 = २CO_2$$

जब पिग लोहे में सिलिकन कम रहता है तब धातु ठण्डी हो जाती है। ऐसी स्थिति में अधिक पिग लोहा या Fe Si मिलाया जा सकता है या बहुधा कन्वर्टर को झुका दिया जाता है जिससे कुछ टूयर छेद धातु के ऊपर आ जाते हैं और धमन चालू रखा जाता है। धातु में से पार होने वाली वायु के द्वारा C केवल CO में परिवर्तित होता है। यह CO कन्वर्टर के अन्दर पूर्वोक्त खाली टूयरों में से आनेवाली वायु के साथ जलता है। वायु के स्पर्श से धातु सतह पर अधिक FeO बनता है। इस प्रकार पर्याप्त रासायनिक ताप प्राप्त होता है और धातु का तापमान बढ़ जाता है। जब सिलिकन अधिक रहता है तथा धातु का तापमान बहुत अधिक हो जाता है तब थोड़ा इस्पात का स्क्रैप मिला दिया जाता है।

पुनर्कार्बनीकारक और अनाक्सीकारक

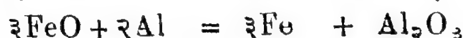
धमन के पश्चात् कन्वर्टर की धातु (इस्पात) में कार्बन को मात्रा कम रहती है। अत: उसमें आवश्यकतानुसार अलग से कार्बन मिलाया जाता है। धातु में घुली हुई गैसों की मात्रा भी पर्याप्त होती है इसलिए ढलाई के समय धमन छिद्रों से छुटकारा पाने के लिए धातु में अनाक्सीकर (Deoxidising) पदार्थ छोड़े जाते हैं। पुनर्कार्बनीकारक में कार्बन-प्रधान पदार्थ (कोक आदि) रहते हैं। अनाक्सीकर पदार्थ में सिलिकन, मैंगेनीज़ या अलुमीनियम-प्रधान पदार्थ रहते हैं। पुनर्कार्बनीकारक तथा अनाक्सीकारक के उदाहरण :— (१) फैरोमैंगेनीज़ (Ferro-manganese) ८० प्रतिशत मैंगेनीज़, ७ प्रतिशत कार्बन और शेष लोहा ; (२) स्पिजिलेशन(Spiegeleison) २० प्रतिशत मैंगेनीज़, ६ प्रतिशत कार्बन, शेष लोहा (३) फेरोसिलिकन (Ferro-silicon) ६६ प्रतिशत सिलिकन शेष लोहा ; (४) अलुमीनियम।

पुनर्कार्बनीकारकों की क्रियाएँ :—



$$FeO + Mn = Fe + MnO$$
$$FeO + C = Fe + CO$$


$$२FeO + Si = २Fe + SiO_2$$


$$३FeO + २Al = ३Fe + Al_2O_3$$

अम्लीय पद्धति में धातु को डब्बुओं में उड़लने के पूर्व कन्वर्टर के अंदर पुनर्कार्बनीकारक छोड़ा जाता है।

इंगटों की ढलाई

कन्वर्टर में इस्पात तैयार हो जाने पर उसे बाल्टी के आकार के डब्बुओं में उड़ेला जाता है। ये डब्बू इस्पात के बने होते हैं तथा अन्दर की ओर रिफ्रेक्ट्री पदार्थ की लाइनिंग रहती है। पेंदे में एक छेद होता है जिसे एक छड़ की सहायता से लीवर द्वारा खोला और बन्द किया जाता है। डब्बू में से धातु को कान्ती लोहे के बने साँचे में ढाला जाता है। कुछ ठंडा होने पर इंगटों को निकालकर पुनर्दाहक फर्नेस में लाल करके विभिन्न आकारों में बेलाई की जाती है।

क्षारीय बेसिमर पद्धति

इस पद्धति का दूसरा नाम 'टामस गिल्क्रिस्ट पद्धति' है।

इतिहास

बेसिमर को अपनी पद्धति पूर्ण करने के पहिले बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। संयोगवश उसने आरम्भ में स्वीडन का लोहा इस्तेमाल किया था। उस लोहे में फास्फरस कम और मैंगेनीज अधिक था। उस लोहे के साथ पद्धति सफल रही। तथापि इंग्लैंड के पिग लोहे के साथ जिसमें अधिक फास्फरस और कम मैंगेनीज़ होता है, यह पद्धति पूर्णतः असफल रही क्योंकि अम्लीय धातुमैल गन्धक और फास्फरस को अलग नहीं कर सकता अतः ये पदार्थ इस्पात में प्रवेश कर उसे भंजनशील बना देते हैं। इस पर बेसिमर ने यह बताया कि इस्पात में मैंगेनीज़ मिलाने से गन्धक अलग हो सकता है। सन् १८११ में टामस और गिल्क्रिस्ट नामक धातु-विशारदों ने सुझाया कि फास्फरस बहुल पिग लोहे का धमन चूने के साथ किया जाय तथा कन्वर्टर की लाइनिंग क्षारीय रखी जाय। इसके द्वारा क्षारीय धातुमैल बनता है तथा गन्धक और फास्फरस पर्याप्त मात्रा में कम हो जाते हैं।

अब यह पद्धति जर्मनों द्वारा पूर्ण कर ली गई है। वे लोग उत्तरी फ्रांस के अल्सास और लोरेन का खनिज इस्तेमाल करते हैं। इस पद्धति का उपयोग अमेरिका में नहीं होता। कुछ हद तक इंग्लैंड में होता है।

उपयुक्त पिग लोहा

इस पद्धति के अनुसार पिग लोहे में सिलिकन की मात्रा कम होनी चाहिये। जितना ही अधिक सिलिकन होगा उतना ही अधिक चूना क्षारीय धातुमैल बनाने में लगेगा। फास्फरस के आक्सीकरण द्वारा अधिकांश ताप प्राप्त होता है। मैंगेनीज़ की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होनी चाहिये जिससे गन्धक अलग किया जा सके। उपयुक्त पिग लोहे की बनावट निम्नलिखित होनी चाहिये :—

सिलिकन	...	अधिकतम १ प्रतिशत
फास्फरस	...	अधिकतक २ प्रतिशत
मैंगेनीज़	...	लगभग १ प्रतिशत
गन्धक	...	अधिकतम १·५ प्रतिशत

यदि फास्फरस कम रहेगा तो धातु का तापमान कम हो जायगा।

कन्वर्टर

इस पद्धति का कन्वर्टर कुछ बड़ा होता है क्योंकि इसमें धातु के १५ प्रतिशत से २० प्रतिशत तक फ़्लक्स (चूना) छोड़ा जाता है और धातुमैल की मात्रा अधिक होती है।

लाइनिंग

लाइनिंग डोलोमाइट की रहती है। इस डोलोमाइट को अच्छी तरह जलाकर चूर्ण कर लिया जाता है तथा १० से १५ प्रतिशत तक गरम जलहीन कोलतार (Hot anhydrous tar) में सान दिया जाता है। फिर उसे ढाल दिया जाता है। पेंदे में टूयर छिद्र बनाने के लिए लकड़ी की गुल्लियाँ लगा दी जाती हैं। शेष स्थान रिफ्रेक्ट्री पदार्थ से भरकर गुल्लियाँ हटा ली जाती हैं। क्षारीय लाइनिंग करीब १५० बार काम देती है तथा पेंदा १५ या २० बार।

चार्ज

गले पिग लोहे के साथ फ़्लक्स (चूना) भी चार्ज किया जाता है। इस चूने का एक भाग प्रारम्भ में तथा शेष भाग धमन के उत्तरार्ध में छोड़ा जाता है। आरम्भ में जो चूना छोड़ा जाता है वह सिलिकन (Si) से सिलिका (SiO_2) के बनते ही उसे फ्लक्स कर लेता है अन्यथा क्षारीय लाइनिंग खराब होने का डर रहता है।

धमन

क्षारीय धमन में अधिक समय लगता है क्योंकि इसमें सिलिकन मैंगेनीज़ तथा कार्बन के अतिरिक्त गन्धक और फास्फ़रस को भी अलग करना पड़ता है। धमन को दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम को 'पूर्व धमन' या 'फोर ब्लो' (Fore-blow) तथा दूसरे को 'उत्तर धमन' या 'आफ्टर ब्लो' (After-blow) कहते हैं। पूर्व धमन करीब १० मिनट तक चलता है और अम्लीय धमन से मिलता-जुलता है जिसमें मैंगेनीज़, सिलिकन और कार्बन अलग होते हैं। तत्पश्चात् ज्वाला शान्त हो जाती है। उत्तर धमन ५ या ६ मिनट तक चलता है जिसमें फास्फ़रस एवं अधिकांश गन्धक अलग होकर धातुमैल में मिल जाते हैं। इसमें कोई ज्वाला नहीं उठती जिसके द्वारा फास्फ़रस की समाप्ति का ठीक अनुमान हो सके। धमन-कर्ता को केवल अपने अनुभव का सहारा रहता है। सिलिकन की मात्रा कम होने से वह प्रथम दो मिनट में अलग हो जाता है तथा प्रारम्भिक रासायनिक ताप प्रदान करता है। मैंगेनीज़ इतनी सरलता से अलग नहीं होता क्योंकि स्वतः क्षारीय होने के कारण उस पर क्षारीय धातुमैल का आकर्षण कम रहता है। सिलिकन के आक्सीकरण के बाद ही कार्बन अलग होता है। जब तक कार्बन अलग नहीं हो जाता तब तक फास्फ़रस ठीक से अलग नहीं हो पाता। फास्फ़रस आक्सीकृत होकर चूने के साथ $(CaO)_3 P_2 O_5$ बनाता है जो तुरन्त धातुमैल में मिल जाता है। गंधक का अधिकांश भाग CaS और MnS बनकर तथा कुछ भाग SO_2 और SO_3 बनकर अलग हो जाता है।

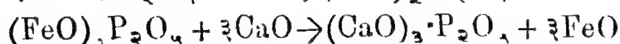
फास्फ़रस निम्नलिखित क्रियाओं द्वारा अलग होता है :--



$$२Fe_3P + ११ (O) \rightarrow ६FeO + P_2O_5$$



$$३FeO + P_2O_5 \rightarrow (FeO)_3 \cdot P_2O_5$$



$$(FeO)_3 P_2O_5 + ३CaO \rightarrow (CaO)_3 \cdot P_2O_5 + ३FeO$$

गन्धक इस प्रकार अलग होता है :—



$$FeS + CaO + C \rightarrow Fe + CO + CaS$$



$$FeS + ३(O) \rightarrow FeO + SO_2$$

ताप का उद्भव तथा धातुमैल का निर्माण

प्रारंभिक ताप के लिए सिलिकन तथा कुछ मैंगेनीज़ पर निर्भर रहना पड़ता है किंतु फास्फरस के आक्सीकरण द्वारा उत्पन्न ताप अन्य किसी प्रकार उत्पन्न ताप से चार पाँच गुना अधिक होता है। क्षारीय पद्धति में उत्पन्न संपूर्ण ताप अम्लीय पद्धति के संपूर्ण ताप का दूना होता है, तथापि द्रव धातु का तापमान बहुत अधिक नहीं होता क्योंकि बहुत सा ताप फ्लक्स को गलाने तथा धमन को देर तक चालू रखने में खर्च हो जाता है।

उत्पन्न धातुमैल तौल में धातु का चतुर्थांश होता है। धमन को इस प्रकार नियंत्रित किया जाता है कि धातुमैल में P_2O_5 का अनुपात १५ प्रतिशत रहे जिससे धातुमैल कृषि खाद की तरह बेचा जा सके। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् मंदी के युग में जर्मनी में इस पद्धति का उपयोग प्रधानतः खाद बनाने के लिए होता था। इस्पात केवल गौण उत्पादन (by-product) समझा जाता था।

तरल धातुमैल तथा मैंगेनीज़ की अधिकता से गन्धक के अलगाव में सहायता मिलती है।

द्रव पदार्थ को उड़ेलना तथा पुनर्कार्बनीकरण

धमन के अन्त में कन्वर्टर में करीब १५ टन कन्वर्टर धातु तथा ३ से ४ टन अत्यधिक क्षारीय धातुमैल बच रहता है। धातुमैल में P_2O_5, CaO, MnO, तथा SiO_2 रहते हैं जिसमें P_2O_5 किसी लघ्वीकारक के सम्पर्क में आते ही लघ्वीकृत हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि क्षारीय धातुमैल की उपस्थिति में कार्बनी कारक नहीं मिलाया जा सकता। पहिले धातुमैल को उसके डब्बू में उड़ेला जाता है। फिर धातु दूसरे डब्बू में निकाली जाती है। यदि धातु उड़ेलने के बाद कुछ धातुमैल बच रहता है तो उसे धातुमैल के डब्बू में छोड़ दिया जाता है।

इस प्रकार द्रव धातु को धातुमैल के सम्पर्क से अलग कर देने पर धातुमैल से फास्फरस वापस आ जाने की संभावना दूर हो जाती है। बाद में

धातु का पुनर्कार्बनीकरण किया जाता है। क्षारीय धातु का अनाक्सीकरण तथा पुनर्कार्बनीकरण अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि धमन काल में धातु अत्यधिक आक्सीकृत हो जाती है। पुनर्कार्बनीकरण की क्रियाएँ वे ही हैं जो अम्लीय पद्धति में होती हैं।

अम्लीय और क्षारीय बेसिमर पद्धतियों की तुलना

अम्लीय बेसिमर पद्धति	क्षारीय बेसिमर पद्धति
महँगे किस्म के खनिज की आवश्यकता।	महँगी। चूने तथा श्रम का खर्च। अधिक समय तक धमन। धातुमैल में से धातु अलग करने की जटिल क्रिया। क्षारीय लाइनिंग अधिक महँगी तथा कम टिकाऊ होती हैं। अधिक कुशल श्रमिकों की अपेक्षा। क्षारीय पद्धति की धातु अत्यधिक आक्सीकृत हो जाती है।
अल्पकालिक क्रियाओं के कारण सस्ती। कम धातुमैल। छोटे कन्वर्टर। सस्ती लाइनिंग। अधिक टिकाऊपन।	फास्फरस के धातु में पुनः मिल जाने की संभावना रहती है।
	उत्तर धमन में भूल होने का डर रहता है। यदि फास्फरस १.७५ प्रतिशत से कम हो तो धमन में धातु ठंडी हो जाती है।

इसलिए क्षारीय बेसिमर इस्पात की अपेक्षा अम्लीय बेसिमर इस्पात उत्तम समझा जाता है यद्यपि निपुण जर्मन धातु-विज्ञों द्वारा निर्मित क्षारीय बेसिमर इस्पात भी उतना ही अच्छा होता है।

———

अध्याय १२

ओपन हार्थ पद्धति द्वारा इस्पात का उत्पादन

पद्धति का प्रारम्भिक इतिहास

इस्पात की माँग दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई। क्रान्तिकारी बेसिमर पद्धति भी इस बढ़ती माँग को पूरी न कर सकी। सीमेन्स ने 'रीजेनेरेटिव सिद्धान्त' (Regenerative Principle) का आविष्कार किया। इस पद्धति से यह ज्ञात हो गया कि ईंधन के खर्च में काफी कमी की जा सकती है। साथ ही उच्च तापमान भी प्राप्त हो सकता है। सन् १८६१ में सीमेन्स ने प्रथम प्रयोगात्मक रीजेनेरेटिव फर्नेस बनाई। उसमें गैसीय ईंधन का उपयोग किया गया। यह शीशा गलाने के काम में लाई गई। उसी प्रकार की भट्ठी में सीमेन्स ने इस्पात का स्क्रैप गलाया। उसको उत्तम कोटि का इस्पात बनाने में पूर्ण सफलता मिली। सन् १८६८ तक उसने फर्नेस में पिग लोहा गलाकर उसमें से कार्बन अलग करने का उपाय खोज निकाला। गले पिग लोहे में लौह खनिज मिलाकर यह क्रिया सम्पन्न की गई। इस पद्धति का नाम "सीमेन्स की पिग तथा खनिज पद्धति" पड़ा। सीमेन्स की एक प्रारम्भिक कठिनाई यह थी कि उसकी रीजेनेरेटिव पद्धति इतनी सफल हुई कि उसकी भट्ठी, विशेषतः उसकी छत, अति उच्च ताप के कारण गल जाती थी। बाद में उसने शत प्रतिशत सिलिका की ईंटों की पतली छत बनाई तब उसकी फर्नेस वास्तव में औद्योगिक पैमाने पर उपयोग में लाई जा सकी।

सीमेन्स की प्रारम्भिक फर्नेस की लाइनिंग, आजकल की अम्लीय बेसिमर लाइनिंग की तरह, अम्लीय रिफ्रेक्ट्री की होती थी। बाद में फास्फरस अलग करने के उद्देश्य से चूने का पत्थर फर्नेस में मिलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस कारण हार्थ मैग्नेसाइट की ईंटों का बनाया गया जिसके ऊपर फुंके हुए मैग्नेसाइट या डोलोमाइट की एक परत बिछा दी गई। यह फर्नेस 'क्षारीय फर्नेस' कहलाई। मार्टिन बन्धुओं ने गले पिग लोहे में इस्पात का स्क्रैप मिलाकर उसके कार्बन की मात्रा इतनी कम कर दी कि लौह खनिज अलग से मिलाने की आवश्यकता नहीं रह गई। उस पद्धति का नाम 'पिग और स्क्रैप पद्धति' पड़ा।

ओपन हार्थ पद्धति के लाभ

१—इस पद्धति में द्रव धातु का तापमान, रासायनिक क्रियाओं पर निर्भर न रहकर स्वतन्त्र रहता है क्योंकि इसमें लौह आक्साइड का उपयोग आक्सी-कारक के स्थान पर होता है तथा अलग से ईंधन द्वारा ताप दिया जाता है। अशुद्धियों का निराकरण क्रमशः किया जाता है। इस प्रकार द्रव धातु का तापमान तथा उसके शोधन पर बेसिमर पद्धति की अपेक्षा अधिक नियन्त्रण रहता है।

२—उपर्युक्त कारणों से विभिन्न कोटि के कच्चे माल का उपयोग हो सकता है तथा नाना भांति के इस्पात बनाये जा सकते हैं। बेसिमर पद्धति में यह सुविधा नहीं मिलती।

३—चूंकि द्रव पिग लोहे में खनिज मिलाया जाता है इसलिये उत्पादन बढ़ जाता है।

४—क्षारीय ओपन हार्थ पद्धति के द्वारा फास्फरस को आसानी से अलग किया जा सकता है। बेसिमर पद्धति में यह बात नहीं है। टामस गिल्क्रिष्ट पद्धति (क्षारीय बेसिमर पद्धति) में करीब २ प्रतिशत फास्फरस की आवश्यकता पड़ती है जिससे उत्तर धमन के लिए आवश्यक तापमान कायम रखा जा सके। पर क्षारीय ओपन हार्थ पद्धति में १ प्रतिशत फास्फरस या उससे कम फास्फरस युक्त पिग लोहे का उपयोग किया जा सकता है।

आधुनिक ओपन हार्थ प्लान्ट के प्रसाधन

प्लान्ट में फर्नेस के अतिरिक्त निम्नलिखित वस्तुएँ होनी चाहिये—गर्म धातु का मिक्सर, चार्ज करने तथा माल हटाने के लिए क्रेन और यंत्र, ठोस पदार्थ चार्ज करने के लिए बक्स, डब्बू, सांचे तथा सांचों में से इंगट निकालने के लिए स्ट्रिपर (Stripper)।

ईंधन

१. प्राकृतिक गैस; २. प्रोड्यूसर गैस; ३. कोक ओवन गैस; ४. कोक ओवन गैस तथा ब्लास्ट फर्नेस गैस का मिश्रण; ५. तैल; ६. कोलतार; ७. विचूर्ण कोयला। उपर्युक्त पदार्थों में से किसी का उपयोग ओपनहार्थ फर्नेस में हो सकता है। निकट भूत तक प्रोड्यूसर गैस बहुतायत से इस्तेमाल की जाती थी पर अब कोक ओवन गैस तथा ब्लास्ट फर्नेस गैसों का मिश्रण अधिक प्रचलित होता जा रहा है।

मिक्सर

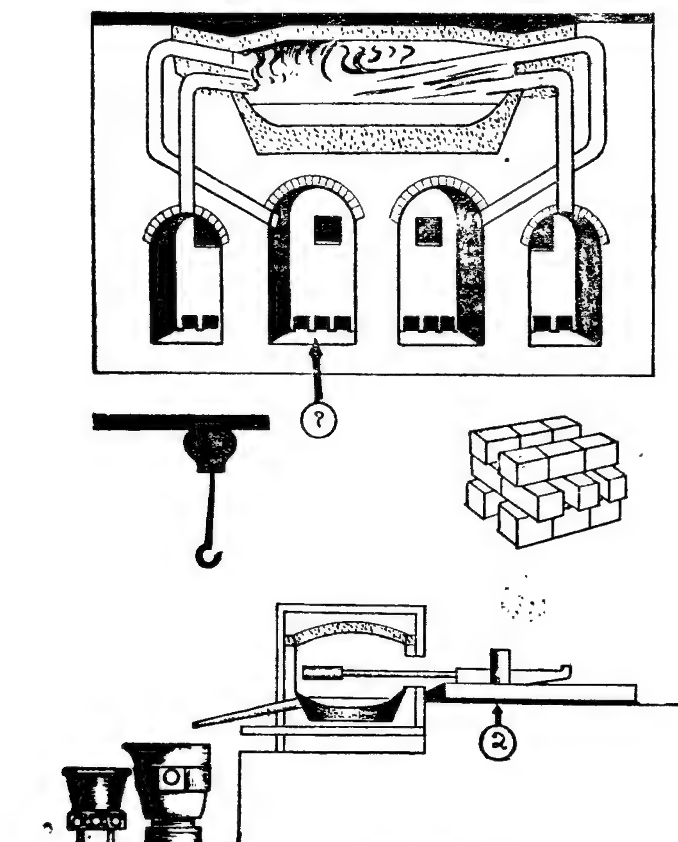
गले पिग लोहे की पूर्ति गरम धातु के मिक्सर से की जाती है। चित्र संख्या ४४ देखिये। मिक्सर इस्पात की मोटी चद्दरों से बना बहुत बड़ा पात्र होता है तथा इसमें अग्निप्रतिरोधक ईंटों की लाइनिंग रहती है। इसमें ५०० से १५०० टन तक गला पिग लोहा समा सकता है। इसकी दीवालें बहुत मोटी होती हैं तथा ऊपर की ओर कुछ दाहक (Burners) लगे रहते हैं। जब धातु की सतह पर पपड़ी पड़ने लगती है अर्थात जब तापमान कुछ कम होने लगता है, तब इन दाहकों को जलाकर धातु का तापमान बढ़ाया जाता है। अलग-अलग ब्लास्ट फर्नेसों से प्राप्त द्रव पिग लोहे का रासायनिक संगठन अलग-अलग होता है। सबको मिक्सर में मिला देने से विभिन्नताएँ दूर होकर एक सी धातु प्राप्त होती है। मिक्सर से दूसरा लाभ यह होता है कि उसमें द्रव धातु काफी समय तक शान्त पड़ी रहती है। अतः धातु में विद्यमान कुछ गंधक और मैंगेनीज़ आपस में मिलकर मैंगेनीज़ सल्फाइड (MnS) बनाते हैं, जो हल्का होने के कारण ऊपर उठकर धातुमैल में समा जाता है। इस प्रकार मिक्सर अंशतः गन्धक हटाने का कार्य भी करता है।

क्षारीय ओपन हार्थ पद्धति

ओपन हार्थ फर्नेस का विस्तार कुछ टनों से लेकर सौ टन माल अटा सकने तक होता है। ढलाई घरों में छोटी तथा इस्पात की रोलिंग मिलों में बड़ी फर्नेस रहती है। वर्तमान प्रवृत्ति बड़े आकारों की ओर है। विशिष्ट ओपन हार्थ पद्धतियों में, जैसे तालबट (Talbot) पद्धति में २०० से ३०० टन की फर्नेस इस्तेमाल की जाती है। इन फर्नेसों की लम्बाई चौड़ाई बढ़ाने की अपेक्षा हार्थ की गहराई अधिक बढ़ाई जाती है। बड़ी फर्नेस में हार्थ की चौड़ाई १५ फुट लम्बाई ४० फुट तथा गहराई केवल २० इंच होती है। हार्थ की बनावट में सबसे नीचे अग्निप्रतिरोधक ईंटें रहती हैं। उसके ऊपर मैग्नेसाइट की ईंटें और फिर तपाये हुए (Calcined) मैग्नेसाइट तथा क्षारीय ओपन हार्थ धातुमैल के मिश्रित चूर्ण की तह रहती है। धातु मैल ईंटों के जोड़ों में प्रवेश कर धातु को उन जोड़ों में जाने से बचाता है। बड़ी फर्नेस में पाँच चार्जिंग द्वार (Charging Doors) होते हैं। इनमें से माल फर्नेस में चार्ज किया जाता है। इन द्वारों की निचली सतह से हार्थ की सीमा आरंभ हो जाती है।

क्षारीय ओपन हार्थ की दीवारों पर धातुमैल-धरातल के ऊपर (मैग्नेसाईट ईंटों की ऊपरी सीमा पर) तटस्थ क्रोमाइट ईंटों की एक परत लगाई जाती है। उसके ऊपर सिलिका की ईंटें रहती हैं। छत भी इस्पात के ढाँचे पर सिलिका की ईंटों से बनती है।

ओपन हार्थ फर्नेस की बनावट निम्नलिखित चित्र में दिखाई गई है।



चित्र नं० ४९ ओपन हार्थ फर्नेस

(१) चित्र में ऊपर की ओर फर्नेस दिखाई गई है तथा उसके नीचे रीजोनरेटिव जाली है। (२) चार्जिंग मशीन।

हार्थ की लाइनिंग विशेषतः धातुमैल के धरातल के पास खराब हो जाती है। इसलिये प्रत्येक ताप के बाद इस भाग की मरम्मत की जाती है। यद्यपि डोलोमाइट की अपेक्षा मैग्नेसाइट उत्तम रिफ्रेक्ट्री पदार्थ है तथापि फुँके हुए

डोलोमाइट का उपयोग इस कार्य में अधिक होता है क्योंकि एक तो यह सस्ता होता है और दूसरे छिद्रों आदि में अच्छी तरह बैठ जाता है।

हार्थ के नीचे की ओर दोनों ओर अग्निप्रतिरोधक ईंटों की जाली से निर्मित दो-दो कक्ष रहते हैं। फर्नेस में से निकलने वाली तप्त गैसें दो कक्षों (पारी पारी से दाहिनी और बाईं ओर के दोनों कक्षों) में से होकर बाहर जाती हैं। ये दो कक्ष कुछ समय तक गर्म होते रहते हैं। कुछ समय पूर्व गर्म हो चुके शेष दो कक्षों में से गैसीय ईंधन तथा वायु भेजी जाती है। ये दोनों पूर्व तप्त कक्षों की गर्मी सोखकर स्वयं बहुत गर्म हो जाती हैं तथा इस प्रकार ताप उत्पादन के व्यय में बहुत बचत होती है। साथ ही उच्च तापमान भी प्राप्त होता है।

जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, प्रत्येक कक्ष में से एक मार्ग बना है जो हार्थ के ऊपर जाकर समाप्त हो जाता है। मध्य की ओर के दो कक्ष कुछ बड़े होते हैं। इनका संबंध वायु मार्ग से होता है। छोर के दोनों कक्षों का संबंध ईंधन मार्गों से होता है। फर्नेस में प्रवेश करते समय वायु ऊपरी मार्ग से आती है तथा गैसीय ईंधन उसके नीचे स्थित मार्ग से। हार्थ के दोनों छोरों पर इस प्रकार के दो मार्ग (Ports) रहते हैं। ये सिलिका ईंटों के बने होते हैं तथा इन्हें जल के प्रवाह से (जो विशेष प्रबंध द्वारा ढके हुए मार्गों से भेजा जाता है) ठंडा रखा जाता है अन्यथा अत्यंत उच्चताप के कारण ये गल जाते हैं। इन मार्गों का झुकाव हार्थ की ओर रहता है। झुकाव का अंश (Degree of inclination) बड़ी सावधानी से निर्धारित किया जाता है। यह झुकाव ऐसा होता है कि तप्त गैसें द्रव धातु से टकराती नहीं और न छत ही अत्यधिक गर्म होने पाती है। वायु मार्ग गैस मार्ग के ऊपर रखा जाता है जिससे धातु अत्यधिक आक्सीकृत न होने पावे और साथ ही गैस और वायु का उचित मिश्रण बन सके।

तप्त गैसें धातु को ताप देने के बाद दूसरी ओर स्थित दोनों कक्षों को गर्म करती हैं। उसके बाद चिमनी में चली जाती हैं। चूँकि इन गैसों में धूल के बारीक कण रहते हैं इसलिए कक्षों में जाने के पूर्व इनको धूल धूलिग्राही कक्ष (डस्ट कैचर) द्वारा अलग कर ली जाती है जिससे कक्षों की जालियाँ फँसने नहीं पातीं।

गैस तथा वायु की दिशा प्रत्येक १५ या २० मिनट बाद बदल दी जाती है। अर्थात् पहले जिस ओर से ताज़ी वायु और ईंधन प्रवेश करता था उस ओर से तप्त गैसें बाहर जाने लगती हैं। इसी प्रकार जिस ओर से पहिले तप्त गैसें बाहर जाती थीं उससे ताज़ी वायु और गैसीय ईंधन अन्दर आता है। यह कार्य दिशा परिवर्तन वाल्वों (valves) द्वारा किया जाता है।

चार्ज को इस्पात के बड़े बक्सों में लाया जाता है। चार्जिंङ्ग मशीन इन बक्सों को उठाकर फर्नेस के अन्दर ले जाती है तथा इन्हें उलटकर चार्ज अन्दर गिरा देती है और बक्स पुनः वापस ला देती है। इस क्रिया में लगभग एक मिनट लगता है। इस प्रकार बड़ी फर्नेस चार्ज करने में भी एक घण्टे से अधिक समय नहीं लगता।

चार्जिङ्ग द्वारों की विरुद्ध दिशा में धातु निकालने का मार्ग रहता है। यह बीच में रहता है तथा इस प्रकार बनाया जाता है कि हार्थ के निम्न भाग से माल बाहर निकलता है। प्रत्येक ताप के बाद यह मार्ग अच्छी तरह बन्द कर दिया जाता है।

धातुमैल मार्ग हार्थ के छोरों पर धातुमैल रेखा के पास स्थित रहते हैं।

प्रोड्यूसर गैस का उपयोग ईंधन की तरह होता है। फर्नेस घर के बाहर प्रोड्यूसर गैस का प्लान्ट रहता है। इस प्लान्ट को फर्नेस के निकट रखना चाहिये जिससे रास्ते में ताप नष्ट न हो। आजकल प्रोड्यूसर गैस के बदले ब्लास्ट फर्नेस गैस तथा कोक ओवन गैस का मिश्रण काम में लाया जाता है।

झुकनेवाली फर्नेस

ओपन हार्थ फर्नेस के दो प्रकार होते हैं—स्थिर और झुकनेवाली। झुकनेवाली फर्नेस यद्यपि अधिक महँगी होती है तथापि उससे कई लाभ भी होते हैं जिनके कारण उसका उपयोग बहुतायत से होता है। झुकनेवाली फर्नेस के भी दो प्रकार होते हैं—(१) कैम्पबेल (Campbell) और (२) वेलमैन (Wellman)। कैम्पबेल फर्नेस के झुकाव की धुरी (axis of rotation) तथा पोर्टों (वायु तथा ईंधन मार्गों) की धुरी एक होती है, इसलिए जब फर्नेस झुकाई जाती है तब वायु और ईंधन का आना बन्द नहीं करना पड़ता। पोर्ट अलग से बने रहते हैं तथा जल प्रवाह द्वारा ठण्डे रखे जाते हैं।

वेलमैन फर्नेस में हार्थ तथा पोर्ट एक में जुड़े रहते हैं। इसलिए जब फर्नेस झुकाई जाती है तब वायु और गैस का आना बन्द कर देना पड़ता है। झुकनेवाली फर्नेसों में से धातु और धातुमैल सरलता से निकलता है। झुकनेवाली फर्नेस की मरम्मत दो तापों के मध्यवर्ती समय में सुगमता से हो सकती है (विशेषतः कैम्पबेल प्रकार में) तथा गैस का प्रवेश भी बन्द नहीं करना पड़ता।

फर्नेस चार्ज में निम्नलिखित पदार्थ होते हैं।

(१) ठोस तथा द्रव पिग लोहा, (२) स्क्रैप, (३) लौह खनिज तथा (४) चूने का पत्थर।

पिग लोहे में सिलिकन १·२५ प्रतिशत से कम होना चाहिये जिससे फर्नेस लाइनिंग अधिक आक्रान्त न हो।

मैंगेनीज़ अधिक होना चाहिये क्योंकि उससे गन्धक तथा आक्सीजन अलग करने में सहायता मिलती है तथा धातु की तरलता भी बढ़ जाती है। फास्फरस किसी भी मात्रा में हो सकता है पर जब वह १ प्रतिशत से कम रहता है तब व्यय में बहुत कमी हो जाती है। गन्धक ०·०५ प्रतिशत या उससे भी कम होना चाहिये क्योंकि उसको अलग करना बहुत कठिन है।

चार्ज का क्रम—यदि स्क्रैप में इस्पात की मोटी चद्दरें हों तो पहिले हार्थ पर उन्हीं को चार्ज किया जाता है जिससे घर्षण आदि से हार्थ की रक्षा हो सके।

यदि चद्दर स्क्रैप (Plate scrap) प्राप्य न हो तो सर्वप्रथम हार्थ पर चूने का पत्थर चार्ज किया जाता है। इसके चार कारण हैं—

(१) सिलिकन और चार्ज की क्रिया द्वारा उत्पन्न SiO_2 से हार्थ की रक्षा। हार्थ क्षारीय तथा SiO_2 अम्लीय होता है।

(२) तापावरोध का निराकरण। चूने के पत्थर को बाद में चार्ज करने से ताप का अवरोध होने लगता है क्योंकि वह ताप प्रतिरोधक होता है।

(३) चूने के पत्थर का निस्तपन (Calcination) बचाना, जिसके कारण 'चूना उबाल' (Lime boil) उत्पन्न होता है।

(४) ताप के समय चूने की प्राप्ति अधिक सुगम हो जिससे बाद में वह फास्फरस के आक्साइड से मिलकर चूने का फास्फेट (धातुमैल) बनावे।

लौह खनिज का उपयोग उसके आक्सीजन अंश के कारण होता है। धातु में उपस्थित अशुद्धियों के साथ मिलकर यह आक्सीजन उनके आक्साइड बनाता है जो बाद में धातुमैल में चले जाते हैं।

चार्ज के क्रम में दूसरा नम्बर लौह स्क्रैप का है और उसके ऊपर पिग लोहा दिया जाता है। स्क्रैप को पिग लोहे के नीचे चार्ज करने का कारण यह है कि उसमें अशुद्धियों की मात्रा पिग की अपेक्षा बहुत कम होती है। यदि वह ऊपर रखा जाता है तो आक्सीजन बहुल ज्वाला के कारण अत्यधिक आक्सीकृत हो जाता है। यदि गले पिग लोहे को फर्नेस में चार्ज करना हो तो अन्य पदार्थों के

गल जाने पर उसे चार्जिंग द्वार में से फर्नेस में छोड़ दिया जाता है। गला पिग लोहा मिक्सर से या सीधे ब्लास्ट फर्नेस से लाया जाता है।

द्रवण

चार्ज को गलने में करीब दो घन्टे लगते हैं। उसके बाद गला पिग लोहा छोड़ा जाता है। द्रवण काल में स्क्रैप और पिग लोहा बहुत आक्सीकृत हो जाता है।

खनिज उबाल

चार्ज का महत्वपूर्ण शोधन खनिज उबाल के साथ आरम्भ होता है। 'खनिज उबाल' कहने का कारण यह है कि खनिज के आक्सीजन तथा पिग के कार्बन के संयोग से CO गैस के बुदबुदे उठते हैं जिससे पूरी द्रव धातु उबलती सी जान पड़ती है। द्रवण काल के पश्चात् खनिज उबाल आरम्भ होता है। द्रवण काल में अधिकांश सिलिकन तथा मैंगेनीज़ खनिज के आक्सीजन द्वारा आक्सीकृत होकर धातुमैल में चले जाते हैं।

गन्धक के अलगाव का नियंत्रण नहीं हो सकता पर कुछ गन्धक MnS बनकर धातुमैल में तथा कुछ जलकर फर्नेस की गैसों के साथ बाहर चला जाता है।

फास्फरस आक्सीकृत होकर P_2O_5 बनता है जो अम्लीय होता है। यह कुछ FeO, खनिज तथा कुछ MnO के साथ मिलकर 'लौह मैंगेनीज़ फास्फेट' धातुमैल बनाता है। चूँकि धातुमैल में CaO मौजूद रहता है इसलिए बाद में फास्फेट में लोहा तथा मैंगेनीज़ CaO द्वारा स्थानान्तरित हो जाते हैं और अन्ततोगत्वा फास्फरस $Ca_3(PO_4)_2$ के रूप में धातु मैल में रह जाता है।

खनिज के उबाल के दौरान में कार्बन का आक्सीकरण मन्द गति से चलता है। उत्पन्न CO के बुदबुदे द्रव में से होकर ऊपर आते हैं। इस प्रकार धातु अच्छी तरह मिल जाती है तथा शोधन क्रिया में सुगमता होती है। उबाल के कारण धातुमैल की सतह ऊँची हो जाती है। धातुमैल का मार्ग खोल दिया जाता है जिससे वह अबाध रूप से बाहर निकल जाता है। यदि यह न किया जाय तो धातुमैल चार्जिंग द्वार से बाहर निकल सकता है।

चूना उबाल

चूने के पत्थर का निस्तपन (Calcination, $CaCO_3 = CaO + CO_2$) पद्धति के आरम्भ से ही होने लगता है पर खनिज उबाल के बाद वह अत्यधिक हो जाता है। इससे यह संकेत मिलता है कि हार्थ का निम्न भाग अच्छी तरह तप्त हो गया है जिसके कारण चूने का पत्थर विबन्ध (Decompose) हो रहा है। CO_2 बाथ[1] के कार्बन से मिलकर CO बनाता है[2]। इससे गैस की मात्रा दूनी हो जाती है। यह बाथ को अच्छी तरह विलोड़ित कर देता है तथा चूने को उठाकर धातुमैल तक लाता है। चूना (CaO) फास्फेट में Mn तथा Fe की जगह ले लेता है और धातुमैल को अत्यधिक क्षारीय रखता है।

सिलिकन, मैंगेनीज़ तथा फास्फरस के अलग हो जाने पर कार्बन अलग होने का नंबर आता है। इस अवस्था में दो पद्धतियाँ अपनाई जा सकती हैं। (१) कार्बन को ०·१ प्रतिशत या उससे कम कर दिया जाय अथवा (२) कार्बन कम होते समय उसको इच्छित उतार पर ठहरा लिया जाय। बादवाली पद्धति का अर्थ यह हुआ कि जब कार्बन इच्छित अनुपात से ५ प्वाइंट (एक प्वाइंट = ०·०१ प्रतिशत) कम हो जाय तब माल को डब्बू में उड़ेल दिया जाय। तत्पश्चात डब्बू में पुनर्कार्बनीकारक छोड़कर कार्बन की मात्रा इच्छित अनुपात में कर ली जाय।

टैपिंग के समय धातु का तापमान उसके द्रवणांक से काफी अधिक रखा जाता है क्योंकि पुनर्कार्बनीकरण तथा अनाक्सीकरण संपूर्ण करने में समय लगता है। ढलाई करने में भी समय लगता है। इसलिए कार्बन के अलगाव तथा तापमान की वृद्धि को सावधानी से देखते रहना चाहिये। यदि कार्बन शीघ्रता से आक्सीकृत हो जाता है तो बाथ के आक्सीकृत होने का डर रहता है। जब कार्बन इतनी शीघ्रता से आक्सीकृत हो रहा हो कि फास्फरस अलग होने से पहिले ही सब कार्बन अलग हो जाने की आशंका हो तो थोड़ा पिग लोहा फर्नेस में छोड़ दिया जाता है। इस क्रिया का नाम 'पिगिंग' (Pigging) है। पिग में कार्बन की मात्रा ३·५ प्रतिशत होती है जिससे पूरे बाथ में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है।

१—फर्नेस के अन्दर मौजूद द्रव चार्ज को बाथ कहा जाता है।

२—$CO_2 + C = 2\,CO$

कभी-कभी कार्बन का आक्सीकरण बहुत धीरे होता है। ऐसी स्थिति में खनिज मिलाया जाता है। इसी समय धातुमैल की तरलता बढ़ाने के लिए फ्लोरस्पार (Fluorspar) भी छोड़ा जाता है।

टैपिंग समय के आधे घंटे के अंदर खनिज कभी नहीं मिलाना चाहिये क्योंकि इससे लौह आक्साइड धातु में चला जाता है तथा इस्पात की किस्म मध्यम हो जाती है।

जब कार्बन की मात्रा निश्चित सीमा तक पहुँच जाती है तब फर्नेस टैप कर ली जाती है। इस्पात का तापमान उसके द्रवणांक से १५०° सें० ऊपर रहना चाहिये जिससे टैपिंग और इंगट की ढलाई में होने वाले ताप का क्षय पूरा हो सके।

कार्बन की मात्रा जानने के लिए बीच में एक लोहे के साँचे में थोड़ा-सा माल ढाल लिया जाता है। ठंडा होने पर उसे तोड़कर निरीक्षण किया जाता है। इससे कार्बन की मात्रा का आभास मिल जाता है। धातु के फर्नेस में रहते ही शीघ्रता से नमूने का रासायनिक विश्लेषण कर लिया जाता है।

पुनर्कार्बनीकरण

इसके द्वारा दो कार्य संपन्न होते हैं। एक तो कार्बन की मात्रा उचित अनुपात में प्राप्त होती है, दूसरे अनाक्सीकरण संपूर्ण होता है। फेरो-मैंगेनीज़, स्पिजिलेशन, कोयला, फेरोसिलिकन तथा अन्य धातुसंकर प्रधान पुनर्कार्बनीकारक तथा अनाक्सीकारक हैं।

क्षारीय पद्धति में समाप्ति (Finishing) सदैव डब्बू में की जाती है क्योंकि फर्नेस में फास्फेट युक्त धातुमैल की उपस्थिति में यह क्रिया संपन्न करने में फास्फेट विबंध होकर फास्फरस के पुनः धातु में मिल जाने का डर रहता है। डब्बू में धातु अधिक समय तक नहीं रखी जाती इसलिए अनाक्सीकरण तथा अशुद्धियों को उठकर ऊपर आने का अवसर अच्छी तरह नहीं मिल पाता।

साँचे में इंगट ढालने के बाद तुरन्त अलुमीनियम की गोलियाँ छोड़ दी जाती हैं। इससे अनाक्सीकरण में सहायता मिलती है।

जब इस पद्धति द्वारा इस्पात का धातुसंकर बनाना हो तब उन तत्वों को जो शीघ्र आक्सीकृत हो जाते हैं डब्बू में छोड़ा जाता है। जो शीघ्र आक्सीकृत नहीं



चित्र सं० ४६ ओपन हार्थ फर्नेस। धातु उँडेली जा रही है।

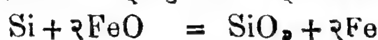
होते उन्हें ताप के अन्त में फर्नेस में छोड़ा जा सकता है। ताँबा तथा गिलट फर्नेस में मिलाये जाते हैं।

क्षारीय ओपन हार्थ पद्धति में निम्नलिखित रासायनिक क्रियाएँ होती हैं :—

द्रवण काल



$$३Si + २Fe_2O_3 = ३SiO_2 + ४Fe$$



$$Si + २FeO = SiO_2 + २Fe$$



$$३Mn + Fe_2O_3 = ३MnO + २Fe$$

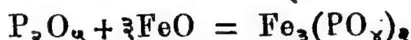


$$Mn + FeO = MnO + Fe$$



$$MnO + SiO_2 = MnSiO_3$$

खनिज उबाल काल


$$२P + ५FeO = P_{२}O_{५} + ५Fe$$

$$P_{२}O_{५} + ३FeO = Fe_{३}(PO_{४})_{२}$$

$$Fe_{३}(PO_{४})_{२} + ३CaO = Ca_{३}(PO_{४})^{२} + ३FeO$$

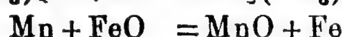
$$C + FeO = CO + Fe$$

चूना उबाल काल

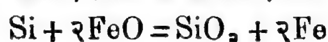

$$CaCO_{३} = CaO + CO_{२}$$

$$C + FeO = CO + Fe$$

$$C + CO_{२} = २CO$$

$$Fe_{३}(PO_{४})_{२} + ३CaO = Ca_{३}(PO_{४})_{२} + ३FeO$$

$$Mn + FeO = MnO + Fe$$

पुनर्कार्बनीकरण काल


$$Mn + FeO = MnO + Fe$$

$$Si + २FeO = SiO_{२} + २Fe$$

क्षारीय ओपन हार्थ इस्पात

सम्प्रति संसार का ७० प्रतिशत इस्पात क्षारीय ओपन हार्थ पद्धति से बनाया जाता है। शोधन की गति मन्द होने के कारण इसकी किस्म अम्लीय बेसिमर इस्पात से कहीं अच्छी होती है, क्योंकि :—

(१) फास्फरस का अलगाव पूर्णतः नियन्त्रण में रहता है।

(२) गन्धक यद्यपि नियन्त्रण में नहीं रहता तथापि अंशतः वह अलग हो जाता है।

(३) इस्पात में अधिक मात्रा में घुले हुए आक्साइड नहीं रहते।

इस पद्धति में एक तो प्रत्येक बार अधिक मात्रा में इस्पात प्राप्त होता है, दूसरे इसमें इस्पात के स्क्रैप का भी उपयोग किया जा सकता है जो पिग लोहे से सस्ता एवं अधिक शुद्ध होता है।

अम्लीय ओपन हार्थ पद्धति

सभी अम्लीय पद्धतियों में फास्फरस का अलगाव असम्भव होता है। इसलिए कम फास्फरस वाले उत्तमकोटि के चार्ज का उपयोग करना पड़ता है जिसके कारण व्यय बढ़ जाता है।

प्रसाधन (Equipment)

अम्लीय और क्षारीय ओपन हार्थ का प्रधान भेद हार्थ की बनावट में रहता है। अम्लीय फर्नेस में हार्थ रेत से बनाई जाती है। रेत की परतें एक-एक करके जमाई (Fritted) जाती हैं। रेत की परतों की कुल ऊँचाई करीब एक फुट होती है।

अम्लीय पद्धति

चार्ज में पिग तथा स्क्रैप इस्पात का क्रम इस प्रकार रहता है—"पिग, स्क्रैप, पिग। कभी-कभी चार्ज के साथ कुछ लौह खनिज भी मिलाया जाता है। पेंदे में मौजूद पिग हार्थ की रक्षा करता है तथा स्क्रैप के ऊपर मौजूद पिग स्क्रैप को अत्यधिक आक्सीकृत होने से बचाता है। पिग लोहे में गन्धक तथा फास्फरस दोनों कम होना चाहिये क्योंकि इनमें से कोई भी अलग नहीं किया जा सकता।

मैंगेनीज़ के आक्सीकरण से MnO क्षार बनता है तथापि जब पिग लोहे में मैंगेनीज़ १ प्रतिशत से अधिक होता है तब वह लाभप्रद होता है क्योंकि उसकी क्रिया अनाक्सीकर होती है। द्रवणकाल में लगभग सभी सिलिकन मैंगेनीज़ तथा अंशत: कार्बन आक्सीकृत हो जाते हैं। SiO_2 तथा MnO से धातुमैल बनता है। जब अत्यधिक परिमाण में स्क्रैप इस्तेमाल किया जाता है (कभी कभी ७५ प्रतिशत तक) तब सिलिकन की मात्रा कम पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में अलग से रेत चार्ज की जाती है तथा सिलिकन की कमी पूरी कर धातुमैल बनाया जाता है।

यदि धातुमैल गाढ़ा हो तो चूना मिलाकर उसे तरल बनाया जाता है। परन्तु चूना मिलाते समय सावधान रहना चाहिये कि हार्थ की अम्लीय लाइनिंग आक्रान्त न होने पावे। चूने के स्थान में फ्लोरस्पार का भी उपयोग किया जाता है। अब केवल कार्बन अलग होने को बच रहता है। बाथ में हेमेटाइट

खनिज मिलाने से कार्बन शीघ्रता से अलग हो जाता है। जब बाथ में इच्छित मात्रा में कार्बन बच रहता है तब सिलिकन (फेरो सिलिकन के रूप में) मिलाया जाता है। इससे कार्बन का आक्सीकरण रुक जाता है तथा बाथ के अनाक्सीकरण में सहायता मिलती है।

चूँकि धातुमैल में फास्फरस नहीं रहता इसलिए फर्नेस में ही पुनर्कार्बनीकरण किया जाता है। फर्नेस में किया गया पुनर्कार्बनीकरण अधिक प्रभावकर होता है। कुछ लोग धातु टैप करते समय पुनर्कार्बनीकरण करते हैं।

अम्लीय पद्धति का रसायन विज्ञान—

(१) द्रवणकाल में Fe_2O_3 (खनिज) द्वारा सिलिकन तथा मैंगेनीज़ आक्सीकृत होते हैं।

(२) SiO_2 तथा MnO_2 से धातुमैल बनता है।

(३) कार्बन अंशतः आक्सीकृत होकर CO बनाता है।

(४) हेमेटाइट मिलाने पर बाथ में आक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। इससे कार्बन का आक्सीकरण पूर्ण होता है तथा बाथ में उबाल (खनिज उबाल) पैदा होता है। यदि बाथ में FeO की मात्रा कम हो तो कार्बन का आक्सीकरण SiO_2 द्वारा होने लगता है और SiO_2 लध्वीकृत होकर उसका सिलिकन इस्पात में प्रवेश कर जाता है। यह अवांछनीय है। FeO बाथ में अत्यधिक न होने पावे इसके लिए हेमेटाइट सावधानी से छोड़ना चाहिये। टैपिंग के आधे घण्टे के अन्दर खनिज न मिलाना चाहिये।

(५) पुनर्कार्बनीकारक में मौजूद मैंगेनीज़ तथा सिलिकन धातु में प्रवेश करते हैं तथा उसे अनाक्सीकृत करते हैं।

(६) यदि और अनाक्सीकरण करना हो तो इंगट ढालते समय अलुमीनियम मिलाकर किया जा सकता है।

निर्मित माल

इमारती तथा अन्य कार्यों के लिए कुछ इंजीनियर क्षारीय ओपन हार्थ की जगह अम्लीय ओपन हार्थ इस्पात की माँग करते हैं। इसका कारण यह है कि इस पद्धति में उत्तम कोटि का कच्चा माल काम में लाया जाता है तथा बाथ का आक्सीकरण अधिक नहीं होने पाता।

भारतवर्ष में छोटी अम्लीय ओपन हार्थ फर्नेस इच्छापुर (कलकत्ता) के सरकारी कारखाने में है। कुछ वर्ष हुए दो छोटी ओपन हार्थ फर्नेस कुमारधुबी इंजीनियरिंग कारखाने में चालू की गई हैं। ये सब स्क्रैप तथा बनाए हुए (artificial) धातुमैल की सहायता से चलाई जाती हैं।

विशिष्ट ओपन हार्थ पद्धतियाँ

डूप्लेक्स पद्धति

डूप्लेक्स का अर्थ है दो। इस पद्धति में अम्लीय बेसिमर कन्वर्टर के साथ क्षारीय ओपन हार्थ फर्नेस का उपयोग किया जाता है। जमशेदपुर स्थित टाटा के कारखाने में इस पद्धति से कार्य हो रहा है।

डूप्लेक्स पद्धति से निम्नलिखित कार्य होते हैं :—

(१) अधिक सिलिकन तथा अधिक फास्फरस युक्त पिग लोहे से अच्छी किस्म का इस्पात बनाया जा सकता है। पहिले अम्लीय कन्वर्टर में सिलिका अलग किया जाता है। तत्पश्चात् क्षारीय ओपन हार्थ में फास्फरस अलग किया जाता है।

(२) क्षारीय ओपन हार्थ फर्नेस की लाइनिंग खराब नहीं होने पाती क्योंकि सिलिका पहिले ही अलग हो जाता है।

(३) ओपन हार्थ में लगनेवाला समय आधा हो जाता है जिससे श्रम तथा अन्य व्ययों में पर्याप्त कमी हो जाती है।

(४) इससे ओपन हार्थ प्लान्ट इस्पात स्क्रैप की पूर्ति पर निर्भर नहीं रहता।

डूप्लेक्स पद्धति के दो प्रकार प्रचलित हैं :—

(१) कन्वर्टर में पिग लोहे का धमन केवल तभी तक किया जाता है जब तक कार्बन की मात्रा १ प्रतिशत नहीं हो जाती। इसी अवधि में समस्त सिलिकन और मैंगेनीज़ तथा दो तिहाई कार्बन अलग हो जाते हैं। अब धातु क्षारीय ओपन हार्थ फर्नेस में छोड़ी जाती है। उसमें फास्फरस तथा शेष कार्बन अलग हो जाते हैं। अन्य क्रियाएँ पूर्वोक्त रीति से सम्पन्न होती हैं।

(२) पिग लोहे का पूर्ण धमन कन्वर्टर में किया जाता है जिससे केवल समस्त सिलिकन तथा मैंगेनीज़ ही नहीं अलग हो जाते बल्कि प्रायः समस्त कार्बन भी अलग हो जाता है। इसके बाद धातु ओपन हार्थ फर्नेस में यथारीति शुद्ध की जाती है।

अधिक फास्फरस तथा अधिक गंधक वाले खनिज के लिए डूप्लेक्स पद्धति का उपयोग किया जाता है। तरीका यह है कि ब्लास्ट फर्नेस से उच्च तापमान पर पिग लोहा प्राप्त किया जाता है। इस लोहे में गन्धक कम तथा सिलिकन और फास्फरस अधिक होते हैं। इस धातु को अम्लीय बेसिमर में धमन करके सिलिकन की अधिकता कम कर दी जाती है। फिर क्षारीय ओपन हार्थ में फास्फरस अलग किया जाता है। इस प्रकार निम्न कोटि के खनिज से उच्चकोटि का इस्पात तैयार होता है।

पेरिन पद्धति (Perrin Process) :—

बेसिक पिग लोहे का अम्लीय कन्वर्टर में धमन कर सिलिकन, मैंगेनीज़ तथा कार्बन अलग कर दिये जाते हैं। फिर फास्फरस अलग करने के लिए इस धातु को २०,२५ फुट की ऊँचाई से दूसरे क्षारीय लाइनिंग वाले पात्र में छोड़ा जाता है जिसमें पहिले से बनाकर धातुमैल रखा रहता है। यह धातुमैल अत्यधिक क्षारीय तथा आक्सीकर होना चाहिए। इसमें ५० प्रतिशत से अधिक CaO तथा २५ प्रतिशत से अधिक लौह आक्साइड (FeO, Fe_2O_3) होता है। जब अंशतः धमित धातु इस बनाए हुए धातुमैल में उड़ेली जाती है तब फास्फरस आक्सीकृत होकर P_2O_5 बनता है और यह तुरन्त CaO के साथ मिलकर $Ca_3(PO_4)_2$ बनाता है जो धातुमैल में चला जाता है। फास्फरस को आक्सीकृत करने में कुछ FeO लध्वीकृत हो जाता है। यह इस्पात में चला जाता है और इस प्रकार इस्पात का परिमाण बढ़ जाता है।

———

अध्याय १३

विद्युत् फर्नेस द्वारा इस्पात का उत्पादन

यद्यपि विद्युत् द्वारा ताप उत्पन्न करने का सिद्धान्त बहुत पहिले से लोगों को मालूम था तथापि सन् १८७८ में सीमेन्स ने पहली बार लोहा गलाने की विद्युत् फर्नेस बनाई। तत्पश्चात् इन्डक्शन फर्नेस बनाई गई। फ्रांस निवासी हेरोल्ट ने आर्क[1] फर्नेस का सफलता पूर्वक निर्माण किया। सन् १९२० तक ओपन हार्थ पद्धति के सस्तेपन तथा बिजली के मँहगेपन के कारण यह पद्धति अधिक प्रचलित न हो सकी। केवल कैल्शियम कार्बाइड (CaC_2) तथा लौह-संकर (Ferro Alloys) बनाने में विद्युत् फर्नेस का उपयोग होता था। बाद में विद्युत् का उत्पादन जल-शक्ति तथा बाष्प-शक्ति द्वारा बहुत सस्ते में होने लगा। उच्चकोटि के इस्पात संकरों (Alloy Steels) की माँग भी उत्तरोत्तर बढ़ती गई। अतएव विद्युत् फर्नेस का उपयोग बहुलता से होने लगा और अब इस्पात उद्योग में विद्युत् द्वारा बने इस्पात को विशेष स्थान प्राप्त है।

विद्युत् पद्धति से निम्नलिखित प्रधान लाभ होते हैं:—

१. भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में यह उपयोगी होती है। चार्ज ठंडा हो यों गरम दोनों के लिए यह उपयुक्त है।

२. इसके द्वारा ताप तुरन्त प्राप्त होता है तथा तापमान और शोधन क्रिया का सूक्ष्मतापूर्वक नियंत्रण होता है। इस कारण गन्धक या घुली हुई गैसों को अलग करने के लिए इस्पात को बहुत अधिक गरम किया जा सकता है। ऐसे इस्पात में दृढ़ता तथा तान्तवता अधिक होती है।

३. अन्य प्रकार के ईंधनों में यह दुर्गुण है कि उनमें मौजूद हानिकर पदार्थ धातु में प्रवेश कर जाते है पर विद्युत् फर्नेस में ऐसा नहीं होता। ताप प्राप्ति का यह सबसे स्वच्छ साधन है।

४. विद्युत् फर्नेस में इच्छानुसार आक्सीकर, लघ्वीकर तथा तटस्थ स्थिति

---

१. आर्क (Arc)—विद्युत्-स्फुलिंग को आर्क या 'विद्युत् चाप' कहा जाता है।

उत्पन्न की जा सकती है जिससे फास्फरस, गन्धक, आक्सीजन आदि अलग किये जा सकते हैं और उच्चकोटि का इस्पातसंकर बनाया जा सकता है।

५. तैयार मालको फर्नेस में बहुत समय तक रोका जा सकता है। इससे माल के रासायनिक संगठन में कोई अन्तर नहीं पड़ता बल्कि धातु का शोधन और भी सूक्ष्मता से होता है।

उपर्युक्त गुणों के कारण अधिकांश उच्चकोटि के इस्पात संकर विद्युत् फर्नेस में बनाये जाते हैं। इस पद्धति द्वारा सावधानी से निर्मित्त इस्पात सर्वोत्तम घरिया इस्पात के तुल्य होता है।

अन्य इस्पात निर्माण पद्धतियों की भाँति इस पद्धति में भी अम्लीय और क्षारीय भेद होते हैं। क्षारीय पद्धति का प्रचार अधिक है। अम्लीय फर्नेस प्रधानतः इस्पात गलाने के काम आती है। इसलिए इस्पात के ढलाई घरों में उसका उपयोग होता है।

विद्युत् फर्नेस में ताप दो तरह से प्राप्त किया जाता है:—

१—आर्क (Arc) द्वारा।

२—उपपादन या इंडक्शन (induction) द्वारा। आर्क फर्नेस में ग्रेफाइट एलेक्ट्रोडों[1] के बीच या एलेक्ट्रोड तथा धातु के बीच आर्क बनता है। इंडक्शन फर्नेस में धातु उपपादित या इंड्यूस्ड विद्युत् (Induced Electricity) के प्रवाह को अवरुद्ध करती है इस कारण ताप उत्पन्न होता है।

विद्युत् फर्नेसों में सबसे लोकप्रिय 'हेरोल्ट आर्क फर्नेस' है। इसका विस्तार आधा टन से १०० टन तक होता है पर ५ से २५ टन तक की फर्नेस अधिक प्रचलित है।

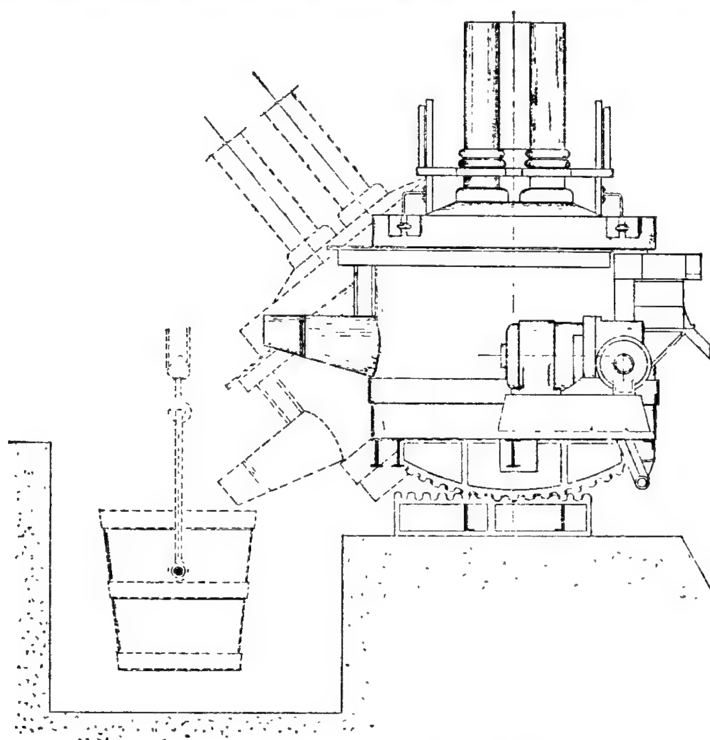
क्षारीय हेरोल्ट आर्क फर्नेस

चित्र संख्या ४७ में हेरोल्ट आर्क फर्नेस की बनावट दी है। चित्र में सीधी तथा झुकी हुई दोनों स्थितियाँ दिखाई गई हैं।

---

१ एलेक्ट्रोड (Electrode) :—इसे 'विद्युद्वार' कहा जा सकता है। (ना० प्र० स०)

यह फर्नेस गोल होती है। इसका ढाँचा इस्पात का बना रहता हैं तथा भीतर अग्नि प्रतिरोधक ईंटों की लाइनिंग रहती है। उसके ऊपर मैग्नेसाइट की मोटी परत धातुमैल रेखा के ऊपर तक दी जाती है। छत में सिलिका की ईंटें रहती हैं।



चित्र नं० ४७ **हेरोल्ट आर्क फर्नेस**

छत को इच्छानुसार फर्नेस से अलग किया जा सकता है। उसमें तीन छेद होते हैं जिनमें से एलेक्ट्रोड लटकाए जाते हैं। दीवाल में एक चार्जिंग द्वार तथा एक टैपिंग नाली रहती है।

त्रिकला ए० सी० विद्युत् प्रवाह (Three phase A. C.) कार्बन के एलेक्ट्रोड द्वारा फर्नेस में भेजी जाती है। फर्नेस की छत में जहाँ एलेक्ट्रोड प्रवेश करते हैं वहाँ कॉलर (जिनमें ठंडा जल प्रवाहित होता रहता है) द्वारा एलेक्ट्रोड को ठंडा रखा जाता है। काम करते समय एलेक्ट्रोड का निचला भाग धातुमैल की सतह से एक इंच ऊपर रहता है। एलेक्ट्रोड स्वतः अथवा यंत्र द्वारा ऊपर नीचे होते रहते हैं। इस प्रबंध द्वारा आर्क की ऊँचाई नियंत्रित कर इच्छित

तापमान रखा जाता है। एलेक्ट्रोड के दोनों छोर पर चूड़ी रहती है जिससे एक एलेक्ट्रोड खर्च होकर छोटा होने पर दूसरा एलेक्ट्रोड उसके ऊपर कस दिया जाता है। इस प्रकार एलेक्ट्रोड के व्यय में बचत होती है। प्रत्येक ताप के बाद क्षारीय लाइनिंग की मरम्मत की जाती है।

इस्पात का विशोधन (Super refining of steel)

विद्युज्जन्य ताप विशेष महँगा होता है इसलिए पिग से इस्पात बनाने की संपूर्ण क्रिया विद्युत् फर्नेस में सम्पन्न न कर पहिले ओपन हार्थ फर्नेस में इस्पात बनाया जाता है तत्पश्चात् विद्युत् फर्नेस में उसे पूर्णतः शुद्ध किया जाता है। यह विशोधन पद्धति बहुत लोकप्रिय है तथा ओपन हार्थ फर्नेसों के साथ-साथ विद्युत् फर्नेस भी इसी कार्य के लिए रखी जाती है। इस प्रकार ओपन हार्थ में इस्पात के शोधन में अत्यधिक आक्सीकरण की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस्पात में ०.०५ प्रतिशत से अधिक फास्फरस तथा ०.०८ प्रतिशत से अधिक गंधक नहीं होना चाहिये। कार्बन की मात्रा इच्छित मात्रा से कम होनी चाहिये क्योंकि विद्युत् फर्नेस में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है।

चार्ज

साधारणतः इस्पात स्क्रैप चार्ज किया जाता है पर कहीं-कहीं ओपन हार्थ में शुद्ध की हुई द्रव धातु भी चार्ज की जाती है। यदि कुल चार्ज स्क्रैप का हो तो बड़े टुकड़े नीचे और हल्के टुकड़े ऊपर रखे जाते हैं। चार्जिंग बड़ी फर्नेस में छत हटाकर ऊपर से तथा छोटी फर्नेस में चार्जिंग द्वार से की जाती है।

चार्जिंग के समय विद्युत् प्रवाह बन्द रहता है तथा एलेक्ट्रोड ऊपर उठा लिए जाते हैं।

क्रिया

जब चार्जिंग समाप्त हो जाती है तब एलेक्ट्रोड नीचे कर दिये जाते हैं और आर्क उत्पन्न किया जाता है। एलेक्ट्रोड आरम्भ में यन्त्र द्वारा नीचे ऊपर किये जाते हैं। जब एलेक्ट्रोड के नीचे कुछ धातु गल जाती है तथा आर्क स्थायी हो जाता है तब एलेक्ट्रोड स्वतः संचालित कर दिये जाते हैं।

१—स्केल (Scale) तप्त इस्पात की सतह पर जो लौह आक्साइड बन जाता है उसे 'स्केल' या 'मिल स्केल' कहा जाता है।

थोड़ा लौह खनिज या रोलिंग मिल का चोया अथवा 'स्केल'[1] फर्नेस में छोड़कर आक्सीकर धातुमैल बनाया जाता है। यह काला होता है। Fe_2O_3 या FeO द्वारा अशुद्धियों तथा कार्बन का आक्सीकरण होता है। जब कार्बन पर्याप्त कम हो जाता है तब यह धातुमैल अलग कर दूसरा धातुमैल तैयार किया जाता है जो गुण में क्षारीय तथा लघ्वीकर होता है।

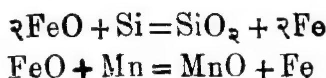
इस कार्य के लिए चूना, कोक चूर्ण और फ्लोरस्पार का उपयोग किया जाता है। कोक का कुछ अंश इस्पात में प्रविष्ट हो जाता है जिससे इस्पात के कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है। कोक का प्रधान कार्य चूने के साथ मिलकर कैल्शियम कार्बाइड (CaC_2) बनाना है। कार्बाइड युक्त धातुमैल लौह आक्साइड को लघ्वीकृत करता तथा गन्धक को अलग करता है। परीक्षार्थ इस धातुमैल का नमूना थोड़ी-थोड़ी देर पर निकाला जाता है। उसका रंग क्रमशः हल्का होता जाता है। अंत में जब यह धातुमैल पानी में डुबाया जाता है तब एसिटिलीन गैस (C_2H_2) निकलता है। इसकी (कार्बाइडकी) महक बहुत तेज होती है। इस गैस के निर्माण से निश्चित हो जाता है कि बाथ पूर्णतः अनाक्सीकृत तथा गन्धक रहित हो गया है।

अब थोड़ा-थोड़ा करके फेरोसिलिकन, फेरोमैंगेनीज़ तथा अन्य धातुसंकर बाथ में छोड़े जाते हैं। धातु को टैप करने के आधा घन्टा पहिले ये सब चीजें मिला देनी चाहिये जिससे उन्हें धातु में अच्छी तरह समान रूप से वितरित हो जाने का अवसर मिले। पद्धति के अन्तिम काल में धातु में वर्त्तमान गैसों तथा अधात्विक (Non-metallic) अशुद्धियों को बाथ से ऊपर उठकर सतह तक आने का अवसर दिया जाता है। निकल इस्पात बनाते समय निकल की गोलियाँ इस फर्नेस में छोड़ी जाती हैं। निकल आक्सीकृत नहीं होता।

अन्त में इस्पात को धातुमैल के नीचे से टैप किया जाता है। सावधानी पूर्वक धातुमैल को धातु में जाने से रोक रखा जाता है। अन्यथा धातुमैल के टुकड़े धातु में प्रवेश कर उसे खराब कर देते हैं।

विद्युत् पद्धति की रासायनिक क्रियाएँ

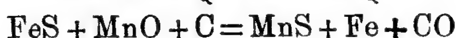
आक्सीकरण :—ये क्रियाएँ अन्य पद्धतियों के समान हैं :—

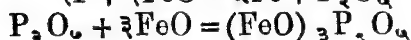


$$२FeO + Si = SiO_2 + २Fe$$

$$FeO + Mn = MnO + Fe$$


$$MnO + SiO_2 = MnO.SiO_2$$

$$FeO + SiO_2 = FeO \cdot SiO_2$$

$$FeS + MnO + C = MnS + Fe + CO$$

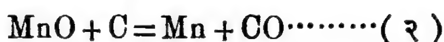
$$२P + ५FeO = ५Fe + P_2O_5$$

$$P_2O_5 + ३FeO = (FeO)_3P_2O_5$$

अनाक्सीकरण :—

प्रथम अवस्था में कुछ मैंगेनीज़ बचा रहता है। यह तुरन्त आक्सीकरण आरम्भ कर देता है।

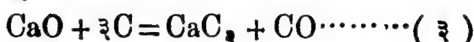

$$Mn + FeO = MnO + Fe \cdots\cdots\cdots (१)$$

द्वितीय धातुमैल में (तथा कभी-कभी थोड़ी मात्रा में प्रथम धातुमैल में) मिलाया गया कार्बन FeO तथा MnO का लघ्वीकरण जारी रखता है तथा Fe और Mn धातु में मिल जाते हैं—

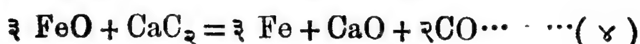
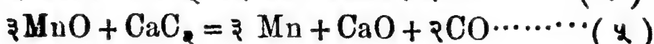

$$MnO + C = Mn + CO \cdots\cdots\cdots (२)$$

यह CO फर्नेस में लघ्वीकर वातावरण कायम रखता है।

कोकचूर्ण और चूने के योग तथा फर्नेस के तीव्र ताप से कैल्शियम कार्बाइड बनता है—


$$CaO + ३C = CaC_2 + CO \cdots\cdots\cdots (३)$$

इस क्रिया के साथ और भी लघ्वीकरण होता है—


$$३ FeO + CaC_2 = ३ Fe + CaO + २CO \cdots\cdots (४)$$

$$३MnO + CaC_2 = ३ Mn + CaO + २CO \cdots\cdots\cdots (५)$$

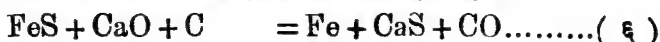
इससे स्पष्ट है कि मुक्त CaO को आक्रान्त करने के लिये और कार्बन मिलाना चाहिये।

धातुमैल सदा अधिक क्षारीय तथा लघ्वीकर रखना चाहिये।

विगंधकी करण (Desulphurisation)

बाथ में गन्धक FeS या MnS के रूप में मौजूद रहता है। लघ्वीकरण क्रियापूर्ण हो जाने के बाद यौगिक गन्धक CaC_2 को आक्रान्त करता है। FeO की उपस्थिति में (४) तथा (५) क्रियाओं की प्रधानता रहती है।

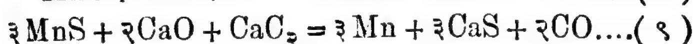
CaS के रूप में गन्धक इस प्रकार अलग होता है :—


$$FeS + CaO + C = Fe + CaS + CO \ldots\ldots\ldots (६)$$

$$३FeS + २CaO + CaC_2 = ३Fe + ३CaS + २CO \ldots. (७)$$

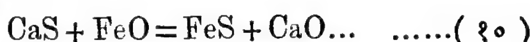


$$MnS + CaO + C = Mn + CaS + CO \ldots\ldots (८)$$

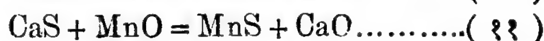


$$३ MnS + २CaO + CaC_२ = ३ Mn + ३CaS + २CO \ldots (९)$$

यदि अनाक्सीकरण पूर्ण नहीं हुआ है तो गन्धक Fe तथा Mn में वापस चला आता है :—



$$CaS + FeO = FeS + CaO \ldots\ldots (१०)$$



$$CaS + MnO = MnS + CaO \ldots\ldots (११)$$

उपर्युक्त समस्त क्रियाएँ लगभग एक साथ तब तक होती रहती हैं जब तक कि सब आक्साइड अलग नहीं हो जाता। उसके पश्चात् ही गन्धक CaS के रूप में अलग होता है। यह CaS धातुमैल में चला जाता है तथा शोधन क्रिया की समाप्ति हो जाती है।

कार्बन का नियन्त्रण

विद्युत् फर्नेस में धातुमैल का कार्बन धातु सोख लेती है। इस कारण अल्प कार्बन इस्पात बनाने में कठिनाई होती है। इस कठिनाई से बचने के लिए अल्प कार्बनयुक्त धातुमैल का उपयोग किया जाता है तथा गन्धक का कुछ भाग Mn मिलाकर अलग किया जाता है।

ऐसी कठिनाई उच्च कार्बन इस्पात बनाने में नहीं होती और कभी-कभी कार्बन की मात्रा बढ़ाने के लिए अल्प फास्फरस पिग मिलाया जाता है।

इंगटों की ढलाई

इस्पात बनाने की विभिन्न पद्धतियाँ हैं। सभी में इस्पात बन जाने पर द्रव धातु को उपयुक्त साँचों में ढालकर इंगट बनाए जाते हैं। साँचे कांती लोहे के बने रहते हैं। उनका आकार तथा विस्तार आवश्यकतानुसार रखा जाता है। वे साधारणतः चौकोर होते हैं तथा उनकी ऊँचाई चौड़ाई से तीन या चार गुनी होती है। ऊपर की ओर वे किंचित चौड़े (Tapered) रहते हैं जिससे इंगट निकालने में सहूलियत होती है।

बड़े इंगटों में कुछ विकार आ जाते हैं जिनके कारण आगे चलकर कुछ असुविधाएँ होती हैं। इन विकारों को दूर करना आवश्यक है। विकार ये हैं :—

(१) ठोस इस्पात में अधात्विक अशुद्धियों अथवा धातुमैल के टुकड़ों का प्रवेश।

इसमें लोहा, मैंगेनीज तथा कैल्शियम के आक्साइड के टुकड़े रहते हैं जो इंगट में यत्र-तत्र फैले रहते हैं। सावधानी पूर्वक निर्मित इस्पात में ये प्रायः नहीं रहते।

(२) इंगट के ऊपरी भाग के मध्य में आकुंचन के कारण लम्बे और खोखले स्थान का निर्माण।

इसे अंग्रेजी में 'पाइप' कहते हैं। चित्र सं० ४८ का ५ वाँ चित्र देखिये।

साँचे के सम्पर्क में आने वाला द्रव-इस्पात सबसे पहिले जमता है। क्रमशः मध्य की ओर यह जमाव बढ़ता जाता है। ठण्डा होते समय इस्पात सिकुड़ता है और चूँकि मध्य का भाग सबसे बाद में ठोस होता है अतः वहाँ खोखलापन रह जाता है। यांत्रिक क्रिया से यह खोखलापन दूर नहीं होता और ऐसे इंगट से निर्मित पदार्थ (रेल की पटरी आदि) में कमजोरी बनी रहती है।

इंगट के खोखले भाग को काटकर अलग कर देने से यह दोष दूर हो जाता है।

(३) इंगट के अन्तर्भाग में अशुद्धियों का संचय।

ठण्डा होने पर जब इस्पात के रवे बनने लगते हैं तब द्रव में मौजूद अशुद्धियाँ मध्य की ओर एकत्रित होने लगती हैं। इस्पात का जमना बगल और नीचे से आरंभ होता है इसलिये ये अशुद्धियाँ ऊपर की ओर मध्य भाग में एकत्र हो जाती हैं। इस भागको काटकर अलग कर देने से शेष इंगट निर्दोष हो जाता है।

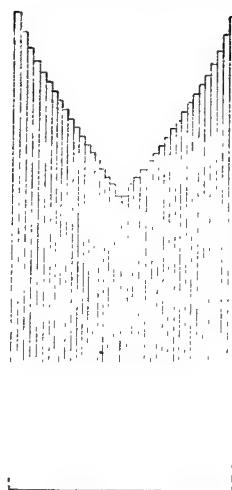
(४) गैस या वायु से भरे हुए धमन छिद्र।

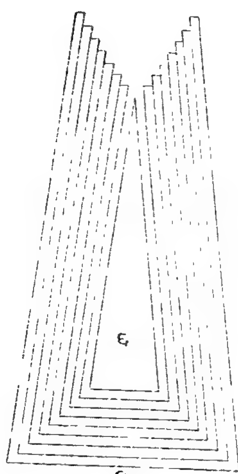
द्रव इस्पात में गैसें घुली रहती हैं। अलुमीनियम आदि के द्वारा गैसों का कुछ भाग अलग कर दिया जाता है पर कुछ न कुछ गैस धातु में बच रहती है। धातु के ठण्डा होने पर इन गैसों के कारण अण्डाकार खोखले (धमन छिद्र) बन जाते हैं। ये धमन छिद्र इस्पात को कमजोर बना देते हैं। कभी-कभी धमन छिद्रों को बनने का अवसर देकर 'पाइप' का निराकरण किया जा सकता है।

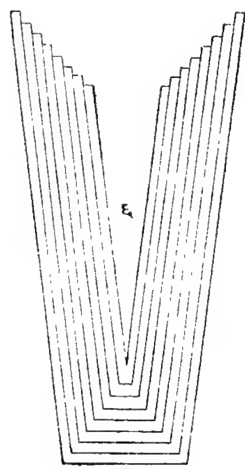
(५) बड़े रवों का निर्माण (Ingotism)।

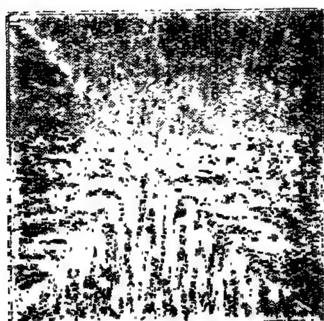
इस्पात के ठण्डा होने की गति जितनी ही मन्द होगी रवे उतने ही बड़े होंगे। बड़े रवों में अधिक दृढ़ता नहीं होती। तप्त इंगट पर यांत्रिक

क्रिया (जैसे फोर्जिग, रोलिंग इत्यादि) करने से रवे छोटे और परिष्कृत हो जाते हैं। चित्र संख्या ४८ के चौथे चित्र में रवों के निर्माणका चित्रण











चित्र सं० ४८ (१) समानांतर दीवारें, (२) इंगट का बड़ा भाग नीचे है, (३) इंगट का बड़ा भाग ऊपर है, (४) रवों का निर्माण, (५-६) इंगट में उत्पन्न खोखलापन।

किया गया है। रवों का निर्माण साँचे की दीवाल से आरंभ होकर मध्य की ओर बढ़ता है।

चित्र संख्या ४८ में विभिन्न आकार के साँचों में ढले इंगटों का चित्रण किया गया है। इसमें पाँच चित्र हैं। (१) में समानांतर दीवाल वाला साँचा है। सिकुड़न द्वारा उत्पन्न खोखलापन ऊपर की ओर है। (२) में साँचा नीचे चौड़ा तथा ऊपर सकरा है। अंक ६ द्वारा पाइप दिखाया गया है। (३) में साँचा नीचे सकरा तथा ऊपर चौड़ा है। इसमें बना पाइप ऊपर की ओर है। (४) में रवों के निर्माण की क्रिया दिखाई गई है। (५) में 'पाइप' दिखाये गये हैं। साँचे के आकार के अनुसार पाइप का आकार भी बदलता रहता है।

———

अध्याय १४

कार्बन इस्पात में विद्यमान तत्त्व तथा यंत्रोपचार

कार्बन

यह इस्पात के यान्त्रिक गुणों को सबसे अधिक प्रभावित करता है।

फास्फरस

यर इस्पात में Fe_3P के रूप में मिलता है। इसके कारण ठण्डे इस्पात पर यान्त्रिक कार्य नहीं किये जा सकते।[1] अतः इसकी मात्रा बहुत कम (अधिक से अधिक ०·०५ प्रतिशत) रखी जाती है। अल्प कार्बन इस्पात की अपेक्षा उच्च कार्बन इस्पात पर इसका प्रभाव अधिक हानिकर होता है।

कभी-कभी पतली चद्दर बेलने या पेंच आदि (Screw stock) बनाने के इस्पात में इसकी मात्रा ०·१ प्रतिशत रखी जाती है।

गन्धक

इस्पात में गन्धक FeS या MnS के रूप में मिलता है। गन्धक के कारण उच्च तापमान पर इस्पात कमजोर हो जाता है।[2] इस कारण इस्पात में गन्धक सबसे अधिक हानिप्रद समझा जाता है और उसकी मात्रा अधिक से अधिक ०·०५ प्रतिशत रखी जाती है।

कभी-कभी फास्फरस की तरह गन्धक भी सोद्देश्य मिलया जाता है जिससे पेंच आदि बनाने (Screw Cutting) में इस्पात के लच्छे घुँघराले नहीं होते और शीघ्र टूटकर इस्पात से अलग हो जाते हैं।

मैंगेनीज़—इस्पात में मैंगेनीज़ लोहे के 'घन विलय' तथा कभी-कभी Mn और Fe के दोहरे कार्बाइड के रूप में मिलता है। इसकी उपस्थिति से इस्पात को कई लाभ पहुँचते हैं। जैसे, यह गंधक के हानिकर प्रभाव को दूर कर देता

---

१. Phosphorus induces cold shortness.

२. Sulphur induces red-shortness.

है। यह इस्पात को अनाक्सीकृत करता है तथा उसकी तनाव की दृढ़ता बढ़ाता है। धमन छिद्र कम करने में सहायक होता है तथा इस्पात के रवों को छोटा करता है।

सिलिकन—यह FeSi के रूप में इस्पात में घुला रहता है। सिलिकन की अल्प मात्रा का इस्पात के यांत्रिक गुणों पर प्रभाव नहीं पड़ता। इसकी उपस्थिति भी इस बात का निर्देश करती है कि इस्पात भलीभाँति आक्सीजन रहित हो चुका है। उत्तम ढलाई में इससे सहायता मिलती है क्योंकि यह धमन छिद्रों को दूर करता है।

निम्नलिखित सूची में व्यापारिक कोटि के कुछ इस्पातों के रासायनिक विश्लेषण दिये गये हैं—

कुछ साधारण इस्पातों के विश्लेषण।

प्रकार	C%	Mn%	Si%	S%	P%
पिटवाँ लोहा :—					
१—स्वीडिश	०.०५	०.०५	०.०७	०.०१	०.०१
२—इंग्लिश	०.११	०.०७	०.२३	०.०४	०.२३
३—जंजीर	०.०५	०.०५	०.०५	०.०१	०.०१
मुलायम इस्पात (माइल्ड स्टील)					
४—रिपिट इस्पात	०.०५	०.३०	०.०७	०.०४	०.०४
५—इमारती इस्पात	०.२०	०.०८	०.१२	०.०५	०.०५
६—सुकाट्य इस्पात (free cutting steel)	०.१३	०.४५	०.०३	०.१२	०.१०
७—ब्वायलर प्लेट	०.२०	०.५५	०.०४	०.०५	०.०५

प्रकार	C%	Mn%	Si%	S%	P%
मध्यम कार्बन इस्पात (मीडियम कार्बन स्टील)					
८—रेल की पटरी	०.४५	०.८	०.०८	०.०६	०.०५
९—रेलवे स्प्रिंग	०.५०	०.८५	०.१०	०.०५	०.०५
उच्च कार्बन इस्पात (हाई कार्बन स्टील)					
रुखानी	०.७५	०.५०	०.०८	०.०५	०.०५
औजार, रेती	१.३०	०.३२	०.१५	०.०२	०.०२
अस्तुरा, छुरी	१.२	०.५०	०.१०	०.०३	०.०५
आरी (लकड़ी काटने के लिये)	०.८५	०.४०	०.१५	०.०२	०.०२
आरी (इस्पात काटने के लिये)	१.५५	०.४०	०.१४	०.०२	०.०२

इस्पात का यंत्रोपचार

अच्छे और निर्दोष इंगटों की ढलाई के बाद उन्हें विविध यांत्रिक उपचारों द्वारा आवश्यक आकार प्रदान किया जाता है। बहुधा ढलाई द्वारा विभिन्न आकार की वस्तुएँ बनाई जाती हैं परन्तु ढले पदार्थों में दृढ़ता और तान्तवता की कमी होती है। यन्त्रोपचार द्वारा अर्थात् पीटकर, बेलकर, दबाकर या यंत्र द्वारा दूसरे प्रकार से प्राप्त पदार्थ दृढ़ और तान्तव होते हैं।

यन्त्रोपचार के गुण

यन्त्रोपचार द्वारा धातु के कण पास-पास आ जाते हैं तथा रवे शुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार धातु की दृढ़ता और तान्तवता बढ़ जाती है और फलतः उसकी कोटि उत्तम हो जाती है। यंत्रोपचार इस्पात के क्रिटिकल तापमान (Critical temperature) के ऊपर या नीचे किया जाता है। प्रथम उदाहरण में उसे 'तप्त क्रिया' (Hot working) कहा जाता है तथा दूसरी को 'शीतल क्रिया' (Cold working) कहा जाता है। तप्त क्रिया का उद्देश्य रवों की बनावट (Crystal structure) को शुद्ध करना, धमन

छिद्रों को बन्द करना तथा धातु को चिमड़ा (Tough) बनाना है। यदि यांत्रिक क्रिया की समाप्ति का तापमान क्रिटिकल तापमान के अधिक ऊपर न हो तो रवे बड़े नहीं हो पाते। शीतल क्रिया कणों को बेडौल कर देती है, दृढ़ता बढाती है पर तान्तवता कम कर देती है। यदि एक सीमा के बाद शीतल क्रिया चालू रखी जाए तो उसमें भंजनशीलता आ जाती है।

तप्त क्रिया के लिये गरम करना

इस्पात का तापमान जितना ही ऊँचा होता है वह उतना ही नरम होता है तथा उसका आकार उतनी ही आसानी से बदला जा सकता है। यंत्रोपचार करने के पूर्व इंगट को समान रूप से १२००° सें० तक गरम किया जाता है। बहुधा ढलाई के बाद तप्त इंगट सीधे 'सोकिंग पिट'[१] में भेज दिये जाते हैं। इंगट का आन्तरिक भाग इस समय तक उच्चतर तापमान पर रहता है। इस प्रकार अन्दर से अधिक तप्त धातु तथा बाहर से फर्नेस समूचे इंगट को ताप प्रदान करती है और कुछ समय में संपूर्ण इंगट का तापमान भीतर से बाहर तक समान हो जाता है।

यंत्रोपचार के प्रकार

हथौड़े द्वारा—धातु को हथौड़े द्वारा गढ़ने की पद्धति बहुत प्राचीन है। इस पद्धति का उपयोग अब भी बहुत से कामों में होता है। जब इंगट को 'फोर्ज' करना होता है तब वाष्प घन (Steam hammer) का उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा कुछ हन्डरवेट से लेकर सौ टन तक की चोट दी जा सकती है।

जब तक पदार्थ की मोटाई पर्याप्त कम न कर दी जाय तब तक हथौड़े की पिटाई का प्रभाव सतह के पास तक सीमित रहता है। जिन वस्तुओं की आवश्यकता कम संख्या में होती है उन्हें इस पद्धति द्वारा गढ़ा जाता है।

ड्राप फोर्जिंग (Drop Forging)

इसमें तप्त धातु को इस्पात की दो कठोर डाइयों द्वारा चोट पहुँचाई जाती है। एक डाइ हथौड़े में और दूसरी निहाई के ऊपर फिट कर दी जाती है। धातु को निचली डाइ में रखा जाता है। सरल आकार के काम में एक जोड़ी डाइ से काम चल जाता है अन्यथा कई जोड़ी डाइयों की आवश्यकता पड़ती है।

जब एक ही आकार की बहुत सी वस्तुओं की आवश्यकता होती है तब ड्राप

१—सोकिंग पिट—एक प्रकार की फर्नेस जिसमें इंगट गर्म रखे जाते हैं।

फोर्जिंग सस्ती पड़ती है। अतः कई क्षेत्रों में उसने ढलाई की जगह ले ली है। ढले पदार्थ की अपेक्षा फोर्ज किये पदार्थ उत्तम होते हैं।

प्रेसिंग (Pressing)

प्रेसिंग का अर्थ है 'दाब' या दबाव।

जब तप्त या ठंडे इस्पात को यंत्र द्वारा क्रमशः दबाया जाता है तब इस्पात का प्रत्येक भाग अच्छी तरह दब जाता है। दबाव बहुधा जल द्वारा संचालित यंत्रों से दिया जाता है। इस पद्धति द्वारा बहुत बड़े आकार के पदार्थों पर काम

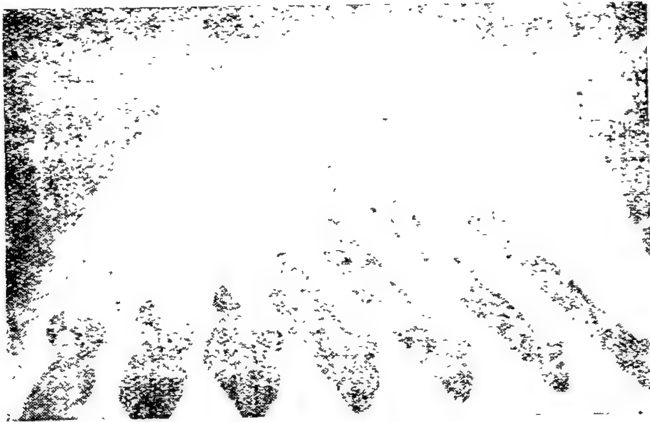


चित्र सं० ४९ प्रेस द्वारा बर्तन बनाने का यंत्र

किया जा सकता है। कभी कभी ५,००० से १०,००० टन या इससे भी अधिक दबाव वाले प्रेस काम में लाये जाते हैं। बहुत बड़े तोपों की नलियाँ प्रेसिंग द्वारा बनाई जाती है। चित्र संख्या ४६ में प्रेसिंग की पद्धति दिखाई गई है।

बिना जोड़ की नलियाँ प्रेसिंग द्वारा बनाई जा सकती हैं। धातु की चद्दर के गोल टुकड़े को प्रेस द्वारा दबाकर कटोरी बनाई जाती है। उसे पुनः दबाकर और गहरा तथा लंबा किया जाता है। इस प्रकार कई बार दबाकर अंत में लंबी नली प्राप्त की जाती है। उसका एक छोर बंद तथा दूसरा खुला रहता है।

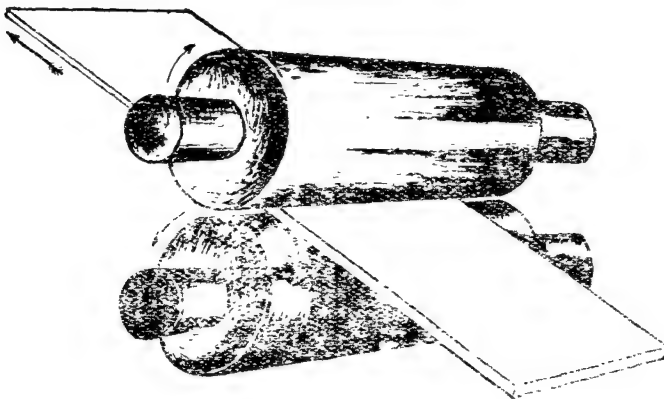
साइकिल में हवा भरने की पिचकारी (पंप) बहुधा इसी विधि से बनाई जाती है। चित्र सं० ५० के निरीक्षण से यह विधि स्पष्ट हो जाएगी।



चित्र सं० ५० नली बनाने की पद्धति। नली को क्रमशः विभिन्न आकार देकर अंतिम रूप प्राप्त किया जाता है।

रोलिंग (Rolling) रोलिंग का अर्थ है बेलाई।

रोलिंग या बेलाई द्वारा धातु को बड़ी शीघ्रता से वांछित आकार दिया जा सकता है। इसमें दो घूमते हुए बेलनों के बीच में धातु का ठंडा या गरम इंगट प्रविष्ट कराया जाता है।



चित्र सं० ५१ रोलिङ्ग का सिद्धांत

वेलनों के घुमाव की दिशा तीर द्वारा दिखाई गई है। बहुधा नीचेवाले वेलन को मोटर या एंजिन द्वारा घुमाया जाता है। ऊपर का वेलन गीयर (दाँतों) द्वारा नीचे के वेलन से संबंधित रहता है अतः उसकी गति नीचे के वेलन की गति के बराबर किंतु उससे विरुद्ध दिशा में होती है। इस घुमाव से इंगट पर दो तरह की शक्तियाँ काम करती हैं। एक तो लंबाई के रुख में जो इंगट को वेलनों के बीच से खींचता है तथा दूसरी दबाव डालकर इंगट की मोटाई कम करती है। इस प्रकार वेलाई द्वारा मोटा और छोटा इंगट पतला और लंबा हो जाता है। वेले हुए पदार्थ का आकार वेलन (रोल) में बने आकारों के अनुसार होता है।



चित्र सं० ५२ रोलिंग मिल का दृश्य

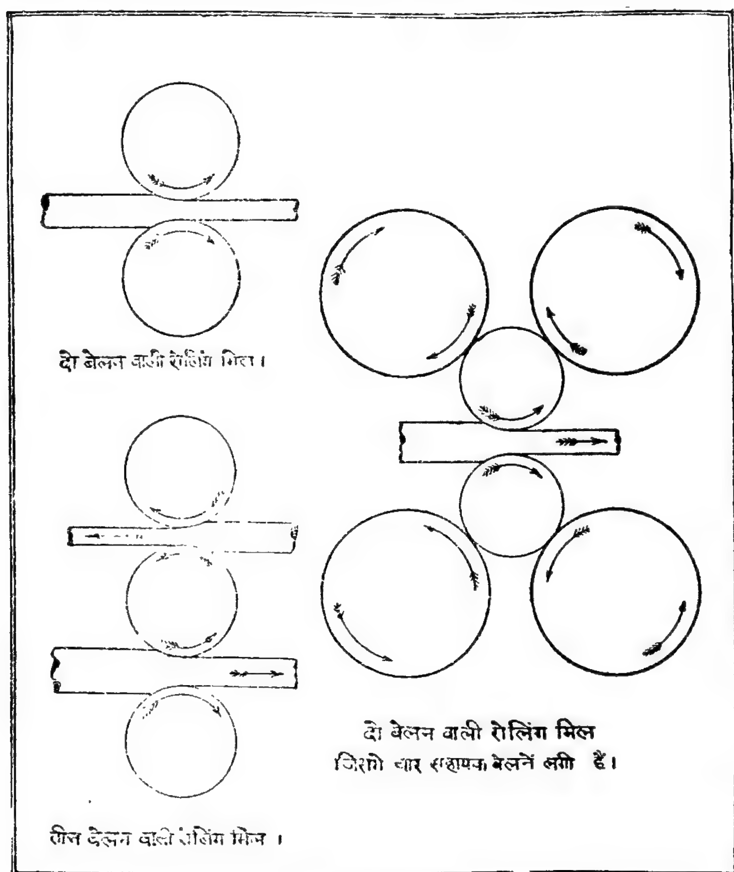
रोलिंग मिलों का नामकरण प्रत्येक सेट में मौजूद वेलनों की संख्या के अनुसार होता है। इस प्रकार दो वेलनोंवाली (Two high), तीन वेलनोंवाली (Three high), चार वेलनोंवाली (Four high) इत्यादि रोलिंग मिलें होती हैं।

दो वेलन वाली रोलिंग मिल

इसमें दो वेलन होते हैं। वेले जानेवाले पदार्थ या तो एक ही दिशा में वेले जाते हैं अथवा प्रत्यावर्त्तन (Reversing) व्यवस्था द्वारा पारी-पारी से विरुद्ध दिशाओं में वेले जा सकते हैं। इस व्यवस्था में वेलन को चलाने वाली मोटर की गति बन्द कर उसे विरुद्ध दिशा में चलाया जाता है। यह कार्य बड़ी शीघ्रता से (आधे या पाव मिनट में) सम्पन्न हो जाता है।

तीन बेलन वाली रोलिंग मिल

संसार भर में अधिकांश बेलाई इसी पद्धति से होती है क्योंकि इसकी गति तेज होती है और एक साथ दो पदार्थ (विरुद्ध दिशाओं में) बेले जा सकते



चित्र सं० ५३ रोलिंग मिल के विविध प्रकार

हैं। बेलनों के बीच का अन्तर बार-बार बदलना नहीं पड़ता। जब धातु निचले जोड़े में बेली जा चुकती है तब वह सँड़सी या स्वतः संचालित टेबुल द्वारा ऊपर उठा दी जाती है और बेलनों के ऊपरी जोड़े में प्रविष्ट करा दी जाती है। इस बार बेलाई पहिले से विरुद्ध दिशा में होती है। बेलनों की दूसरी ओर भी

ऐसा ही प्रबन्ध रहता है जिससे वेली हुई धातु नीचे उतारकर निचले जोड़े के छोटे खाने में प्रवेश करा दी जाती है। इस प्रकार क्रमशः लघुतर खानों में से होते हुए वेलाई का क्रम चलता रहता है।

कभी-कभी वेलनों को सहायता प्रदान करने के लिए सहायक वेलनों (Backing rolls) का भी उपयोग किया जाता है। इनके द्वारा वेलनों की लचक कम हो जाती है और उत्तमकोटि का माल तैयार होता है।

एक्स्ट्रूज़न (Extrusion)

तप्त (अतः मुलायम) धातु के टुकड़े के आगे डाइ रखकर पीछे से उसे यंत्र द्वारा ठेलकर डाइ के अनुरूप छड़ इत्यादि बनाने की विधि 'एक्स्ट्रूज़न' कहलाती है। चित्र सं० ५४ के निरीक्षण से यह विधि स्पष्ट हो जाएगी। इसके



चित्र सं० ५४ तप्त धातु को ठेलकर आकार प्रदान करने की प्रणाली

द्वारा विभिन्न आकार की छड़ें, नलियाँ तथा अन्य-अन्य आकार सरलतापूर्वक प्राप्त होते हैं। जिस यंत्र द्वारा ठेलने की क्रिया सम्पन्न की जाती है उससे हजारों टन का दबाव प्राप्त होता है।

———

अध्याय १५

लौह-कार्बन-संकर की बनावट

इस्पात की बनावट

इस्पात मिश्र (Complex) पदार्थ है जिसमें कई तत्व धातु-संकरों के मिश्रण के रूप में तथा लोहे के यौगिक के रूप में विद्यमान रहते हैं। साधारण कार्बन इस्पात में लोहा, कार्बन, मैंगेनीज़, सिलिकन, गन्धक तथा फास्फरस मिश्रित होते हैं। इनमें से कार्बन अत्यावश्यक है तथा मैंगेनीज़ और सिलिकन विशेष उद्देश्य से मिलाये जाते हैं। गन्धक तथा फास्फरस अवांछित अशुद्धियाँ हैं। सुविधार्थ इस्पात को लोहे और कार्बन का द्वयी धातुसंकर (Binary alloy) कहा जाता है।

शुद्ध लौह-कार्बन-मेल

गलित अवस्था में लौह-कार्बन-मेल में Fe_3C शुद्ध लोहे (या फेराइट) में घुला रहता है। जब वह ठंडा होकर ठोस अवस्था में परिवर्तित होता है तब मौजूद कार्बन की मात्रा के अनुसार वह 'घनविलय' या यूटेक्टिक (Eutectic) बनता है। यदि कार्बन की मात्रा १.७ प्रतिशत से अधिक न हो तो घनविलय बनता है। लोहे और Fe_3C के घनविलय का नाम 'आस्टेनाइट' (Austenite) है। प्रत्येक घनविलय जिसमें कार्बन की मात्रा लगभग शून्य से लेकर १.७ प्रतिशत तक हो, आस्टेनाइट ही कहलाता है। १.७ प्रतिशत कार्बन पर घनविलय संपृक्त (Saturated) हो जाता है। यदि लोहे में १.७ प्रतिशत से अधिक कार्बन हो तो ठोस होने पर 'यूटेक्टिक' बनता है जिसमें कार्बन की मात्रा ४.३ प्रतिशत होती है।

१.७ प्रतिशत कार्बन, लोहा और इस्पात के बीच की सीमा रेखा है। जिस लौह-कार्बन-मेल में कार्बन १.७ प्रतिशत से कम रहता है वह 'इस्पात' तथा जिसमें इससे अधिक रहता है वह कान्ती लोहा कहलाता है।

कान्ती लोहे की बनावट

परिभाषा के अनुसार कान्ती लोहे में कार्बन की मात्रा १.७ प्रतिशत से अधिक होती है। यदि उसमें कार्बन की मात्रा ४.३ प्रतिशत से अधिक न हो (साधारणत: इससे अधिक नहीं होती) तो जैसे-जैसे द्रव धातु का तापमान कम होता जाता है वैसे-वैसे १.७ प्रतिशत आस्टेनाइट के रवे अलग होते जाते हैं तथा शेष द्रव धातु में कार्बन की मात्रा क्रमशः बढ़ती जाती है और अन्त में ११३०° सें० तापमान पर क ख रेखा के ख बिन्दु पर ४.३ प्रतिशत कार्बन वाला यूटेक्टिक बनता है। दूसरे शब्दों में अन्त में बची हुई द्रव धातु में कार्बन की मात्रा ४.३ प्रतिशत होती है तथा वह ११३०° सें० पर ठोस रूप में परिवर्तित हो जाती है।

यदि द्रव धातु में कार्बन की मात्रा ४.३ प्रतिशत से अधिक हो तो वह बिना किसी परिवर्तन के ठंडी होती जाती है जब तक कि वह ग ख रेखा तक न आ जाए। इस रेखा के बाद ठंडा होने पर घोल में से Fe_3C का अवक्षेपन हो जाता है तथा शेष द्रव में कार्बन की मात्रा कम हो जाती है क्योंकि Fe_3C में कार्बन ६·६६ प्रतिशत होता है।

फलस्वरूप अन्त में ख बिंदु पर यूटेक्टिक बनता है जिसमें कार्बन की मात्रा ४·३ प्रतिशत होती है। जब यह यूटेक्टिक ठंडा होकर ठोस बनता है तब वह विबंधित (decompose) होकर सीमेंटाइट तथा आस्टेनाइट में परिवर्तित हो जाता है।

इस्पात की रचना

शुद्ध इस्पात में, जो उच्च तापमान से क्रमशः ठंडा होता है, तीन स्पष्ट घटक दिखाई पड़ते हैं। ये 'फेराइट' 'सीमेंटाइट', तथा 'पर्लाइट' हैं।[1] आपस में इनकी मात्रा कार्बन की मात्रा के अनुसार घटती बढ़ती रहती है।

लोहे के एलोट्रापिक रूप

फेराइट अर्थात् कार्बन रहित विशुद्ध लोहे के तीन रूप होते हैं—'आल्फा', 'बीटा' तथा 'गामा'।

---

१ देखिये अध्याय १६ 'इस्पात का तापोपचार'।

आल्फा रूप साधारण तापमान पर रहता है तथा अत्यंत चुंबकीय होता है। यदि उसे गरम किया जाय तो ७६८° सें० पर वह बीटा रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह अचुंबकीय होता है। इसके आपेक्षिक ताप तथा विद्युत् संचालन भी परिवर्तित हो जाते हैं। यदि बीटा लोहे को और अधिक गरम किया जाय तो ९०६° सें० पर वह गामा रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसके रवों की बनावट तथा विद्युत् संचालन बीटा से भिन्न होता है। यदि गामा लोहे को ठंडा किया जाय तो क्रमशः बीटा और आल्फा रूप प्राप्त होते हैं परंतु इस बार ये परिवर्तन पूर्वोक्त तापमानों से लगभग ३०° सें० कम तापमान पर होते हैं।

आस्टेनाइट में गामा लोहा

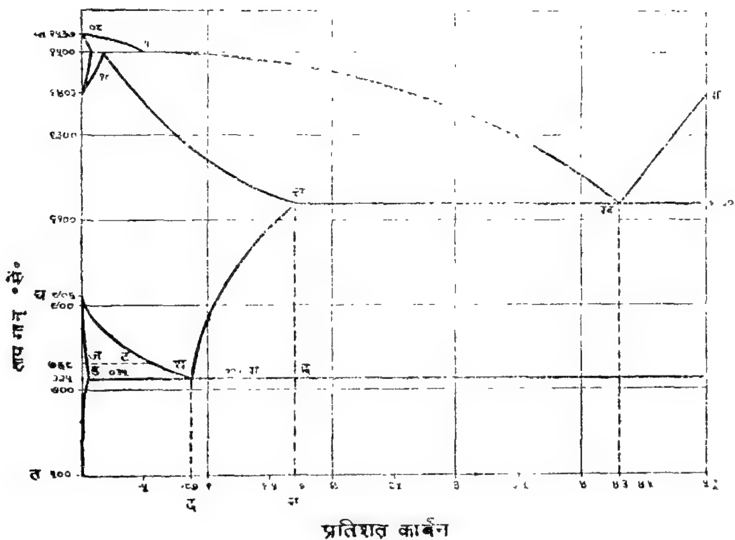
कार्बन इस्पात १४००°–१५००° सें० पर पिघलते हैं इसलिए द्रव इस्पात का फेराइट गामा रूप में रहता है। द्रव इस्पात में दो घटक-द्रव फेराइट तथा द्रव सीमेंटाइट आपस में घुले हुए रहते हैं। इस्पात में १.७ प्रतिशत से कम कार्बन रहता है तथा वह घनविलय के रूप में ठंडा होता है। जिस तापमान पर गलित इस्पात घनरूप प्राप्त करता है उस तापमान पर फेराइट गामा रूप में ही रहता है। गामा लोहे का परिवर्तन बिंदु (Trnasition point) १४०३° सें० है। यद्यपि आस्टेनाइट इस तापमान के नीचे तक ठंडा हो जाता है तथापि जब तक घनविलय खंडित नहीं हो जाता तब तक फेराइट गामा रूप में ही विद्यमान रहता है।

आस्टेनाइट का विबंधन

जब आस्टेनाइट का विबंधन होता है तब Fe_3C तथा फेराइट बनते हैं। जिस रीति से वह विबंधित होता है वह चित्र संख्या ५५ में दिखाया गया है। उसमें आस्टेनाइट घ ट थ च रेखा के ऊपर विद्यमान रहता है। आस्टेनाइट के विबंधित होने का तापमान उसके कार्बन की मात्रा पर निर्भर रहता है। उदाहरणार्थ यदि ०·३ प्रतिशत कार्बन वाला इस्पात १०००° सें० तापमान से ठंडा किया जाय तो उसमें तब तक कोई परिवर्तन नहीं होता जब तक कि वह लगभग ८५०° सें० पर घ ट रेखा तक नहीं आता। इस तापमान के नीचे फेराइट अलग होने लगता है जिससे शेष इस्पात में सीमेंटाइट की मात्रा बढ़ने लगती है। जब तक शेष इस्पात में कार्बन की मात्रा ०·८७ प्रतिशत तक नहीं पहुँच जाती तब तक फेराइट का अलग होना चालू रहता है। यह क्रिया बिंदु थ द्वारा

दिखाई गई है। इसी प्रकार ०'८७ प्रतिशत से कम कार्बन वाले इस्पात को यदि घ ट थ रेखा के ऊपर से क्रमशः ठंडा किया जाय तो फेराइट अलग हो जाता है।

दूसरी ओर यदि कोई इस्पात, जिसमें कार्बन की मात्रा ०'७ प्रतिशत से अधिक हो, च थ रेखा के ऊपर से ठंडा किया जाय तो Fe_3C अलग होने लगता है तथा शेष इस्पात में से कार्बन की मात्रा घटते घटते ०'८५ प्रतिशत



चित्र सं० ५५ लौह-कार्बन रेखा

तक आ जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ०'८७ प्रतिशत कार्बन युक्त घनविलय का तापमान न्यूनतम होता है। यह द्रव धातु के यूटेक्टिक से मिलता जुलता है इसलिए इसका नाम 'यूटेक्टाइड' (Eutectoid) रखा गया है। जिस इस्पात में ०'८७ प्रतिशत कार्बन रहता है उसे यूटेक्टाइड इस्पात कहा जाता है।

घनविलय घ ट थ रेखा के नीचे ठंडा होने पर फेराइट अलग कर देता है तथा च थ रेखा के नीचे ठंडा होने पर उसमें से सीमेंटाइट अलग हो जाता है। जब घनविलय कुछ और ठंडा होकर थ बिंदु पर पहुँचता है तब वह दोनों रेखाओं को काटता है इसलिए अब यूटेक्टाइड में जो फेराइट और सीमेंटाइट विद्यमान रहते हैं वे इस बिंदु पर अलग हो जाते हैं। वे दोनों घटक सूक्ष्म परतों के रूप में अलग होते हैं। एक की परत के बाद दूसरे की परत व्यवस्थित रूप में पंक्तिबद्ध हो जाती है। इसे पर्लाइट कहते हैं।

पूर्वोक्त चित्र में इस्पात के $Fe\text{-}Fe_3C$ शृंखला के सूक्ष्म घटक जो विविध प्रावस्थाओं (Phases) में पाये जाते हैं नीचे दिये गये हैं :—

प्रावस्था	स्थायी सूक्ष्म घटक
क घ ट घ च	आस्टेनाइट या घनविलय
घ ज ट	बीटा फेराइट + आस्टेनाइट
ज ड थ ट	आल्फाफेराइट + आस्टेनाइट
ड त द थ	आल्फा फेराइट + पर्लाइट
थ द न छ	मुक्त सीमेंटाइट + पर्लाइट
च थ छ	मुक्त सीमेंटाइट + आस्टेनाइट

जिस इस्पात में ०.८७ प्रतिशत से कम कार्बन रहता है वह 'हाइपोयूटेक्टाइड' (Hypo eutectoid) तथा जिसमें ०.८७ प्रतिशत से अधिक कार्बन रहता है वह 'हाइपर यूटेक्टाएड' (Hyper eutectoid) कहलाता है। मन्द गति से ठन्डा करने पर पहिले में फेराइट और पर्लाइट तथा दूसरे में पर्लाइट और सीमेन्टाइट पाये जाते हैं।

इस्पात के क्रिटिकल[1] विन्दु

इस्पात की बनावट में उपर्युक्त परिवर्तन जिन तापमानों पर होते हैं उन्हे क्रिटिकल विन्दु कहा जाता है क्योंकि इन विन्दुओं पर ठन्डा या गरम करते समय एकाएक ताप का उद्भव (Evolution) या शोषण (Absorption) होता है।

शुद्ध लोहे (फेराइट) में ये क्रिटिकल बिन्दु ७६८° सें० तथा ९०६° सें० पर होते हैं। यूटेक्टाइड इस्पात में केवल एक ही क्रिटिकल विन्दु ७००° सें० पर होता है।

१ क्रिटिकल विन्दु—इसे 'अग्नि विन्दु' कहा जा सकता है। —डा० रघुवीर

क्रिटिकल विंदु के संकेत चिन्ह

इसके लिए रोमन लिपि का प्रथम अक्षर A चुना गया है। गरम करते समय Ac (Ac_1, Ac_2, Ac_3) तथा ठंडा करते समय Ar (Ar_1, Ar_2, Ar_3) का उपयोग किया जाता है।

चिन्ह	वर्णन
Ac_1	न्यूनतम क्रिटिकल तापमान—गरम करते समय
Ar_1	,, ,, ,, ठंडा करते समय
Ac_3	अधिकतम ,, ,, गरम करते समय
Ar_3	,, ,, ,, ठंडा करते समय
Ac_2	मध्यम ,, ,, गरम करते समय
Ar_2	,, ,, ,, ठंडा करते समय
Ac_{3-2}	ऊपर का ,, ,, जो ०·३५ से ०·८५ प्रतिशत कार्बन वाले इस्पात को गरम करते समय मिलता है।
Ar_{3-2}	ऊपर का क्रिटिकल तापमान—जो ०·३५ प्रतिशत से ०·८५ प्रतिशत कार्बन वाले इस्पात को ठंडा करते समय मिलता है।
Ac_{3-2-1}	वह तापमान जिस पर तीनों बिंदु गरम करते समय विलीन होकर एक हो जाते हैं अर्थात् ये यूटेक्टाइड इस्पात का 'रिकेलिसेंस बिंदु' (Recalescence point.)
Ar_{3-2-1}	उपर्युक्त—ठंडा करते समय
Ac_{cm}	हाइपर यूटेक्टाइड इस्पात में गरम करते समय ऊपर का क्रिटिकल तापमान।
Ar_{cm}	हाइपर यूटेक्टाइड इस्पात में ठंडा करते समय ऊपर का क्रिटिकल तापमान।

इस्पात की रवेदार (मणिभीय) बनावट

इस्पात के भौतिक गुणों पर उसकी रवेदार बनावट का बहुत प्रभाव पड़ता है। बड़े रवे इस्पात को कमजोर एवं भंजनशील तथा छोटे रवे उसे दृढ़ और तान्तव बनाते हैं। पहिले कहा जा चुका है कि इस्पात के रवे क्रिटिकल तापमान के ऊपर यंत्रोपचार द्वारा परिष्कृत किये जा सकते हैं। उपर्युक्त तापोपचार द्वारा भी रवों का परिष्कार हो सकता है।

गरम करके रवों को परिष्कृत करना

जब इस्पात गरम होकर विविध क्रिटिकल तापमानों* को पार करता है तब उसके रवों की बनावट में परिवर्तन होता है जिससे रवे परिष्कृत हो जाते हैं। यदि साधारण इस्पात को धीरे-धीरे गरम किया जाय तो उसमें तब तक कोई परिवर्तन नहीं होता जब तक कि तापमान Ac_1 तक नहीं पहुँच जाता। इस तापमान पर पर्लाइट के दाने (grains) जिनमें Fe तथा Fe_3C की एकांतर परतें रहती हैं, आस्टेनाइट में परिवर्तित हो जाते हैं। यह क्रिया Fe में Fe_3C के घोल द्वारा संपन्न होती है। इस तापमान पर रवों का अधिकतम परिष्कार होता है (अर्थात् वे अत्यंत छोटे हो जाते हैं) क्योंकि फेराइट आल्फा से गामा रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार यूटेक्टाइड इस्पात में जब रवे Ac_{3-2-1} विंदु पार करते हैं तब उनका पूर्ण और अधिकतम परिष्कार होता है। परंतु हाइपोयूटेक्टाइड या हाइपरयूटेक्टाइड इस्पात का Ac_1 पार करने पर पूरा परिष्कार नहीं होता क्योंकि अतिरिक्त फेराइट या सीमेंटाइट अपरिवर्तित रहता है। जब इस्पात के सभी घटक पूर्णतः घनविलय में चले जाते हैं—अर्थात् आस्टेनाइट बनता है तभी उसका पूर्ण पारिष्कार होता है। ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए इस्पात को ऊपरी क्रिटिकल विंदु से कुछ अधिक गरम करना चाहिये। जब इस्पात का तापमान ऊपरी क्रिटिकल विंदु से अधिक ऊँचा किया जाता है, तब आस्टेनाइट के रवे मोटे हो जाते हैं। रवों की मोटाई तापमान की वृद्धि के साथ अथवा एक ही तापमान पर अधिक देर तक रहने से बढ़ जाती है। इस प्रकार के मोटे रवों वाला आस्टेनाइट ठंडा होने पर मोटे रवों वाले पर्लाइट में परिवर्तित हो जाता है। अतः उसमें वह दृढ़ता और तांतवता नहीं रहती जो छोटे रवों में होती है।

---

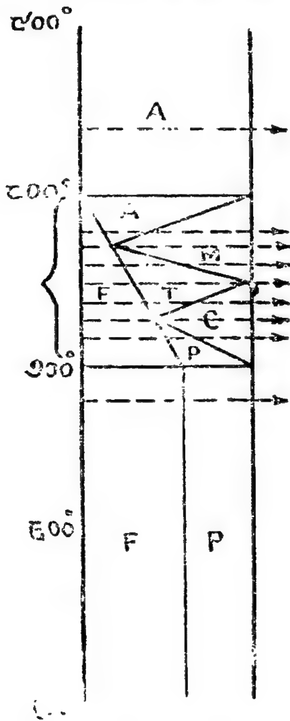
* डा० रघुवीर ने Critical Point के लिये 'अश्रि विंदु' तथा Critical Temperature के लिये 'काष्ठा तापमान' शब्द सुझाए हैं।

अध्याय १६

इस्पात का तापोपचार

तापोपचार द्वारा इस्पात के भौतिक तथा यांत्रिक गुणों में वांछित परिवर्तन किये जा सकते हैं। इस कारण उद्योग धन्धों में इस्पात का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण हो गया है। तापोपचार का उपयोग अन्य धातुओं की अपेक्षा इस्पात में अत्यधिक हो रहा है।

जब इस्पात क्रमशः उच्च तापमान से ठंडा किया जाता है तब साधारणतः



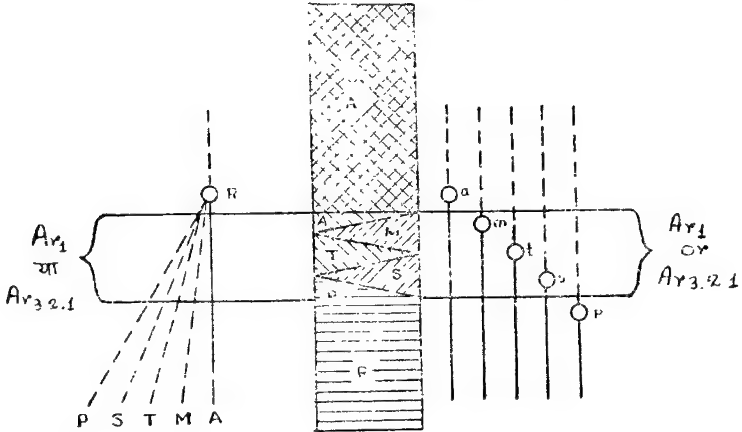
चित्र सं० ५६

०.३ प्रतिशत कार्बन इस्पात को उसके क्रिटिकल सीमा से धीरे-धीरे ठंडा करने पर उसकी रचना में जो रूपांतर होता है उसकी क्रिया-विधि इस चित्र में दिखाई गई है। ८००° सें० तापमान के ऊपर सबका सब आस्टेनाइट रहता है। ८००° सें० के नीचे उस (०·३ प्र. श. कार्बन वाले) इस्पात में अंशतः फेराइट (F) अधिकतर आस्टेनाइट (A) तथा अंशतः मार्टेन्साइट (M) रहता है। और ठंडा होने पर फेराइट, मार्टेन्साइट; तत्पश्चात् फेराइट, ट्रूस्टाइट (T) तथा मार्टेन्साइट; फिर फेराइट, ट्रूस्टाइट और सार्वाइट (S) रहता है। इन विविध रूपान्तरों को पार करते हुए अंततः फेराइट और पर्लाइट (P) प्राप्त होता है। खंडित समानांतर रेखाओं की सहायता से चित्र का अध्ययन कीजिये।

आस्टेनाइट पर्लाइट में परिवर्तित हो जाता है। यदि यह साधारण नियम शाश्वत होता और इसमें परिवर्तन या परिवर्धन की संभावना न होती तो हमलोग

तापोपचार द्वारा प्राप्त इस्पात के अनमोल गुणों का लाभ न उठा पाते। आस्टेनाइट का पर्लाइट में रूपांतर एकाएक नहीं होता। वह कई श्रेणियों में होता है।

पर्लाइट में रूपांतरित होने के पूर्व आस्टेनाइट क्रम से मार्टेन्साइट, ट्रूस्टाइट तथा सार्बाइट में परिवर्तित होता है और अंत में सार्बाइट पार्लाइट में परिवर्तित



A = आस्टेनाइट, M = मार्टेन्साइट, T = ट्रूस्टाइट, S = सार्बाइट P=पर्लाइट।

चित्र सं० ५७ आस्टेनाइट-पर्लाइट रूपांतर

यूटेक्टाइड इस्पात (०·८७ प्रति शत कार्बन) अपने क्रिटिकल तापमान के ऊपर पूर्णतः आस्टेनाइट रूप में रहता है। ठंडा होने पर वह सीधे पर्लाइट में रूपांतरित नहीं होता अपितु कई रूपांतरों में से गुजरता हुआ अंततः क्रिटिकल तापमान के नीचे, पर्लाइट में रूपांतरित होता है। चित्र के अध्ययन से ज्ञात होगा कि रूपांतर क्रम इस प्रकार होता है :—आस्टेनाइट→आस्टेनाइट + मार्टेन्साइट→मार्टेन्साइट → मार्टेन्साइट + ट्रूटाम्इट→ट्रूस्टाइट→ट्रूस्टाइट + सार्बाइट→सार्बाइट→ सार्बाइट + पर्लाइट→पर्लाइट।

होता है। ये सब परिवर्तन क्रिटिकल सीमा के अंतर्गत होते हैं। इस सीमा (Range) में इस्पात के ठंडा होने की गति का नियंत्रण कर आस्टेनाइट को पर्लाइट में रूपांतरित होने से पूर्णतः या अंशतः रोका जा सकता है और रूपांतर शृंखला के किसी भी घटक को स्थायी रूप दिया जा सकता है। इन घटकों के गुण अलग-अलग होते हैं तथा इनकी उपस्थिति और मात्रा पर इस्पात के गुण निर्भर रहते हैं।

मार्टेन्साइट (Martensite)

यह इस्पात के घटकों में सबसे कठोर, दृढ़ तथा सबसे कम तांतव होता है। यह आस्टेनाइट-पर्लाइट रूपांतर शृंखला की पहिली कड़ी है और इसको प्राप्त करने के लिये गरम इस्पात क्रिटिकल बिंदु से अत्यंत शीघ्रतापूर्वक (जैसे ठंडे



चित्र सं० ५८ मार्टेंसाइट की सूक्ष्म रचना

पानी में डुबाकर) ठंडा किया जाता है। इसकी सूक्ष्म बनावट चित्र संख्या ५८ में दी है। इसमें समकोण त्रिभुज की भुजाओं के समानांतर लंबी और पतली रेखाएँ एक दूसरे को बहुधा काटती हुई दिखाई देती हैं।



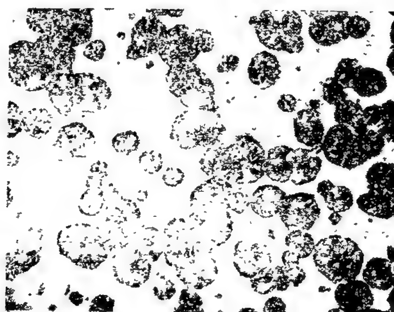
चित्र संख्या ५९ पर्लाइट की सूक्ष्म रचना

फेराइट को छोड़कर पर्लाइट इस्पात का सबसे कोमल, निर्बल और सर्वाधिक

तांतव घटक है। पर्लाइट रूपांतर श्रृंखला की अंतिम और स्थायी कड़ी है तथा क्रिटिकल सीमा में आस्टेनाइट को बहुत धीरे-धीरे (जैसे फर्नेस में ही) ठंडा करने से प्राप्त होता है। इसकी सूक्ष्म बनावट में फेराइट और सीमेंटाइट की एक के बाद एक लहराती हुई परत दिखाई देती है।

ट्रूस्टाइट (Troostite)

ट्रूस्टाइट भौतिक गुणों की दृष्टि से मार्टेंसाइट और सार्बाइट का मध्यवर्ती होता है। कार्बन की समान मात्रा रहते हुए भी ट्रूस्टाइट मार्टेंसाइट की अपेक्षा कोमल तथा तांतव होता है। यदि आस्टेनाइट को शीघ्रता



चित्र सं० ६० ट्रूस्टाइट की सूक्ष्म रचना

से (जैसे तेल में डुबाकर) ठंडा किया जाय तो ट्रूस्टाइट बनता है। इसकी सूक्ष्म बनावट में काली तथा रेशेदार गोल बिंदिया दिखाई देती है। देखिये चित्र संख्या ६०।

सार्बाइट (Sorbite)

सार्बाइट के भौतिक गुण पर्लाइट और ट्रूस्टाइट के बीच में होते हैं। इसकी बनावट में ट्रूस्टाइट और पर्लाइट के असंपुटित मिश्रण (Uncoagulated mixture)दिखाई देते हैं। आस्टेनाइट को क्रिटिकल सीमा से धीमी गति से (फर्नेस के बाहर, वायु में) ठंडा करने पर यह प्राप्त होता है। यदि ठंडा करने की गति बहुत मंद हो तो पर्लाइट बनता है। स्मरण रहे कि इन घटकों का निर्माण बहुतांश में पदार्थ की मोटाई पर निर्भर रहता है। सूक्ष्म दर्शक यंत्र से देखने पर ऐसा मालूम होता है कि फेराइट और सीमेंटाइट मिलकर परतदार पर्लाइट बनाने की तैयारी में हैं।

एनीलिंग

धातु को निश्चित क्रिटिकल तापमान पर पर्याप्त समय तक गरम करके धीरे-धीरे ठंडा करने की क्रिया एनीलिंग कहलाती है।

एनीलिंग तीन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये की जाती है :—

(१) कोमलता (२) तांतवता तथा (३) विकार (strains) का निराकरण।

इसके लिए निम्नलिखित क्रियाएँ की जाती हैं :—

(१) क्रिटिकल सीमा के कुछ ऊपर इस्पात को गरम किया जाता है। (२) उस तापमान पर धातु को पर्याप्त समय तक रखा जाता है जिससे उसके प्रत्येक भाग में ताप का समान वितरण हो सके तथा (३) गरम धातु को एनीलिंग तापमान से धीरे-धीरे ठंडा किया जाता है जिससे आस्टेनाइट-पर्लाइट रूपांतर पूर्ण हो जाए।

'हाइपो यूटेक्टाइड' इस्पात की एनीलिंग

यह इस्पात घ ट थ रेखा से ४०° या ५०° सें० अधिक गरम किया जाता है जिससे इस्पात आस्टेनाइट के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा रवों का अधिकतम परिष्कार हो सकता है। कठोरीकरण या एनीलिंग के पूर्व यह परिष्कार हो जाना आवश्यक है। अब यदि इस्पात को मंद गति से ठंडा किया जाय तो समस्त मुक्त फेराइट अलग हो जाता है और संपूर्ण आस्टेनाइट पर्लाइट में परिवर्तित हो जाता है। फलतः इस्पात अपने कोमलतम रूप में आ जाता है। यदि ठंडा करने की गति कुछ बढ़ा दी जाए तो सार्बाइट बन सकता है।

'हाइपर यूटेक्टाइड' इस्पात की एनीलिंग

इस इस्पात में पर्लाइट की मात्रा साधारणतः ९० प्रतिशत से अधिक होत है। $Ac_{३-२-१}$ बिंदु पर गरम करने से यह पर्लाइट आस्टेनाइट में परिवर्तित हो जाता है। यदि इस्पात को उसके Ac_{cm} विंदु तक गरम किया जाए तो आस्टेनाइट के रवे बहुत स्थूल हो जाते हैं जिससे इस्पात भंजनशील हो जाता है। अतः इस इस्पात को उसी तापमान पर गरम करना चाहिये जिस पर यूटेक्टाइड इस्पात गरम किया जाता है (अर्थात् $Ac_{३-२-१}$ के कुछ ही ऊपर)।

नार्मलाइज़िंग (Normalizing)

इसमें तप्त इस्पात को उसकी क्रिटिकल सीमा के कुछ ऊपर से वायु में धीमी गति से ठंडा किया जाता है। नार्मलाइज़िंग कणों को परिष्कृत करने तथा यंत्रोपचार के कारण विकृत हुए रवों को स्वाभाविक रूप में लाकर पदार्थ को भीतर बाहर एक रूप करने के लिए की जाती है।

इस्पातों का कठोरीकरण (Hardening of Steels)

इस्पात को कठोर बनाने के लिए उसे उसी तापमान तथा उतने ही समय तक गरम किया जाता है जितना कि नार्मलाइज़िंग में। यदि उससे ऊँचे तापमान पर इस्पात गरम किया जाए तो रवे कड़े हो जाते हैं और पानी में बुझाने (Quench करने) पर इस्पात के चटखने (cracking) का डर रहता है। क्रिटिकल सीमा के तापमान से इस्पात जितनी शीघ्रता से ठंडा किया जाता है आस्टेनाइट पर्लाइट रूपांतर उतना ही कम होता है तथा कठोरतर घटक (जैसे मार्टेन्साइट) उतनी ही अधिक मात्रा में बनते हैं। फलतः इस्पात ठंडा होने पर उतना ही कठोर होता है।

हाइपो यूटेक्टाइड इस्पात

हाइपो यूटेक्टाइड इस्पात में कार्बन की मात्रा बहुत कम होती है। उसे एकाएक बुझाकर पर्याप्त कठोर नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें फेराइट की मात्रा बहुत अधिक होती है और सबका सब फेराइट ठंडा करने की गति अतिशीघ्र करके भी घोल में नहीं रोका जा सकता। इस्पात के कठोर होने की क्षमता कार्बन की मात्रा के साथ बढ़ती जाती है।

टेंपरिंग (Tempering)[1]

टेंपरिंग को साधारण बोलचाल की भाषा में टेंपर या 'पानी' कहा जाता है।

ऊपर वर्णित कठोरीकरण क्रियाएँ इस्पात पर निम्नलिखित प्रभाव डालती हैं :—

---

१. 'टेंपर' शब्द के लिए अश्वघोष के सौंदरनंद काव्य में 'परिप्रोक्षण' शब्द व्यवहृत हुआ है—डा० रघुवीर।

(१) रवे बहुत छोटे हो जाते हैं। (२) कठोरता अत्यधिक हो जाती है। (३) तांतवता बहुत कम तथा भंजनशीलता बहुत अधिक हो जाती है। (४) इस्पात के अंदर अत्यधिक विकार (Strains) पैदा हो जाते हैं। इस्पात का उपयोग इस रूप में नहीं हो सकता। विकार को कम करने, भंजनशीलता घटाने, तांतवता बढ़ाने तथा साथ ही पर्याप्त कठोरता और दृढ़ता कायम रखने के लिये 'टेंपरिंग' की जाती है। टेंपरिंग क्रिया में इस्पात को गरम किया जाता है। गरम करने का तापमान आवश्यकतानुसार सामान्य तापमान से लेकर ४००° सें० तक होता है। यदि अत्यधिक कठोरता अभीष्ट हो तो टेंपरिंग का तापमान २५०° सें० से अधिक नहीं होने दिया जाता। टेंपरिंग के बाद सूक्ष्म रचना में अधिकांश भाग मार्टेंसाइट होता है। यदि कठोरता का कुछ त्याग करके थोड़ी तांतवता प्राप्त करना अभीष्ट हो तो टेंपरिंग ३००° सें० पर की जाती है। इसमें ट्रूस्टाइट या अंशतः मार्टेंसाइट और अंशतः ट्रूस्टाइट प्राप्त होता है। यदि और अधिक तांतवता प्राप्त करनी हो तो टेंपरिंग का तापमान क्रमशः बढ़ाया जाता है। ४००° सें० के ऊपर सार्बाइट बनने लगता है तथा ६००° सें० के ऊपर संपूर्ण बनावट सार्बाइट की हो जाती है।

इस्पात की टेंपरिंग का स्पष्टीकरण

कठोर किया गया इस्पात अस्थायी स्थिति में रहता है और वह अपेक्षाकृत स्थायी रूप में लौटना चाहता है। साधारण तापमान पर मार्टेंसाइट का ट्रूस्टाइट या सार्बाइट में रूपांतर नहीं हो सकता क्योंकि उस तापमान पर धातु की दृढ़ता (Rigidity) रुकावट डालती है। यदि इस्पात को २००° से ३००° सें० तक गरम कर दिया जाय तो उसकी यह दृढ़ता कम हो जाती है। कणों में कोमलता आ जाती है तथा रूपांतर सरल हो जाता है। तापमान बढ़ाने पर यह दृढ़ता और भी कम हो जाती है।

टेंपरिंग के रंग

कठोर किये गये इस्पात को टेंपरिंग के लिए बहुधा आक्सीकर वातावरण में गरम किया जाता है जिससे इस्पात के ऊपर आक्साइड की पतली परत पड़ जाती है। इस परत का रंग तापमान के अनुसार परिवर्तित होता है। लोहार अपने औजार की टेंपरिंग (पानी) करते समय इन रंगों का सहारा लेता है क्योंकि उससे तापमान का स्थूल ज्ञान हो जाता है।

निम्नलिखित सूची में टेंपरिंग के रंग तथा तत्संबंधी तापमान दिये गये हैं :—

रंग	तापमान ° सें०	रंग	तापमान ° सें०
गाढ़ा पीला	२२०	बैंगनी	२७७
हल्का पीला	२३०	चटकीला नीला	२८८
सुनहला पीला	२४३	पीत नीला	२९७
कत्थई	२५५	गहरा नीला	३१६
बैंगनी कत्थई	२६५		

जिन तापमानों पर विविध वस्तुएँ टेंपर की जाती हैं वे ये हैं :—

वस्तुएँ	तापमान ° सें०	वस्तुएँ
पीतल की छिलाई के औजार	२२५ से २३५	इस्पात पर पच्चीकारी करने के औजार
हल्की खराद के औजार		हथौड़े की सतह
इस्पात के लिए रंदे	२२५ से	बर्मा
हाथी दाँत काटने के औजार	२३५	मिलिंग करने के कटर
तार खींचने की जंती (प्लेट)	२३६ से	खदान में छेद करने के कटर
पत्थर छेदने की बर्मी		स्क्रू (पेंच) काटने की डाइयाँ
चाकू तथा चद्दर काटने के ब्लेड	२५०	पंच और डाइ

वस्तुएँ	तापमान ° सें०	वस्तुएँ
ट्विस्ट बर्मा	२५१ से	चौड़ी बर्मा
कप टूल	२७५	किनारे काटने के कटर
दाँत बनाने तथा चीर-फाड़ के औजार	२७६ से	लकड़ी की रुखानी
हैक्सा (आरी)		लकड़ी की आरी
हड्डी तथा हाथी दाँत की आरियाँ		पेंचकस
सुई	३००	स्प्रिंग

इस्पात की केस हार्डनिंग[1] (Case Hardening of Steel)

पहिले लिखा जा चुका है कि यदि पिटवाँ लोहे या इस्पात की छड़ कार्बन के संपर्क में ऊपरी क्रिटिकल सीमा पर इस प्रकार गरम की जाए कि बाहर की वायु उसके संपर्क में न आ सके तो छड़ कार्बन को सोख लेगी और सीमेंटेशन इस्पात में परिवर्तित हो जाएगी। उसकी कठोरता पहिले से अधिक हो जाएगी। कार्बन के शोषण की मात्रा निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहती है :—

(१) समय (२) तापमान (३) कार्बन युक्त पदार्थ की किस्म तथा (४) छड़ की प्रारंभिक बनावट।

जिस सीमेंटेशन में कार्बन का प्रवेश केवल कुछ ही दूर तक हुआ हो, उसका उपयोग कड़े और-घर्षण से खराब न होने वाले वाह्य सतह तथा तांतव और मजबूत आंतरिक भागवाले पदार्थ (यथा गीयर, बाल बेयरिंग, आर्मर प्लेट इत्यादि) के निर्माण में किया जाता है। इस क्रिया का नाम 'केस हार्डेनिंग' है।

---

१. केस हार्डनिंग—इसके लिए 'वाह्य दृंहण' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। डा० रघुबीर।

यह क्रिया इस प्रकार संपन्न की जाती है :—पहिले न्यून कार्बन इस्पात (०.१ से ०.१५ प्रतिशत कार्बन) से वस्तु का निर्माण किया जाता है। फिर मशीनिग इत्यादि की जाती है तथा जब वस्तु बिलकुल तैयार हो जाती है तब लोहे के डब्बे में चने बराबर लकड़ी के कोयले के टुकड़े भरकर बीच में उसे धँसा दिया जाता है। लकड़ी के कोयले के साथ उपयुक्त कार्बनमय पदार्थ (बेरियम कार्बोनेट, हड्डी का चूर्ण, पोटेशियम फेरोसाइनाइड इत्यादि) अच्छी तरह मिला दिये जाते हैं। इस मिश्रण में बहुधा ६० प्रतिशत लकड़ी का कोयला तथा ४० प्रतिशत बेरियम कार्बोनेट रखा जाता है। इससे बहुत संतोषप्रद फल मिलता है। बाद में डब्बे को बंद कर उसके जोड़ को अग्निप्रतिरोधक मिट्टी से लस दिया जाता है जिससे अंदर वायु न जा सके। डब्बे को फर्नेस में रखकर उसका तापमान क्रमशः ९४०° सें० तक बढ़ाया जाता है। इस तापमान पर कार्बन इस्पात में प्रवेश कर उसके सब तरफ पतला आच्छादन बना लेता है अर्थात् वस्तु के बाहरी भाग में कार्बन की मात्रा अधिक हो जाती है। इसके बाद वस्तु को डब्बे से अलग कर पानी में बुझा दिया जाता है जिससे उसका बाहरी भाग बहुत कड़ा हो जाता है परंतु अल्प कार्बनवाला अंदर का भाग कोमल तथा तांतव बना रहता है।

त्वरित किंतु बिल्कुल बाहरी कठोरता के लिए वस्तु को पिघले पोटेशियम सायनाइड (तापमान ८५०° सें०) में कुछ समय के लिये डुबाया जाता है। फिर उसको निकालकर पानी या खनिज तेल में बुझाया जाता है। यह क्रिया 'सायनाइडिंग' कहलाती है।

गैसों द्वारा भी कठोरता प्रदान की जाती है। इसके लिये कोयला या तेल की (जिसमें कार्बन मोनाक्साइड तथा हाइड्रो कार्बन अधिक हों) गैस उपयुक्त बर्नर में जलाकर उसकी ज्वाला से वस्तु को कठोर किया जाता है।

'नाइट्राइडिंग' (Nitriding) द्वारा भी कठोरता प्रदान की जाती है। इसमें अमोनिया गैस के वातावरण में वस्तु को करीब ५००° सें० पर गरम किया जाता है। अमोनिया (NH_3) में वर्तमान नाइट्रोजन तथा इस्पात की रासायनिक क्रिया से वस्तु की बाहरी सतह पर लोहे का नाइट्राइड बनता है। यह कार्बन द्वारा केस हार्डनिंग किये पदार्थ से अधिक कठोर होता है। सायनाइडिंग की तरह इसमें भी कठोर सतह की मोटाई बहुत कम होती है।

अध्याय १७

इस्पात के धातु संकर

इस्पात के बहुतेरे धातुसंकर हैं। इस्पात में कार्बनके अतिरिक्त अन्य कई तत्व मिलाये जाते हैं। ये तत्व इस्पात को विशिष्ट गुणों से समन्वित करते हैं। साथ ही कार्बन भी अपनी मात्रा के अनुसार इस्पात के भौतिक तथा यान्त्रिक गुणों को प्रभावित करता है।

इस्पात के धातुसंकर में नाना-भाँति के भौतिक तथा यान्त्रिक गुण होते हैं। साधारण कार्बन इस्पातों में जैसे-जैसे कठोरता और दृढ़ता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उसकी तांतवता तथा चिमड़ापन कम होता जाता है परन्तु 'आस्टेनिटिक क्रोम-निकल' इस्पात या 'हैडफील्ड' मैंगेनीज़ इस्पात जैसे धातुसंकर में दृढ़ता, कठोरता तथा तांतवता का सुन्दर समन्वय रहता है। उनकी तनाव की दृढ़ता ७० टन प्रति वर्ग इंच तक तथा लम्ब प्रसार (Elongation) ७० प्रतिशत तक रहता है। ये गुण साधारण कार्बन इस्पात के लिये बिल्कुल असंभव हैं।

बेसिमर और सीमेन्स के आविष्कारों ने लौह युग समाप्त कर इस्पात युग का आरम्भ किया। अब इस्पात के विशिष्ट धातुसंकरों का युग है। लोहे के बिना हमारी सभ्यता अपने अन्धकारमय युगों को वापस लौट जा सकती है। परन्तु इस्पात के धातुसंकर के बिना वह आज के मानदंड के अनुसार कई शताब्दी पीछे चली जा सकती है। लोहा या साधारण कोटि के इस्पात तोपकी नली या बम के आच्छादन बनाने योग्य कठोर तथा चिमड़े निकल-क्रोम इस्पात का मुकाबला नहीं कर सकते। टंग्स्टन और मालिब्डिनम से बना हाईस्पीड इस्पात (हवाई इस्पात) जो उच्च तापमान पर भी अपनी सान और कठोरता कायम रखता है, मैंगेनीज़ इस्पात जो घिसता नहीं, विद्युत् उद्योग में प्रयुक्त सिलिकन इस्पात, अचुम्बकीय मैंगेनीज़ या क्रोम-निकल इस्पात, मोर्चा न खाने वाला (स्टेनलेस) इस्पात, तथा ऐसे बहुसंख्यक इस्पात के धातुसंकर साधारण इस्पात के सीमित गुणों से बहुत आगे बढ़ गये हैं। इनके उपयोग से रेलवे, जहाजरानी, वायुयान तथा अन्य यंत्रों के विकास में बड़ी सहायता मिली है। धातुसंकर के तत्वों में निकल, क्रोमियम, व्हेनेडियम, मैंगेनीज़, टंग्स्टन तथा मालिब्डिनम प्रधान हैं। कार्बन का स्थान इन सब से निराला है।

धातुसंकर के तत्वों का तापोपचार पर प्रभाव

इन तत्वों के प्रभाव से क्रिटिकल सीमा (Critical Range) का स्थान नीचे या ऊपर सरकता है। क्रोमियम, टंग्स्टन, मालिब्डिनम, तथा सिलिकन उसे ऊपर की ओर हटा देते हैं जिससे इन तत्वों से युक्त इस्पात को आस्टेनिटिक रूप में पाने के लिए (तापोपचार के पूर्व आस्टेनाइट बनाना आवश्यक है) साधारण कार्बन इस्पात से अधिक तापमान पर गरम करना पड़ता है।

निकल तथा मैंगेनीज़ क्रिटिकल तापमान को नीचे की ओर हटा देते हैं, विशेषतः ठंडा करते समय। परिणामस्वरूप जिस इस्पात में इन तत्वों का बाहुल्य रहता है उसका Ar_2 बिन्दु सामान्य तापमान से भी नीचे पहुँच जाता है। अतः ये इस्पात साधारण तापमान पर भी आस्टेनाइट के रूप में रहते हैं।

साधारण कार्बन इस्पात में आस्टेनाइट-पर्लाइट रूपान्तर अत्यन्त शीघ्रता से होता है। बीच के रूप (मार्टेंसाइट आदि) पाने के लिए ठंडे पानी में बुझाने जैसी तीव्र (drastic) क्रिया का सहारा लेना पड़ता है। दूसरी ओर टंग्स्टन, क्रोमियम, मालिब्डिनम, व्हेनेडियम, आदि तत्वों के द्वारा यह रूपान्तर शिथिल हो जाता है। फलतः इस्पात का धातुसंकर 'वायु में ठण्डा कर मर्टेंसाइट या ट्रूस्टाइट के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार के इस्पात को स्वतः कठोर होने वाला या वायु द्वारा कठोर होने वाला इस्पात कहा जाता है।

यूटेक्टाइड बिन्दु

ये तत्व बहुधा यूटेक्टाइड के लिए आवश्यक कार्बन की मात्रा (०.८५ प्र० श०) को घटा देते हैं। उदाहरणार्थ, १३ प्रतिशत क्रोमियम वाले इस्पात में ०.४ प्रतिशत कार्बन हाइपर यूटेक्टाइड का निर्माण करता है। हाइस्पीड इस्पात में कार्बन की मात्रा ०.६५ प्रतिशत रहती है पर वह यूटेक्टाइड होता है।

निकल इस्पात (Nickel Steel)

इस्पात के समस्त धातुसंकर में निकल इस्पात सबसे अधिक उपयोग में लाया जाता है। निकल की मात्रा ०.५ प्रतिशत से लेकर २० प्रतिशत होती है, पर अधिकांश निकल इस्पातों में यह ०.५ से ५ प्रतिशत होती है। ३.५ प्रतिशत निकल इस्पात अत्यधिक प्रचलित है। निकल यूटेक्टाइड तथा क्रिटिकल बिन्दु नीचे कर देता है इसलिए साधारण इस्पात की अपेक्षा इसमें कम कार्बन की आवश्यकता पड़ती है। कार्बन की मात्रा ०.२ प्रतिशत से ०.५ प्रतिशत तक रहती है पर ०.३ प्रतिशत कार्बन बहुत प्रचलित है।

गुण—निकल इस्पात फेराइट को दृढ़ बनाता है। लोहे के साथ मिलकर वह घनविलय बनाता है जिसका नाम 'निकेलो-फेराइट' है। इससे न केवल मुक्त फेराइट ही सुधरता है बल्कि पर्लाइट भी परिष्कृत होता है। कार्बन इस्पात की अपेक्षा निकल इस्पात के कण बहुत छोटे होते हैं। यह बात अधिकांश इस्पात संकरो में लागू होती है। मिलाये जाने वाले तत्व (Alloying Elements) कणों का परिष्कार करते हैं। निकल स्थिति-स्थापकता की सीमा (Limit of Elasticity), कठोरता तथा तनाव की दृढ़ता बढ़ाता है, साथ ही तान्तवता भी कम नहीं होने देता। अल्प कार्बन तथा ३.५ प्रतिशत निकल युक्त इस्पात का यदि ठीक से तापोपचार किया जाय तो उसकी दृढ़ता उतनी ही होगी जितनी कि साधारण उच्च कार्बन इस्पात की। परन्तु भंजनशीलता उससे बहुत कम होगी। यदि निकल इस्पात को बारम्बार मरोड़ा जाय तो भी वह शीघ्र नहीं टूटता। समान कार्बन वाले साधारण इस्पात की अपेक्षा वह छः गुना अधिक मरोड़ (Fatigue) सह सकता है। निकल से इस्पात की आकस्मिक आघात (Impact) सहने की क्षमता बढ़ जाती है। वह शीघ्रता से नहीं काटा जा सकता।

निम्नलिखित सूची में विभिन्न निकल इस्पातों का रासायनिक संगठन, उपयोग तथा विशिष्ट गुण दिये हैं :—

उपयोग	कार्बन प्र०श०	निकल प्र०श०	विशिष्ट
पाइप, चद्दर, रिविट तथा केस हार्डनिंग के पदार्थ	०.१ से ०.१५	२.५ से ३.५	चूँकि निकल कणों को बड़ा नहीं होने देता इसलिए इस इस्पात में केस हार्डनिंग के बाद कण बहुत छोटे रहते हैं।
इमारती तथा पुल का सामान, बड़ी फोर्जिङ्ग, धुरी, शाफ्टिंग, स्वचालित यंत्र तथा वायुयान के भाग	०.२ से ०.४	३.५	समस्त निकल इस्पातों में इसका अत्यधिक उपयोग होता है।

उपयोग	कार्बन प्र०श०	निकल प्र०श०	विशिष्ट
विद्युत् अवरोधक तार (नाइक्रोम तार)	०.३ से ०.५	२५ से २८	यह इस्पात को मंद गति से ठंडा करने पर भी आस्टेनाइट रूप में रहता है और अचुम्बकीय होता है। साधारण इस्पात की अपेक्षा इसका विद्युत् अवरोध ६ गुना अधिक होता है।
घड़ी के पेन्डुलम, सच्ची नाप के फीते आदि	०.३ से ०.५	२८—३५	यह आस्टेनिटिक होता है तथा इसके प्रसार का गुणक (Coefficient of expansion) नगण्य होता है।

क्रोमियम इस्पात (Chromium Stee')

क्रोमियम इस्पात में क्रोमियम २ प्रतिशत से कम या ११ प्रतिशत से अधिक होता है। कठोर तथा घर्षण सहने वाले विविध इस्पातों में २ प्रतिशत से कम क्रोमियम रहता है और स्टेनलेस (मोर्चा या धब्बा न लगने वाले 'अकलुष' या 'निष्कलंक') इस्पातों में ११ प्रतिशत से अधिक क्रोमियम होता है।

भौतिक गुण—इस्पात में क्रोमियम कार्बाइड के रूप में रहता है जिससे इस्पात की कठोरता, स्थिति स्थापकता की सीमा तथा दृढ़ता बढ़ती है। साथ ही तांतवता कम नहीं होने पाती। क्रोमियम इस्पात का प्रधान गुण कठोरता है। उसकी दबाव की दृढ़ता (Compressive Strength) अत्यधिक होती है।

निम्नलिखित सूची में क्रोमियम इस्पात का रासायनिक संगठन, उपयोग तथा तापोपचार का विवरण दिया है :—

उपयोग	कार्बन प्र०श०	क्रोमियम प्र० श०	तापोपचार	विशिष्ट
बाल और रोलर वेयरिंग जो केस हार्डनिंग के बाद उपयोग में लाये जाते हैं।	०.१५	१ से २	कार्बनीकरण ९२०° सें० पर होता है। तेल में बुझाया जाता है। फिर ८००° सें० पर गरम कर तेल में बुझाया जाता है। २५०° सें० पर टेंपर किया जाता है।	सतह पर बना हुआ क्रोमियम कार्बाइड बहुत कठोर तथा घर्षण सहनेवाला होता है।
गीयर, रिंच के जबड़े तथा मशीनगन की नली	०.३५	०.५	८७०° सें० से तेल में बुझाया जाता है तथा ६५०° सें० पर टेंपर किया जाता है।	अत्यधिक प्रचलित क्रोमियम इस्पात, भंजनशीलता रहित तथा घर्षण सहने की अत्यधिक क्षमता।
स्प्रिंग	०.५	१.५	८५०° सें० से तेल में बुझाया जाता है। ३००° सें० पर टेंपर किया जाता है।	
बर्मा, हेक्सा (आरी) चाकू हथौड़ा आदि	०.९	१.०	८१०° सें० से तेल में बुझाया जाता है। २५०-३००° सें० पर टेंपर किया जाता है।	कार्बन की मात्रा बढ़ाने से क्रोमियम का प्रभाव बढ़ जाता है।
स्थायी चुंबक	१.०	२	८००° सें० से तेल में बुझाया जाता है।	चुंबक टेंपर नहीं किये जाते।

उपयोग	कार्बन प्र० श०	क्रोमियम प्र० श०	तापोपचार	विशिष्ट
हजामत के अस्तुरे, रेती	१.३	०.५	८१०° सें० से तेल में बुझाया और २३०° सें० पर टेंपर किया जाता है।	अत्यंत कठोर इस्पात
स्टेनलेस कटलरी (चाकू, कैंची आदि), चीर फाड़ के औजार इत्यादि	०.३५	१३	१०००° सें० से तेल में बुझाकर ५००° सें० पर टेंपर किया जाता है।	ब्रिनेल कठोरता संख्या ४७९
मैलेबल स्टेनलेस इस्पात जिसका दूसरा नाम १८-८ आस्टेनिटिक इस्पात भी है, शृंगार सामग्रियों में उपयोग होता है।	०.१५ से कम	१८ प्र. श. क्रोमिय तथा ८ प्र. श निकल	यह कठोर नहीं होता। १०५०° सें० से शीघ्रता पूर्वक वायु में ठंडा करने से अत्यंत कोमल तथा तांतव इस्पात बनता है।	अत्यंत चिमड़ा तथा अत्यन्त तांतव इस्पात। इस पर मोर्चा नेजाब आदि का प्रभाव नहीं पड़ता। ब्रिनेल सं० १३०।

निकल-क्रोम इस्पात (Nickel-Chrome Steel)

इस इस्पात में १.० से ३.५ प्रतिशत निकल तथा ०.५ से १.५ प्रतिशत क्रोमियम होता है। कार्बन ०.२ से ०.५५ प्रतिशत तक रहता है। निकल औ क्रोमियम का अनुपात साधारणतः २.५ : १ होता है।

भौतिक गुण

साधारण औद्योगिक कार्यों के लिए निकल क्रोम इस्पात सर्वोत्तम होते हैं। उनमें निकल और क्रोमिय दोनों के अच्छे गुण मौजूद रहते हैं तथा उनके दुर्गुण नहीं आने पाते। निकल फेराइट के कणों की तांतवता

तथा चिमड़ापन बढ़ाता है और क्रोमियम सीमेंटाइट को कठोरतर बनाता है जिससे इस्पात में दृढ़ता तथा तांतवता आती है और साथ ही मरोड़ सहने की शक्ति (Fatigue Resistance) भी बढ़ जाती है। घर्षण तथा संघात सहने की क्षमता बढ़ जाती है। ये गुण युद्ध सामग्री के निर्माण के लिए आदर्श हैं। युद्ध पोत और टैंक, आर्मर प्लेट, तोप की नली तथा स्वचालित यंत्रों के भाग इस इस्पात से बनाये जाते हैं।

निकल-क्रोम इस्पात को यदि टैंपरिंग तापमान से वायु में ठंडा किया जाय तो वह भंजनशील हो जाता है। इस दुर्गुण का नाम 'टैंपर भंजनशीलता' (Temper Brittleness) है। इसके निवारण का उपाय यह है कि टैंपरिंग के बाद इस्पात को बुझा दिया जाता है। यदि वायु में ठंडा करना आवश्यक हो तो उसमें थोड़ा मालिब्डिनम मिला दिया जाता है।

निकल क्रोम इस्पात के उद्योग, बनावट तथा तापोपचार का विवरण निम्नलिखित सूची में दिया है—

उपयोग	कार्बन प्र० श०	क्रोमियम प्र० श०	निकल प्र० श०	तापोपचार	विशिष्ट
गीयर, औजार, स्पिंडल, तथा रणसामग्री के इस्पात जिनकी केस हार्डनिंग की जाती है।	०.१ से ०.२	०.६ से ०.६	३ से ३.५	८७०° सें० पर कार्बनीकरण कर बक्स में से सीधे तेल में छोड़कर बुझाया जाता है। फिर ८००° सें० पर गरमकर तेल में बुझाया जाता है। २००° से २५०° सें० तक गरम कर फिर बुझाया जाता है।	पदार्थ का बाह्य भाग अत्यंत कड़ा तथा घर्षण सहने वाला और अंतर्भाग बहुत दृढ़ और चिमड़ा हो जाता है।

उपयोग	कार्बन प्र० श०	क्रोमियम प्र० श०	निकल प्र० श०	तापोपचार	विशिष्ट
यातायात यंत्रों के धुरे, गीयर, क्रैंक शाफ्ट, वायुयान के भाग इत्यादि।	०.३ से ०.४	०.५ से १.२	२.५ से ४.५	९००° सें० पर नार्मलाइज कर ८१५° सें० से तेल में बुझाया जाता है। टेंपर करके तेल में बुझाया जाता है।	इमारती तथा निर्माण कार्य में प्रयुक्त सबसे प्रचलित इस्पात। इसके भौतिक गुण अत्यंत उच्चकोटि के होते हैं।

मैंगेनीज़ इस्पात (Manganese Steel)

इस इस्पात का प्रधान गुण यह है कि घर्षण से इसकी सतह खराब नहीं होती। यद्यपि आजकल अल्प मैंगेनीज़ युक्त इस्पात, जिनमें ०.४ से ०.५ प्रतिशत कार्बन तथा १.६ से १.९ प्रतिशत मैंगेनीज़ रहता है, महँगे निकलक्रोम इस्पात की जगह काम में लाया जाता है तथापि महत्वपूर्ण मैंगेनीज़ इस्पात वह है जिसका रूप आस्टेनिटिक होता है और जिसमें कार्बन १ से १.३ प्रतिशत तथा मैंगेनीज़ १२ से १४ प्रतिशत होता है। उपयुक्त तापोपचार के बाद यह बहुत चिमड़ा हो जाता है और रगड़ खाकर नहीं घिसता।

यदि इस इस्पात की छड़ को १०००° सें० पर तप्त किया जाय और एक छोर को पानी में बुझाकर तथा दूसरी को साधारण वायु में ठंडा किया जाय तो, यद्यपि दोनों छोरों के कण छोटे होंगे तथापि धीरे-धीरे ठंडा किये गए छोर का प्रतिशत लंबसार १ या २ प्रतिशत होगा जब कि बुझाये हुए छोर का ६० या ७० प्रतिशत। किसी साधारण कार्बन इस्पात पर यदि ऐसा तीव्र (Drastic) उपचार किया जाय तो वह विकृत हो जायगा।

धीरे-धीरे ठंडा किए छोर की भंजनशीलता का कारण यह है कि कणों की सीमा पर अधिक मात्रा में सूच्याकार मैंगेनिटिक सीमेंटाइट जमा हो जाता है। इससे कठोरता बढ़ जाती है। अति शीघ्र गति से ठंडा करने (जैसे पानी में बुझाने) पर मिश्रित (Complex) कार्बाइड, जो १०००° सें० पर घनविलय

में विद्यमान रहते हैं, अलग नहीं होने पाते अतः इस्पात अर्थात चिमड़ा होता है। इस उपचार का नाम 'जल द्वारा चिमड़ापन' (Water Toughening) है।

इस इस्पात के उपयोग, बनावट तथा तापोपचार का विवरण निम्नलिखित सूची में दिया है :—

उपयोग	कार्बन प्र० श०	मैंगेनीज़ प्र० श०	तापोपचार	विशिष्ट
यातायात यंत्रों के धुरे, कनेक्टिंग राड, क्रैंक-शाफ्ट आदि तथा बंदूक की नली और अन्य फोर्जिंग	०.३ से ०.४	१.६ से १.९	९००° सें० पर नार्मलाइज़ कर ८२५° सें० से तेल में बुझाया जाता है। फिर ५००° सें० पर गरम किया जाता है।	इस इस्पात में दृढ़ता और चिमड़ेपन का सुंदर संयोग रहता है।
औजार	०.९	१.८	८००° सें० से तेल में बुझाया जाता है तथा २३०° सें० पर टैंपर किया जाता है।	यह विकृत न होनेवाला उपयोगी औजार इस्पात है।
पीसनेवाली मशीन के जबड़े सदृश भाग जिन्हें अत्यधिक घर्षण तथा संघात सहना पड़ता है, रेल की पाँत के नुकीले भाग, सैनिकों के शिरस्त्राण जिन्हें बंदूक की गोली नहीं छेद सकती आदि।	१ से १.४	११ से १३	१०५५° सें० से पानी में बुझाया जाता है। यह इस्पात टैंपर नहीं किया जाता।	यह अचुंबकीय होता है। यदि ३००° सें० के ऊपर टैंपर किया जाय तो मार्टेंसिटिक रूप आ जाता है और भंजनशीलता उत्पन्न हो जाती है।

टंग्स्टन इस्पात (Tungsten Steel)

इस्पात में टंग्स्टन की मात्रा १ से २० प्रतिशत तक हो सकती है। टंग्स्टन इस्पात में बहुधा क्रोमियम और ह्वेनेडियम मौजूद रहते हैं। कार्बन की मात्रा ०.५ प्रतिशत से १.३ प्रतिशत तक होती है। टंग्स्टन सीमेंटाइट तथा फेराइट दोनों से मिश्रित होता है। क्रोमियम का काम टंग्स्टन की क्रिया को तीव्र करना है। टंग्स्टन आस्टेनाइट-पर्लाइट रूपांतर को अवरुद्ध करता है तथा मार्टेंसाइट की टेंपरिंग की क्रिया को रोकता है जिससे उच्च तापमान पर भी कठोरता कायम रहती है। इस गुण का नाम 'तप्त कठोरता' (Red Hardness) है।

हाइ स्पीड इस्पात (High Speed Steel)

इस इस्पात का प्रचलित हिंदी नाम 'हवाई इस्पात' है। यह आधुनिक युग का अत्यंत महत्वपूर्ण औजारी इस्पात है। इसकी कई कोटियाँ होती हैं। अधिक प्रचलित कोटि १८–४–१ कहलाती हैं जिसमें १८ प्रतिशत टंग्स्टन, ४ प्रतिशत क्रोमियम, १ प्रतिशत ह्वेनेडियम तथा ०.७ प्रतिशत कार्बन होता है। समुचित तापोपचार के बाद इस इस्पात में 'तप्त कठोरता' गुण उत्पन्न हो जाता है। खराद द्वारा मशीनिंग क्रिया में औजार गरम होकर लाल हो जाता है। साधारणतः लाल होने पर (टेंपर हो जाने से) औजार की कठोरता घट जाती है पर इस इस्पात में वह नहीं घटती और उसकी धार भी पूर्ववत् रहती है। इससे औजार को बार-बार तेज करने (सान धरने) की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा मशीनिंग की गति भी पर्याप्त तीव्र रखी जा सकती है।

इस किस्म के इस्पात की बनावट, उपयोग तथा तापोपचार का विवरण निम्नलिखित सूची में दिया है :—

उपयोग	कार्बन प्र०श०	टंग्स्टन प्र०श०	क्रोमियम प्र०श०	ह्वेनेडियम प्र०श०	तापोपचार	विशिष्ट
तेज धारवाले औजार जैसे—रुखानी, हेक्सा आरी के ब्लेड	०.६५	०.५ से २			७८०° सें० से पानी में बुझाकर २५०° सें० पर टेंपर किया जाता है।	सस्ता और उपयोगी औजारी इस्पात।

उपयोग	कार्बन प्र०श०	टंगस्टन प्र०श०	क्रोमियम प्र० श०	वैडियम प्र० श०	तापोपचार	विशिष्ट
स्थायी चुंबक	०.७	५—६	०.२		८५०° सें० से पानी में बुझाया जाता है। टेंपरिंग नहीं की जाती।	चुम्बक कभी टेम्पर नहीं किये जाते।
हाइ स्पीड इस्पात (१)	०.७	१८	४	१	१२६०° सें०से तेल में बुझाकर ६००°सें० पर टेंपर किया जाता है।	तापोपचार के बाद ब्रिनेल कठोरता संख्या ६०० होती है।
हाइ स्पीड इस्पात (२)	०.७	१४	४	२		

मालिब्डिनम इस्पात (Molibdinum Steel)

इस इस्पात में क्रोमियम या निकल अथवा दोनों मौजूद रहते हैं। निम्नलिखित किस्में अधिक प्रचलित हैं :—

(१) ०.१५—०.२५ प्रतिशत मालिब्डिनम और ०.५०—०.८० प्रतिशत क्रोमियम।

(२) ०.३०—०.४० प्रतिशत मालिब्डिनम और ०.५०—०.८० प्रतिशत क्रोमियम तथा १.५—२ प्रतिशत निकल।

(३) ०·२०—०.३० प्रतिशत मालिब्डिनम और १.६५—२.० प्रतिशत निकल।

मालिब्डिनम फेराइट के साथ घनविलय तथा कार्बाइड बनाता है। यह कणों की वृद्धि रोकता है इसलिये कठोरीकरण की सीमा (Hardening Range) पर्याप्त बड़ी होती है। क्रिटिकल परिवर्तन शिथिल होते हैं। इसलिये आस्टेनिटिक रूप प्राप्त करने के लिये अधिक तापमान पर गरम करना पड़ता है।

इस कोटि के इस्पात में चिमड़ापन अधिक होता है तथा उचित उपचार द्वारा अधिक कठोरता प्रदान की जा सकती है। इसमें 'टेम्पर भंजनशीलता' (Temper Brittleness) नहीं होने पाती। मालिब्डिनम इस्पातों का उपयोग गीयर, शाफ्ट तथा वायुयान और यातायात यंत्रोंके भागोंके निर्माणमें किया जाता है। मालिब्डिनम निकल इस्पात अत्यधिक मरोड़ने पर भी नहीं टूटता।

क्रोम-व्हेनेडियम इस्पात (Chrome-Vanadium steel)

इनमें बहुधा ०.८ से १.१ प्रतिशत क्रोमियम ०.२५ से ०.२५ प्रतिशत कार्बन तथा ०.२५ प्रतिशत से कम व्हेनेडियम रहता है। व्हेनेडियम की यह अल्प मात्रा भी इस्पात के गुणों को बहुत प्रभावित करती है। अपनी अनाक्सी-कर क्रिया के कारण वह स्वच्छ इस्पात उत्पादन में सहायक होता है। फेराइट और कार्बाइड दोनों में व्हेनेडियम वितरित रहता है तथा दोनों को परिष्कृत करता है। क्रोमियम निकल की अपेक्षा व्हेनेडियम के प्रभाव को अधिक तीव्र करता है। क्रोम-व्हेनेडियम इस्पातों का उपयोग उन वस्तुओं में किया जाता है जिनमें अधिक दृढ़ता, चिमड़ापन तथा मरोड़ सहने की क्षमता आवश्यक होती है। जैसे—वायुयान, मोटर, रेलवे के धुरे और शाफ्ट।

सिलिकन इस्पात (Silicon steel)

साधारण सिलिकन इस्पात जिसमें ३.५ से ४ प्रतिशत सिलिकन तथा ०.१ प्रतिशत से कम कार्बन होता है, अधिक प्रचलित है।

यह अल्प हिस्टिरिसिस क्षय (Hysterisis Loss) तथा उच्च चुम्बकीय पर्मिएबिलिटी (Magnetic Permeability) के लिए प्रसिद्ध है। अतः इसका उपयोग विद्युत् मोटर, जेनरेटर तथा ट्रांस्फार्मर में अत्यधिक होता है।

तापोपचार—१०५०° सें० तक गरम कर शीघ्रता से ठण्डा किया जाता है और फिर ७५०° सें० तक गरम कर धीरे-धीरे ठण्डा किया जाता है।

सिलिकन-मैंगेनीज़ इस्पात

इसमें ०.५० प्रतिशत कार्बन, ०.७ प्रतिशत मैंगेनीज़ तथा २ प्रतिशत सिलिकन रहता है जिससे यह बहुत दृढ़ तथा चिमड़ा होता है। यह स्प्रिंग बनाने के लिये बहुत उपयुक्त होता है। तापोपचार के लिए इसको ८५०° सें० तक गरम कर तेल में बुझाया जाता है। फिर ३५०–४००° सें० पर टेंपर किया जाता है।

— ——

अध्याय १८

ताँबा

लोहे और इस्पात के बाद, उपयोग और उत्पादन की बहुलता में ताँबे का स्थान है। इसके धातुसंकर भी बहुत से हैं तथा अधिकांश उद्योगों में ताँबा या उसके धातुसंकर का किसी न किसी रूप में उपयोग होता है। यह अत्यधिक तान्तव तथा घनवर्धनीय होता है। सस्ती धातुओं में यह ताप तथा विद्युत् का सर्वोत्तम संचालक है। इसीलिये इसके उत्पादन का आधे से अधिक भाग विद्युत् उद्योग में खर्च होता है। प्रागैतिहासिक मानव इस धातु को जानते थे। प्राचीन धातुविज्ञों ने पहिले ताँबे के आक्साइड खनिज का तथा बाद में सल्फाइड खनिज का शोधन किया होगा। जिन दो आधुनिक पद्धतियों ने ताम्रोत्पादन को अत्यधिक प्रभावित किया है उनमें से एक बेसिमर पद्धति है जिसमें ताम्र-मैट का शोधन होता है तथा दूसरी वैद्युत् शोधन पद्धति है। अब जलीय पद्धति द्वारा भी ताम्रोत्पादन की दिशा में प्रगति हो रही है।

कुछ वर्षों से नये तथा उत्तम ताम्र मेलों का आविर्भाव हुआ है। इनमें से महत्व के वे हैं जिनकी दृढ़ता तापोपचार द्वारा बढ़ाई जा सकती है। उदाहरणः— बेरीलियम ताँबा जिसमें २ प्रतिशत बेरीलियम होता है। इसके तनाव की दृढ़ता अत्यधिक होती है तथा मरोड़ सहने की क्षमता (Fatigue resistance) और संक्षारणावरोध (Corrosion resistance) भी बहुत अच्छा होता है।

संसार में ताँबे की उत्पत्ति तथा विविध उद्योगों में उसके व्यय का विवरण नीचे दिया जाता है। भारतीय उत्पादन ७००० टन प्रति वर्ष है तथा द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत लगभग २५००० टन ताँबा रोडेशिया, जर्मनी, इङ्गलैंड, अमेरिका तथा जापान से मंगाया करता था। आजकल वह प्रतिवर्ष २० हजार टन ताँबा आयात करता है।

ताँबे के भौतिक गुण

यह लाल रंग का होता है, इसका आपेक्षिक घनत्व ८.२ से ८.९ तथा तनाव की दृढ़ता (तार की) १६ से २३ टन प्रति वर्ग इंच होती है। इसका द्रवणांक १०८३° सें० तथा क्वथनांक २१००° सें० है। द्रव ताँबा शीघ्रता से

आक्सीकृत हो जाता है। यह ताप और विद्युत् का उत्तम संचालक है। ताँबे के उत्पादन का अधिकांश भाग विद्युत् उद्योग में खर्च होता है। यह बहुत तान्तव तथा घनवर्धनीय होता है।

ताँबे के गुणों पर अशुद्धियों का प्रभाव

आक्सीजन—ताप द्वारा शोधित ताँबे में उसका चिमड़ापन बढ़ाने के लिये थोड़ी मात्रा में आक्सीजन का होना आवश्यक है। यह मात्रा अन्य विद्यमान अशुद्धियों पर निर्भर करती है। इस प्रकार के ताँबे में यदि आक्सीजन बिलकुल न हो तो वह भंजनशील हो जाता है। यह भंजनशीलता अशुद्धियों के लघ्वीकरण के कारण होती है। आक्सीकृत रूप में ये अशुद्धियाँ हानि नहीं पहुँचातीं। शुद्ध वैद्युत् ताँबे में आक्सीजन के अभाव से भंजनशीलता नहीं आती। आक्सीजन Cu_2O के रूप में रहता है तथा ०.४५ प्रतिशत Cu_2O (अर्थात् ०.०५ प्रतिशत आक्सीजन) अभीष्ट माना जाता है। इस सीमा के बाद भंजनशीलता बढ़ने लगती है।

आर्सेनिक—यह एक सीमा तक ताँबे की घनवर्धनीयता तथा तान्तवता को बिना घटाये उसकी दृढ़ता और कठोरता बढ़ाता है। 'फायर बाक्स प्लेट' तथा रेलवे इंजिन के ब्वायलर की नलियों में ०.३ प्रतिशत से ०.५ प्रतिशत तक आर्सेनिक उपस्थित रहता है। आर्सेनिक ताँबे के विद्युत् संचालन को अत्यधिक कम कर देता है। ०.१ प्रतिशत आर्सेनिक शुद्ध ताँबे की चौथाई संचालकता घटा देता है।

एण्टीमनी—यह ताँबे को भंजनशील बनाता है तथा उसकी वैद्युत् संचालकता कम कर देता है।

बिसमथ—यदि यह ०.००५ प्रतिशत जैसी अल्प मात्रा में भी विद्यमान रहे तो ताँबे में अत्यधिक भंजनशीलता आ जाती है और वह तार खींचने योग्य नहीं रह जाता।

गिलट—यह ताँबे की दृढ़ता और चिमड़ापन बढ़ाता है तथा उच्च तापमान पर उसका आकार खराब नहीं होने देता।

ताँबे के उपयोग—शुद्ध वैद्युत् ताँबा बिजली के तार बनाने में बहुत खर्च होता है। ताप द्वारा शोधित ताँबा रसोई के बर्तन, नलियाँ, चद्दर, इत्यादि बनाने में खर्च होता है। शुद्ध रूप के सिवा इसका उपयोग बहुत से धातुसंकर बनाने में होता है। इनमें पीतल, काँसा या फूल (Bronze) अलुमीनियम-काँसा, जर्मन सिल्वर, ताम्रगिलट (Cupro-nickel) आदि मुख्य हैं।

निम्नलिखित सूची में ताँबे के धातुसंकरों के नाम, बनावट तथा उपयोगों का विवरण दिया गया है—

तांबे के धातुसंकर

नाम	ताँबा प्रतिशत	जस्ता प्र०श०	राँगा प्रतिशत	अन्य धातु प्रतिशत	उपयोग
बेरीलियम ताँबा	९८	...	...	२ बेरीलियम	खान में खोदाई करने के औजार इत्यादि।
सर्वोत्तम पीला पीतल	७०	३०	...	...	रेलवे एंजिन तथा कंडेसर की नलियाँ, चद्दर, कारतूस की टोपियाँ इत्यादि।
एडमिरैल्टी	७०	२९	१	...	७०, ३० तांबे से अधिक संक्षारणावरोधक, जोड़ रहित (Seamless) कंडेसर नलियों के उत्पादन में व्यवहृत।
साधारण पीतल	६६	३४	...	...	७०, ३० के स्थान पर बहुधा व्यवहृत किन्तु भौतिक गुणों में उससे हीन।
जहाजी पीतल	६२	३७	१	...	इस पर समुद्र के जल का प्रभाव कम पड़ता है।
मंज़ धातु	६०	४०	...	...	केलिको प्रिंटिंग की चद्दरें तथा बेलन।
गन मेटल	६२-८७	...	८-१३	...	दृढ़, चिमड़ा तथा आघात सहने वाला धातुसंकर, बेयरिंग तथा ब्वायलर फिटिंग आदि के काम आता है।

तांबे के धातुसंकर

नाम	तौंबा प्रतिशत	जस्ता प्र०श०	राँगा प्रतिशत	अन्य धातु प्रतिशत	उपयोग
घंटी बनाने की धातु	७५–८५	...	१५–२१	...	अच्छी आवाज़ वाली घंटियों, घंटों आदि के निर्माण में काम आती है।
फास्फरस काँसा	८६–९२	...	८–१२	०.५-१.५	यह कठोर होता है तथा गन मेटल से अच्छा घर्षण-गुण युक्त होता है। बेयरिंग, पम्प प्रापेलर (पंखे) गीयर, स्लाइड वाल्व आदि में व्यवहृत होता है।
मूर्तियों का काँसा	८६–६३	१–५	१–९	१–२.५ सीसा	मूर्तियों के निर्माण में उपयोग होता है।
अलुमीनियम काँसा	९०	...	...	१०	डाइ कास्टिंग, नकली सोना, अलुमीनियम आदि बनाने में काम आता है।

ताँबे के खनिज

ताँवे के खनिज तीन श्रेणियों में विभक्त किये जाते हैं :—

१—शुद्ध प्राकृतिक ताँबा—जिसमें ताँबा अपने प्राकृतिक शुद्ध रूप में मिलता है।

२—आक्सीकृत खनिज—जिसमें ताँवे के आक्साइड, कार्बोनेट, तथा सिलिकेट सम्मिलित हैं। गन्धक युक्त यौगिक इसमें सम्मिलित नहीं हैं।

उदाहरण—

मैलेकाइट (Malachite) $Cu\,CO_3 . Cu\,(OH)_2$

एजूराइट (Azu rite) $2Cu\,CO_3 \cdot Cu\,(OH)_2$

क्यूप्राइट (Cuprite) Cu_2O

३—गन्धक युक्त खनिज—चैल्कोपायराइट (Chalcopyrite–Cu_2S, Fe_2S_3) जब शुद्ध रहता है तब इसमें ३४·६ प्रतिशत ताँबा, ३०·५ प्रतिशत लोहा और ३४·६ प्रतिशत गन्धक रहता है। परन्तु प्राप्त खनिज में १·५ से २ प्रतिशत ताँबा होता है। संसार का अधिकांश ताँबा इस तीसरी श्रेणी से प्राप्त किया जाता है। साधारतः प्राप्त होने वाले ताँबे में ये मात्राएँ बदलती रहती हैं।

भारत में इस समय केवल मोज़ाबानी (घटशिला, बिहार) की खदानों से गन्धक युक्त ताँबा निकाला जाता है। अन्य छोटी खदानें कुमायूँ, गढवाल, तथा राजपूताना में है परन्तु वे दुर्गम स्थानों में है और आर्थिक दृष्टि से उनका उपयोग अभी तक नहीं हो सका है।

ताँबे के खनिज से ताँबे की प्राप्ति

१—शुद्ध प्राकृतिक ताँबा—यदि ताँबे के कण शिला में समान रूप से वितरित हों तो खनिज ड्रेसिंग की सरल पद्धतियों से ताँबा अलग किया जाता है। साधारणतः शिला को बारीक पीसा जाता है। चूँकि ताँबे का आपेक्षिक घनत्व शिला के आपेक्षिक घनत्व से अधिक होता है इसलिए ताँबे को सरलता से अलग कर लिया जाता है।

२—आक्सीकृत खनिज—ये ब्लास्ट फर्नेस में लकड़ी के कोयले तथा फ्लक्स के साथ गलाए जाते हैं। अपेक्षाकृत विशेष प्रचलित पद्धति यह है कि आक्सीकृत खनिज को उचित मात्रा में गन्धक युक्त खनिज के साथ मिलाकर गलाया जाता है।

३—गन्धक युक्त खनिज—इन खनिजों की शोधन क्रिया निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है—

१—लोहे की अपेक्षा ताँबे की ओर गंधक की अधिक प्रीति।

२—ताँबे की अपेक्षा लोहे की ओर आक्सीजन की अधिक प्रीति।

३—FeO का सरलता पूर्वक सिलिका के साथ मिलकर गलनशील धातु-संकर बनाना।

४—ताम्र सल्फाइड का लौह सल्फाइड तथा अन्य सल्फाइडों के साथ घुल-मिलकर एक संयुक्त सल्फाइड पदार्थ "मैट" (Matte) बनाना।

५—यदि ताँबा, लोहा, गन्धक तथा सिलिका का मिश्रण एक साथ गलाया जाय तो सबका सब ताँबा गन्धक के साथ मिलकर Cu_2S बनाता है। इसके उपरान्त यदि गन्धक बच रहता है तो वह लोहे के साथ मिलकर FeS बनाता है। गन्धक से युक्त होने के बाद जो लोहा बच रहता है वह SiO_2 के साथ मिलकर धातुमैल बनाता है। दूसरी ओर यदि गन्धक की मात्रा बहुत अधिक हो तो लोहे का अधिक भाग FeS के रूप में रहता है तथा उसी अनुपात में धातुमैल में उसकी मात्रा घट जाती है। ऐसी हालत में बने मैट में Cu_2S की मात्रा कम होती है।

इस प्रकार मैट की कोटि चार्ज में मौजूद गन्धक की मात्रा पर निर्भर रहती है।

६—यदि Cu_2S और FeS के मिश्रण को आक्सीकृत किया जाय तो FeS पहिले FeO के रूप में परिवर्तित होगा क्योंकि ताँबे की अपेक्षा लोहा आक्सीजन के प्रति अधिक आकर्षित होता है।

यद्यपि सभी गंधक युक्त खनिजों की शोधन क्रिया का आधारभूत सिद्धांत एक ही है तथापि खनिज की विशिष्टता के साथ पद्धति के विस्तार में थोड़े बहुत परिवर्तन हुआ करते हैं। इस प्रकार निकृष्ट श्रेणी के खनिज में ड्रेसिंग की आवश्यकता पड़ सकती है या अत्यधिक गन्धक युक्त खनिज को रोस्ट करना पड़ सकता है जिससे कुछ गन्धक अलग हो जाए।

गंधक युक्त खनिजों में सामान्य विजातीय द्रव्य "पायराइट" (FeS_2), लौह सल्फाइड (Fe_2S_3), सिलिका इत्यादि होते हैं।

गंधक युक्त खनिजों को शोधन करने की आधुनिक पद्धति में कंसेन्ट्रेशन (Concentration) करने के पश्चात निम्नलिखित क्रियाएँ की जाती हैं—

१—रोस्टिंग (Roasting).

२—रोस्ट किये हुए मैट को गलाना।

३—मैट को बेसिमर कन्वर्टर में फूँकना तथा

४—ब्लिस्टर ताँबे (बेसिमर कन्वर्टर से प्राप्त ताँबे) को परिष्कृत करना।

गलाने के पूर्व ताम्र खनिज को रोस्ट करने का उद्देश्य

यह अभिष्ट है कि खनिज के द्रवण से प्राप्त मैट में लगभग ४० प्रतिशत ताँबा रहे परंतु यदि खनिज में FeS की मात्रा अधिक हो तो बनने वाले मैट में भी FeS की मात्रा अधिक होगी तथा Cu_2S की मात्रा कम होगी। इस प्रकार

जब तक चार्ज में गंधक की मात्रा नियंत्रित न की जाए तब तक मैट की बनावट का नियंत्रण नहीं हो सकता। रोस्टिंग के द्वारा चार्ज का कुछ गंधक वायु के आक्सीजन के साथ मिलकर SO_2 बन जाता है और उड़कर अलग हो जाता है। यही कारण है कि अत्यधिक गंधकमय खनिज को मैट बनाने के पूर्व रोस्ट कर लेना चाहिए।

जिस खनिज में गंधक केवल वांछित मात्रा में रहता है उसको रोस्ट करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

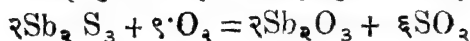
रोस्टिंग

रोस्टिंग करते समय खनिज के टुकड़ों को पिघलने नहीं दिया जाता अन्यथा आक्सीजन का प्रवेश अवरुद्ध हो जाता है। रोस्टिंग में निम्नलिखित रासायनिक क्रियाएँ होती हैं तथा अधिकांश आर्सेनिक और एन्टीमनी उड़ जाते हैं—

चित्र सं० ६१ हरशाफ रोस्टिंग फर्नेस



$$२As_2S_3 + ९O_2 = २As_2O_3 + ६SO_2$$



$$२Sb_2S_3 + ९O_2 = २Sb_2O_3 + ६SO_2$$

थोड़ा सा ताम्र सल्फाइड भी आक्सीकृत होकर ताम्र आक्साइड या ताम्र सल्फेट बन सकता है।

ताम्र खनिज की रोस्टिंग के लिए कई प्रकार की फर्नेसें प्रचलित हैं। इनमें हेरशाफ (Herreshoff) फर्नेस अधिक लोकप्रिय है। रोस्टिंग तब तक चालू रखी जाती है जब तक कि गंधक की मात्रा केवल उतनी बच रहे जिससे कि वांछित कोटि का मैट बन सके।

स्मेल्टिंग (गलन)

स्मेल्टिंग या गलन के दो उद्देश्य हैं। एक है धातुमैल बनाना जिससे विजातीय द्रव्य अलग हो जाते हैं, दूसरा है मैट बनाना जिसमें लोहे और ताँबे के सल्फाइड, चाँदी तथा सोना (यदि खनिज में ये विद्यमान रहें तो) मौजूद रहते हैं।

स्मेल्टिंग फर्नेस के दो मुख्य प्रकार हैं—

१—रिवर्बेरेट्री फर्नेस तथा

२—ब्लास्ट फर्नेस।

रिवर्बेरेट्री फर्नेस

इस फर्नेस में गलाने के लिए जो चार्ज छोड़ा जाता है उसमें निम्नलिखित पदार्थ होते हैं—

१—रोस्ट किया हुआ खनिज।

२—बिना रोस्ट किया हुआ खनिज जिसमें गंधक की अधिकता न हो।

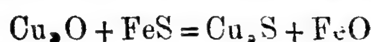
३—बिना रोस्ट किया हुआ खनिज जिसमें गंधक की कुछ अधिकता हो तथा कुछ आक्साइड खनिज मिश्रित हो।

४—आक्सीकृत खनिज।

५—ताम्र युक्त धातुमैल।

६—फ्लक्स।

पहिले कहा जा चुका है कि अधिक गंधक युक्त खनिज को रोस्ट करने के बदले आक्सीकृत खनिज के साथ उचित परिमाण में मिलाकर काम चलाया जा सकता है। दोनों प्रकार के खनिज में यह रासायनिक क्रिया होती है—

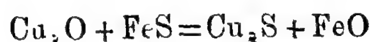


$$Cu_2O + FeS = Cu_2S + FeO$$

FeS की जगह Cu_2S बन जाता है तथा FeO धातुमैल में चला जाता

है। इस प्रकार रोस्टिंग का खर्च बच जाता है साथ ही मैट की किस्म अच्छी हो जाती है।

फर्नेस में तटस्थ वातावरण रहता है इसलिए एक मात्र रासायनिक क्रिया यह होती है—



$$Cu_2O + FeS = Cu_2S + FeO$$

अतः ताम्र खनिज की स्मेल्टिंग साधारण द्रवण क्रिया है। मैट की बनावट का नियंत्रण चार्ज की बनावट ठीक रख कर ही होता है।

फर्नेस की बनावट

फर्नेस का विस्तार आवश्यकतानुसार रखा जाता है। बहुधा १२० फुट लम्बी फर्नेस अधिक प्रचलित है। फर्नेस की समस्त लाइनिंग सिलिका की ईंटों की होती है।

सामान्यतः विचूर्ण कोयला या तेल का उपयोग ईंधन में होता है। बाहर जानेवाली गैसों की उष्णता का उपयोग ब्वायलरों को गरम करने में होता है। चार्जिंग छत से की जाती है, बगल से नहीं, जिससे ठंडी हवा अन्दर प्रवेश कर तापमान कम न कर सके। चार्ज को पहिले से पिछले चार्ज के ऊपर गिराया जाता है। इस पद्धति से हार्थ की लाइनिंग अधिक दिनों तक चलती है।

ब्लास्ट फर्नेस

ब्लास्ट फर्नेस में वही चार्ज छोड़ा जाता है जो रिवर्बरेटरी फर्नेस में छोड़ा जाता है। रासायनिक क्रियाएँ भी पहिले जैसी होती हैं।

पिग लोहा बनाने की ब्लास्ट फर्नेस गोल होती है पर ताँबे की ब्लास्ट फर्नेस आयताकार होती है। गोल ब्लास्ट फर्नेस में टूयर द्वारा एक निश्चित दूरी तक ही वायु पहुँचाई जा सकती है। इस प्रकार टूयर और फर्नेस के केन्द्र की दूरी सीमित हो जाती है। दूसरे शब्दों में फर्नेस का आयतन (capacity) सीमित हो जाता है। आयताकार फर्नेस में चौड़ाई तो ब्लास्ट पहुँचने तक सीमित रहती है पर लम्बाई इच्छानुसार रखी जा सकती है। ८ से ८० फुट तक की लम्बाई वाली फर्नेसें प्रचलित हैं।

स्मेल्टिंग प्रदेश में शाफ्ट कान्तो लोहे या इस्पात के बने जल संचालक पात्रों (वाटर जैकेट) से आवृत रहता है। इनमें निरन्तर पानी बहता रहता है

जिससे शाफ्ट का तापमान अत्यधिक नहीं होने पाता। लाइनिंग अग्नि प्रतिरोधक ईंटों की होती है। कुछ फर्नेसों में ब्लास्ट को गरम करके भेजा जाता है।

चार्ज के १५ प्रतिशत के बराबर कोक खर्च होता है। ऊपरी भाग की बगल की खिड़की से चार्जिंग की जाती है। फर्नेस की गलाने की शक्ति हार्थ के प्रति वर्ग फुट क्षेत्रफल पीछे प्रति दिन ५ से ६ टन तक होती है।

रिवर्बेरेट्री एवं ब्लास्ट फर्नेस पद्धतियों की तुलना

१. ब्लास्ट फर्नेस में बारीक खनिज नहीं गलाया जा सकता क्योंकि कणों के बीच का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। अतः ब्लास्ट अधिक दूर तक प्रवेश नहीं कर सकता। रिवर्बेरेट्री फर्नेस में ब्लास्ट इतना वेगमान नहीं होता। अतः बारीक खनिज का उपयोग हो सकता है। चूँकि बहुत से ताम्र खनिज गलाने के पूर्व रोस्ट किये जाते हैं इसलिए वे बारीक हो जाते हैं। अतः वे ब्लास्ट फर्नेस की अपेक्षा रिवर्बेरेट्री फर्नेस के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। रिवर्बेरेट्री फर्नेस धीरे-धीरे ब्लास्ट फर्नेस का स्थान लेती जा रही है।

२. ब्लास्ट फर्नेस में ब्लास्ट भेजने तथा जल संचालन करने के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है।

३. रिवर्बेरेट्री फर्नेस में लागत अधिक लगती है।

पायराइटिक स्मेल्टिंग (Pyritic Smelting)

इसका उद्देश्य रोस्ट किये बिना ब्लास्ट फर्नेस में निम्नकोटि के सल्फाइड खनिज से उच्चकोटि का मैट बनाना है। इस क्रिया में आवश्यक ताप खनिज में मौजूद लौह सल्फाइड के आक्सीकरण से प्राप्त होता है। बाहरी ईंधन की आवश्यकता बहुत कम या बिलकुल नहीं पड़ती। तथापि २ या ३ प्रतिशत कोक मिलाना पड़ता है। इस पद्धति के लिए उपयुक्त खनिज वह है जिसमें पायराइट की पर्याप्त मात्रा हो (कम से कम १८ प्रतिशत) जिससे आवश्यक रासायनिक ताप प्राप्त हो सके तथा पर्याप्त सिलिका हो जो FeO के साथ मिलकर धातुमैल बना सके।

मैट में ताँबे का तथा धातुमैल में SiO_2 का नियन्त्रण फर्नेस में भेजी जाने वाली वायु द्वारा होता है। स्मेल्टिंग के उपरान्त ये वस्तुएँ मिलती हैं। मैट में लगभग ३० प्रतिशत ताँबा रहता है तथा धातुमैल जिसमें ३८ प्रतिशत SiO_2, ४५ प्रतिशत FeO, १० प्रतिशत CaO तथा ७ प्रतिशत Al_2O_3 रहता है। धातुमैल में ०.४ प्रतिशत से कम ताँबा नष्ट होता है।

मैट का ब्लिस्टर ताँबे में परिवर्तन

इस क्रिया में गलित मैट में से वायु भेजी जाती है जिससे निम्नलिखित क्रियाएँ क्रम से संपादित होती हैं—


(१) $२FeS + ३O_2 = २FeO + २SO_2$


(२) $FeO + SiO_2 = FeO.SiO_2$


(३) $२Cu_2S + ३O_2 = २Cu_2O + २SO_2$


(४) $२Cu_2O + Cu_2S = ६Cu + SO_2$

क्रिया संख्या (१) तापक्षेपक (Exothermic) है अतः उससे सबसे अधिक ताप मिलता है। सिलिका व्यवहृत फ्लक्स में से प्राप्त होता है तथा FeO से मिलकर धातुमैल बनाता है (क्रिया संख्या २)। जब सब FeS आक्सीकृत हो चुकता है तब Cu_2S का परिवर्तन Cu_2O में होने लगता है। (क्रिया संख्या ३) और Cu_2O अन्ततः शेष Cu_2S से मिलकर शुद्ध ताँबा बनाता है (क्रिया संख्या ४)।

कन्वर्टर के योग्य मैट की कोटि

यदि मैट निम्नकोटि का हो (Cu_2S कम तथा FeS अधिक हो) तो अधिक मात्रा में बने FeO को अलग करने के लिए अधिक SiO_2 लगता है। धातुमैल में अधिक ताँबा चला जाता है तथा उसे प्राप्त करने के लिए पुनः उपचार करना पड़ता है जिससे खर्च बढ़ जाता है।

यदि मैट उच्चकोटि का हो (अर्थात् उसमें Cu_2S अधिक और FeS कम हो) तो उससे पर्याप्त ताप नहीं मिलता। ४० प्रतिशत ताँबा युक्त मैट सर्वोत्तम समझा जाता है।

ताम्र कन्वर्टर इस्पात उद्योग के बेसिमर कन्वर्टर की तरह होता है। मुख्य अन्तर यह है कि इसमें ब्लास्ट पेंदे से न आकर बगल से प्रवेश करता है। कन्वर्टर का विस्तार ७ से ७० टन तक का होता है। लाइनिंग मेग्नेसाइट की होती है। फ्लक्स के लिए क्वार्ट्ज़ाइट शिला का उपयोग किया जाता है। क्षारीय मैग्नेसाइट लाइनिंग को अम्लीय क्वार्ट्ज़ाइट की क्रिया से बचाने के लिए निम्नकोटि के मैट द्वारा लाइनिंग पर Fe_2O_3 की एक परत दी जाती है।

चार्ज का धमन

कन्वर्टर को झुकाकर ट्यूयर ऊपर कर दिये जाते हैं तथा गलित मैट चार्ज कर दिया जाता है। ब्लास्ट चालू कर कन्वर्टर को खड़ा कर दिया जाता है। ब्लास्ट का दबाव ६ से १८ पौंड प्रतिवर्ग इंच होता है। उच्चकोटि का मैट (४५ प्रतिशत ताँबा) धमन कर सीधे ताँबा बनाया जा सकता है। निम्नकोटि के मैट में पहिले आरम्भिक धमन द्वारा ताँबे की मात्रा बढ़ाई जाती है फिर दूसरे धमन द्वारा ताँबा बनाया जाता है। कार्ट्ज़ धमन के आरम्भ में बने FeO को फ्लक्स करने के लिए छोड़ा जाता है।

धमन के आरम्भ में घना सफेद धुँआ जिसमें SO_2 तथा SO_3 रहता है, उठता है। जैसे जैसे FeS आक्सीकृत होकर धातुमैल में जाता है वैसे-वैसे ज्वाला का रंग हरा होता जाता है। यह 'धातुमैल काल' कहलाता है। जब सब FeO धातुमैल में चला जाता है अर्थात् ज्वाला का रंग हरा हो जाता है तब कन्वर्टर को झुकाकर धातुमैल अलग कर लिया जाता है। फिर कन्वर्टर को खड़ा कर धमन चालू कर दिया जाता है। इस बार Cu_2S आक्सीकृत होकर Cu_2O बनाता है तथा यह Cu_2O, Cu_2S से संयुक्त होकर Cu बनाता हैं। यह धमन क्रिया की दूसरी अवस्था है।

इस अवस्था में ज्वाला का रंग हरापन लिए नीला रहता है और जब Cu_2S आक्सीकृत हो जाता है तब वह श्वेत या गुलाबी श्वेत हो जाता है। ट्यूयर छिद्र खोलने वाली छड़ पर लगी धातु के रंग के निरीक्षण से धमन की पूर्णता का ठीक अनुमान होता है। जब धमन समाप्त हो जाता है तब कन्वर्टर को झुकाकर धातु इंगटों में ढाल ली जाती है। यह पदार्थ 'ब्लिस्टर ताँबा' कहलाता है क्योंकि इसमें छाले "ब्लिस्टर" पड़े रहते हैं। इसमें ६८, ६६ प्रतिशत ताँबा रहता है। इस धमन में ढाई घंटे से लेकर तीन घंटे तक का समय लगता है।

कुछ समय से 'डब्लिंग' (Doubling) नाम की पद्धति विकसित हुई है और भारत में उसका उपयोग हो रहा है। इसमें जब पहिले चार्ज में से धातुमैल गिरा दिया जाता है तब उसमें दूसरा चार्ज उड़ेला जाता है। इस प्रकार इसमें दूसरा 'धातुमैल काल' भी होता है। इससे कन्वर्टर की उत्पादन शक्ति बढ़ जाती है।

यदि मैट में FeS की मात्रा कम हो तो धमन में धातु ठण्डी पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में लोहे का स्क्रैप या निम्न कोटि का मैट मिलाया जाता है जिससे पर्याप्त ताप मिल सके।

शोधन

कन्वर्टर में तैयार हुआ ब्लिस्टर ताँबा अशुद्ध होता है। उसमें गन्धक, लोहा, आर्सेनिक आदि प्रधान अशुद्धियाँ होती हैं। उसका शोधन दो पद्धतियों से हो सकता है—

१. ताप द्वारा।
२. विद्युत् द्वारा।

ताप द्वारा शोधन

इस पद्धति का उपयोग व्यापारिक 'टफ पिच' (Tough Pitch) ताँबा या तांबे के एनोड बनाने में होता है। ये एनोड बाद में विद्युत् विश्लेषण (Electrolysis) द्वारा शुद्ध वैद्युत् तांबे में परिवर्तित कर लिये जाते हैं। तांबे की अशुद्धियाँ विद्युत् विश्लेषण में बाधा उपस्थित करती है इसलिए विद्युत् विश्लेषण के पूर्व ताप द्वारा शोधन कर अधिकांश अशुद्धियाँ अलग कर दी जाती हैं। ताप द्वारा शोधन की पद्धति निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है :—

१. तांबे की अशुद्धियाँ तांबे की अपेक्षा आक्सीजन द्वारा अधिक आत्कर्षित होती है।

२. गन्धक SO_2 बनाकर अलग किया जा सकना है।

शोधन रिवर्बेरेट्री फर्नेस में किया जाता है। फर्नेस की समस्त लाइनिंग सिलिका ईंटों की होती है। चूँकि ताँबा भारी और ताप का अच्छा संचालक होता है इसलिए हार्थ मजबूत बनाई जाती है तथा उसके नीचे मेहराब बने रहते हैं। ईंधन में विचूर्ण कोयले या तेल का उपयोग होता है।

हार्थ के ऊपर ब्लिस्टर तांबे के इंगटों की तह छत तक लगा दी जाती है। हवा आने के लिए दरवाजा खुला रहता है। ताप का अच्छा संचालक होने के कारण ताँबा शीघ्र गल जाता है। गली धातु की सतह पर से धातुमैल हटाकर उसे स्वच्छ रखा जाता है जिससे वह सरलता से आक्सीजन के सम्पर्क में आ सके।

गन्धक SO_2 गैस बनकर उड़ जाता है अतः द्रव धातु में उबाल-सी मालूम पड़ती है। SO_2 के बुदबुदों को निकालने के लिए बाथ को चलाया जाता है। चलाना तब तक चालू रखा जाता है जब तक कि तांबे में ६ प्रतिशत

Cu_2O न तैयार हो जाए। इससे यह निश्चय हो जाता है कि सब SO_2 अलग हो गया है। बाथ की सतह पर अथवा सतह के नीचे लोहे की नालियों द्वारा ब्लास्ट प्रवेश करा के उसे विलोड़ित किया जाता है। धातुमैल थोड़ी-थोड़ी देर पर हटा दिया जाता है जिससे स्वच्छ सतह आक्सीजन के संपर्क में आ सके। यह देखने के लिये कि धातु Cu_2O से संपृक्त हो चुकी है, बीच-बीच में जाँच की जाती है। इस जाँच के लिये लोहे के छोटे डब्बू में धातु भर दी जाती है फिर यह देखा जाता है कि उसकी सतह ठोस बनते समय ऊपर की ओर उठती है या नीचे की ओर दब जाती है। यदि वह ऊपर उठे तो समझना चाहिये कि गन्धक मौजूद है अतः आक्सीकरण चालू रखना चाहिये। यदि उसमें गड्ढा बन जाए तो समझना चाहिये कि तांबे में ६ प्रतिशत Cu_2O है और वह गन्धक से मुक्त हो गया है।

विद्युत् द्वारा तांबे का परिशोधन

अल्प मात्रा में अशुद्धियों की उपस्थिति भी तांबे के विद्युत् परिचालन को अत्यधिक कम कर देती है। अतः विद्युत् परिचालन के निमित्त तांबे को पूर्ण रूप से शुद्ध किया जाता है। वैद्युत् परिशोधन द्वारा उसकी शुद्धता ९९.९९ प्रतिशत तक पहुँच जाती है। वैद्युत् परिशोधन निम्नलिखित अवस्थाओं में व्यवहार्य होता है—

१. जब वैद्युत् तांबे की माँग हो।
२. सस्ती बिजली उपलब्ध हो।
३. तांबे में मूल्यवान धातुओं का अंश पर्याप्त हो।

वैद्युत् परिशोधन का सिद्धान्त

तांबे के सल्फेट ($CuSO_4$ नीलाथूथा) के घोल में किंचित् गन्धकाम्ल (H_2SO_4) मिला दिया जाता है तथा तांबे के दो एलेक्ट्रोडों द्वारा उसमें बिजली भेजी जाती है। एनोड (Anode +) क्रमशः घुलता जाता है तथा कैथोड (Cathode−) पर उतना ही ताँबा जमता जाता है। यह ताँबा बहुत शुद्ध होता है, भले ही एनोड अशुद्ध रहे। अतः अशुद्ध तांबे को एनोड बनाया जाता है और कैथोड शुद्ध तांबे का होता है। वैद्युत् विश्लेषण (Electrolysis) की परिस्थितियों का नियन्त्रण कर अशुद्ध तांबे की अशुद्धियों को या तो घुलने से रोका जा सकता है या यदि वे घुल भी जाएँ तो

उन्हें कैथोड पर जमने से विरत रखा जा सकता है। पहिली स्थिति में अशुद्धियाँ तलछट के रूप में नीचे बैठ जाती है तथा दूसरी में विद्युत् घोल[1] (Electrolyte) में विद्यमान रहती हैं।

एलेक्ट्रोड की व्यवस्था के अनुसार वैद्युत् परिशोधन की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं :—

१. गुणक पद्धति (Multiple System)।

२. क्रमानुगत पद्धति (Series System)।

गुणक पद्धति

इसमें एनोड का विस्तार ३ फुट × ३ फुट × २ इंच होता है। शुद्ध ताँबे की ३ फुट × ३ फुट × ¹⁄₁₆ इंच का कैथोड होता है। सब एनोड (+) छोर से तथा उतनी ही संख्या में कैथोड (−) छोर से जोड़ दिये जाते हैं। प्रत्येक एनोड तथा कैथोड के बीच लगभग चार इंच का अंतर होता है।

जिस पात्र में यह क्रिया संपन्न होती है वह लकड़ी का होता है तथा अंदर की ओर शुद्ध सीसे की लाइनिंग रहती है। इस्पात को लकड़ी तथा शीशे की पटरियों पर रखा जाता है जिससे बिजली जमीन में न उतरने पाए। विद्युत् द्रव में १५–४० प्रतिशत नीलाथूथा ५–२० प्रतिशत गंधकाम्ल तथा शेष जल रहता है। पात्र के अंदर विद्युत्-द्रव की बनावट भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न होती है। एनोड के पास जहाँ ताँबा घोल में प्रवेश करता है वहाँ ताँबे की अधिकता होती है तथा कैथोड के पास, जहाँ ताँबा अलग होता है गन्धकाम्ल की बहुलता होती है। विद्युत्-द्रव को सक्रिय बनाने के लिए उसे प्रवाह द्वारा विलोड़ित किया जाता है। अतः प्रथम पात्र की अपेक्षा दूसरा पात्र तीन इंच नीचा होता है। इसी प्रकार प्रत्येक पात्र पहिले की अपेक्षा तीन इंच नीचा होता है। विद्युत्-द्रव प्रथम पात्र से निचले पात्रों में बहता हुआ क्रमशः अंतिम पात्र में पहुँच जाता है। जहाँ से पंप द्वारा उसे पुनः प्रथम पात्र में वापस भेज दिया जाता है।

वोल्टेज लगभग ०.२ वोल्ट तथा विद्युद्धारा का घनत्व २० एंपियर प्रति वर्गफुट होता है। इसी प्रकार यदि ३′×३′×२″ वाले ६० एनोड का एक साथ वैद्युत् विश्लेषण हो तो प्रत्येक पात्र पीछे २०×६०×३×३ = १०८०० एंपियर विद्युद्धारा की आवश्यकता पड़ती है।

---

१. Electrolyte—'विद्युद्द्रव्य'—डा० रघुवीर।

वैद्युत् विश्लेषण की प्रक्रिया में लोहा, कोबाल्ट, निकल, आर्सेनिक, एंटीमनी आदि घुल जाते हैं तथा घोल में मौजूद रहते हैं परंतु चाँदी, सोना, प्लेटिनम आदि नहीं घुलते। ये तलछट के रूप में नीचे बैठ जाते हैं। विद्युत् द्रव में अशुद्धियों की विद्यमानता से उसका विद्युत् अवरोध बढ़ जाता है। अशुद्ध विद्युत् द्रव को हटाकर शुद्धि के लिए भेज दिया जाता है तथा ताजा द्रव पात्रों में भरा जाता है।

पात्र के निम्न भाग से समय-समय वर तलछट निकाली जाती है। इसमें चाँदी, सोना, प्लेटिनम आदि बहुमूल्य धातुएँ तथा कुछ ताँबा होता है। वे सब अलग कर लिए जाते हैं।

क्रमानुगत पद्धति

इसमें एक ही एलेक्ट्रोड एक ओर एनोड तथा दूसरी ओर कैथोड का काम करता है। इस प्रकार इसमें शुद्ध ताँबे के कैथोड की आवश्यकता नहीं पड़ती।

ताँबे का जलीय धातु विज्ञान

आजकल आर्द्र पद्धति से ताँबे के उत्पादन का प्रचार बढ़ता जा रहा है। इसके द्वारा निम्नकोटि के खनिज से ताँबा निकल सकता है। संप्रति केवल आक्साइड खनिजों का इस पद्धति द्वारा उपयोग होता है।

आर्द्र पद्धति में निम्नलिखित प्रधान क्रियाएँ होती हैं :—

१. दलन (चूर्ण करना)।
२. विलयन (घोल बनाना)।
३. प्रक्षालन (धोना)।
४. अवक्षेपन (Precipitation)।

दलन

खनिज को चूर्ण करने के कारण ये हैं—बड़े टुकड़े की सतह सीमित होती है खंडित होने पर अनेक टुकड़े हो जाते हैं जिससे अधिक सतह घोल के संपर्क में आ सकती है। दूसरा कारण यह है कि खनिज के टुकड़े विजातीय द्रव्यों से घिरे रहते हैं जिन पर घोल का प्रभाव नहीं होता। विचूर्ण हो जाने पर खनिज को घोल के संपर्क में आने का अधिक अवसर मिलता है। इससे घोल शीघ्र बनता है।

विलयन

घोल बनाने के गंधकाम्ल, लवणाम्ल (HCl), फेरससल्फेट तथा अमोनियम कर्बोनेट एवं अमोनियम हाइड्राक्साइड का मिश्रण प्रधानता से काम में लाया जाता है। इनमें गंधकाम्ल सबसे सस्ता होता है तथा उसका प्रभाव भी तीव्र होता है। गंधकाम्ल के क्षीण घोल का प्रभाव मंद होता है किंतु उसमें अशुद्धियाँ कम मात्रा में घुल पाती हैं।

घोल बनाने की क्रिया खदान के पास ही किफायत के साथ कर ली जाती है।

प्रक्षालन •

घोल बनाकर उसे अघुलनीय कणों से अलग कर लिया जाता है तथापि इन बचे हुए कणों के बीच में ताँबा युक्त घोल की बूँदें फँसी रह जाती हैं। इसलिए इस घोल को प्राप्त करने के हेतु बचे हुए कणों को धोना आवश्यक होता है।

अवक्षेपन

घोल में विद्यमान ताँबे का अवक्षेपन वैद्युत् विश्लेषण द्वारा, लोहे, सल्फर डाइ आक्साइड या हाइड्रोजन सल्फाइड के द्वारा किया जाता है। वैद्युत् विश्लेषण से बहुत शुद्ध ताँबा मिलता है। इसके लिए सीसे या फेरोसिलिकन के अघुलनशील एनोड प्रयुक्त किये जाते हैं। क्रिया की सफलता बढ़ाने के लिए घोल में मौजूद अशुद्धियाँ, विशेषतः फेरिक लवण अलग कर दिये जाते हैं।

लोहा घोल में ताँबे की जगह ले लेता है। अतः स्वयं घुल जाता है और ताँबे को अवक्षेप कर देता है।

इंडियन कापर कार्पोरेशन (घटशिला, बिहार) द्वारा ताँबा निकालने की पद्धति।

घटशिला (बिहार राज्य) में बी० एन० रेलवे पर स्थित छोटा स्थान है। यह टाटा नगर से २३ मील दूर है तथा सुवर्ण रेखा नदी के किनारे बसा है। यहाँ भारत का ताँबे का एकमात्र कारखाना स्थित है।

करीब ६ मील दूर स्थित मोजाबानी की खानों से खनिज (चैल्कोपायराइट) ऊँचे खम्भों पर घूमने वाली रस्सियों (Aerial Ropeway) द्वारा लाया जाता है। रस्सी में बक्सनुमा पात्र हुक द्वारा फँसा दिये जाते हैं। रस्सी बराबर चलती रहती है। इस प्रकार प्रति घंटे ६० टन खनिज कारखाने में पहुँचता है। खनिज में पहिले २.५—३ प्रतिशत ताँबा रहता था पर अब १.६—१.७ प्रतिशत ही निकलता है। इस कारखाने की पद्धति निम्नलिखित चित्र (Flow Sheet) में वर्णित है।

गलाने के पहिले खनिज की ड्रेसिंग की जाती है। चूर्ण किये पदार्थ को हार्डिंज मिल में पीसकर ५०-२०० मेश तक बारीक पीसा जाता है। उसके बाद 'फ्राथ फ्लोटेशन (Froth Flotation) सेल में खनिज के जलीय घोल को (जिसमें पाइन तेल और ज़ेंथेट मिला रहता है) वायु द्वारा विलोड़ित कर सल्फाइड खनिज को घोल की सतह पर फेन के साथ अलग कर लिया जाता है। तलछट को सुवर्ण रेखा नदी के किनारे फेंक दिया जाता है। फेनिल पदार्थ को 'डॉर थिक्नर' (Dorr Thickener) में गाढ़ा कर जल की मात्रा ४० प्रतिशत कर दी जाती है। फिर 'ओलिवर फिल्टर' (Oliver Filter) में शोषण कर जल की मात्रा १ प्रतिशत तक घटा दी जाती है।

इस खनिज का आधा भाग 'मल्टी हार्थ रोस्टिंग फर्नेस' (Multi Hearth Roastig Furnace) में रोस्ट किया जाता है तथा शेष आधा सीधे रिवर्बेरेट्री फर्नेस में भेजा जाता है। इसमें कन्वर्टर तथा परिशोधक फर्नेस का धातुमैल भी मिला दिया जाता है। अलग से फ्लक्स नहीं मिलाया जाता क्योंकि रोस्टिंग के दौरान में कुछ लोहे का सल्फाइड बन जाता है और यही रिवर्बेरेट्री फर्नेस में मौजूद SiO_2 के साथ मिलकर धातुमैल तैयार करता है। इस फर्नेस में मैट तैयार होता है जिसमें ताँबे की मात्रा ५० प्रतिशत होती है। कन्वर्टर में इस मैट का धमन कर ९७.५ प्रतिशत ताँबा युक्त 'ब्लिस्टर ताँबा' बनाया जाता है। अंत में परिशोधन फर्नेस में शुद्ध ताँबा (९९.५ प्रतिशत) तैयार किया जाता है। इस ताँबे को जस्ते के साथ मिलाकर ६०-४० कोटि का (अर्थात् ६० प्रतिशत ताँबा तथा ४० प्रतिशत जस्ता) पीतल बनाया जाता है। पीतल को बेलकर चद्दर और छड़ें तैयार की जाती हैं।

———

अध्याय १६

अलुमीनियम

अलुमीनियम के भौतिक गुण

यह श्वेत रंग की हल्की धातु है। साधारण अलुमीनियम का आपेक्षिक घनत्व २.७ होता है। इसका द्रवणांक ६५७° सें० तथा क्वथनांक १८८०° सें० है। बेले हुए अलुमीनियम के तनाव की दृढ़ता ७ से १५ टन प्रति वर्ग इञ्च होती है। यह घनवर्धनीय तथा तान्तव होता है। इसकी विद्युत् संचालकता तांबे की विद्युत् संचालकता के ६० प्रतिशत के बराबर होती है। हल्केपन के कारण यह विद्युत् उद्योग में तांबे का तथा अन्य उद्योगों में इस्पात का स्थान लेता जा रहा है।

अलुमीनियम के धातुसंकर

अलुमीनियम के धातुसंकर हल्केपन और दृढ़ता के सुन्दर योग के कारण बहुत महत्वपूर्ण हो गये हैं। यंत्र विज्ञान में उनका उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। हल्केपन में अलुमीनियम का प्रतिद्वन्द्वी मेग्नीशियम है परंतु वह अधिक मूल्य वान है और अधिक परिमाण में नहीं मिलता। उसको गलाने में कई कठिनाइयाँ सामने आती हैं। अम्लादिकों के प्रभाव से वह खराब (Corrode)हो जाता है।

अलुमीनियम की दृढ़ता साधारणतः कम होती है अतः यंत्र विज्ञान के विशिष्ट क्षेत्रों में ही उसका उपयोग होता है। शुद्ध धातु के रूप में उसका प्रधान उपयोग इस्पात के अनाक्सीकरण में, थरमिट वेल्डिंग (Thermit welding) पद्धति में, रसोई तथा रासायनिक पात्रों के निर्माण में, रंग (Pigment) के रूप में तथा विद्युत् उद्योग में होता है।

अलुमीनियम कई धातुओं के साथ धातुसंकर बनाता है यथा—तांबा, सिलिकन, मैग्नीशियम, मैंगेनीज़, निकल, व्हेनेडियम तथा टंग्स्टन। इनमें से एक, दो या तीन तत्व अलुमीनियम के साथ मिश्रित किये जाते हैं।

यातायात तथा वायुयान के यंत्रों में काम आने वाले अलुमीनियम के धातुसंकरों में निम्नलिखित गुण होते हैं।

१—वे शुद्ध अलुमीनियम की अपेक्षा बहुत अधिक दृढ़ होते हैं। कुछ तो उससे ४ या ५ गुने दृढ़ होते हैं।

२—उनमें कठोरता, आकस्मिक आघात सहने की क्षमता तथा बारबार मोड़ने पर न टूटने का गुण अलुमीनियम की अपेक्षा अधिक होता है।

३—वे ढाले जा सकते हैं तथा उनमें से अधिकांश बेले या पीटे जा सकते हैं।

४—शुद्ध अलुमीनियम की अपेक्षा उन पर अम्लादिकों का प्रभाव कम पड़ता है अर्थात् उनका संक्षारणावरोध अधिक होता है।

५—उच्च तापमान पर उनमें दृढ़ता कायम रहती है।

अलुमीनियम के लगभग सभी त्रयी (Ternary) धातुसंकरों अर्थात् जिनमें अलुमीनियम के अतिरिक्त दो अन्य धातुएँ होती हैं, पर तापोपचार हो सकता है। तापोपचार के बाद इनकी दृढ़ता एक सीमा तक बढ़ती जाती है। इस क्रिया का नाम 'वयस्थापन' या 'एजिंग' (Ageing) है। यह दृढ़ता $CuAl_2$, Mg_2Si इत्यादि यौगिकों के अवक्षेपन के कारण होती है। धातुसंकर को ५०० ° सें० पर गरम किया जाता है जिससे ये तत्व धातु में घुलमिल जाते हैं। फिर उसे बुझाया जाता है तथा कम तापमान (सामान्य तापमान से लेकर १५० ° सें० तक) पर गरम किया जाता है। इस कम तापमान पर कठोरता उत्पन्न करने वाले तत्वों के सूक्ष्मकण अवक्षेपित होकर धातुसंकर के रवों की सीमा रेखा पर फैल जाते हैं। इस प्रकार धातुसंकर की कठोरता बढ़ जाती है।

अलुमीनियम के प्रधान धातुसंकरों का विवरण निम्नलिखित सूची में दिया गया है।

नाम	बनावट	यांत्रिक गुण	सामान्य गुण	उपयोग	विशिष्ट
अल्पाक्स या सिलूमिन	Si ८ से १५% शेष Al.	१२ से १४ टन प्रति वर्ग इञ्च। लम्बप्रसार ७ प्रतिशत। ब्रि० ह० सं० ६०	चिल या डाइकास्टिंग के लिए अति उत्तम धातुसंकर। ठंडा होने पर कम सिकुड़ता है। उच्चतापमान पर भंजनशील नहीं होता। तांतव होता है तथा तापोपचार द्वारा कठोर नहीं होता। संक्षारणावरोधक होता है।	साधारण ढलाई जैसे—कांप्रेसर, जलपंप, यातायात यंत्रों के हिस्से, सिलिन्डर हैड आदि में उपयोग होता है। जहां संक्षारण का अवसर हो वहाँ इसका उपयोग होता है।	ढलाई का तापमान करीब ७०० ° सें. होता है।

नाम	बनावट	यांत्रिक गुण	सामान्य गुण	उपयोग	विशिष्ट
लाटाल (Lautal)	Cu ४% Si २% Al शेष।	तापोपचार के बाद तनाव की दृढ़ता २४ टन प्र०व०इं०। २० प्रतिशत लम्ब प्रसार। ब्रिनेल१००।	४८०° सें० तापमान पर यह 'फोर्ज' किया जा सकता है तथा इसकी चद्दरें बेली जा सकती हैं।	रिविट, पेंच, कील इत्यादि बनाने में इसका उपयोग होता है।	पानी में बुझाने के बाद १२९° सें० पर १६घंटे तक एजिंग करने से ये गुण प्राप्त होते हैं।
वाइ धातु-संकर (Y-alloy)	Cu ४% Ni २% Mg १·५% Al शेष।	तापोपचार के बाद तनाव की दृढ़ता २० टन प्र० व० इं०। लंब प्रसार ५प्रतिशत। ब्रिनेल १०५।	निकल मिलाने से उच्चतापमान पर इसकी दृढ़ता तथा मरोड़ने पर न टूटने की क्षमता कायम रहती है तथा वायु मण्डल और सामुद्रिक जल के प्रभाव से इस पर धब्बे नहीं पड़ने पाते।	'फोर्ज' होने के बाद वायुयान तथा यातायात के विभिन्न हिस्सों में जैसे कनेक्टिंग राड, पिस्टन, सिलिन्डर हैड इत्यादि में इसका बहुत उपयोग होता है।	तापोपचार तथा तप्त क्रिया का तापमान ५२०° सें० होता है।

नाम	बनावट	यांत्रिक गुण	सामान्य गुण	उपयोग	विशिष्ट
ड्यूरैलुमिन (Duralumin)	Cu ४% Mn ०·६% Mg ०·५% Al शेष	तापोपचार के बाद तनाव की दृढ़ता ३५ टन प्र०व० इं० । लम्ब प्रसार १५ प्रतिशत ब्रिनेल १२०	ढले रूप में कभी उपयोग नहीं होता। सर्वोत्तम गुण यांत्रिक क्रिया द्वारा तथा तदुपरांत तापोपचार द्वारा विकसित होते हैं।	यातायात तथा वायुयान की बनावट में बहुत उपयोग होता है-जैसे मोटर-कार की बाडी, वायुयान के गर्डर, पंखे इत्यादि।	यह अलुमीनियम का सबसे महत्वपूर्ण धातुसंकर है।

अलुमीनियम की एनोडाइज़िंग

एनोडाइज़िंग के द्वारा अलुमीनियम तथा उसके धातुसंकरों की संक्षारण से भली भाँति रक्षा हो सकती है। इसके लिए लकड़ी के एक पात्र में जिसके अन्दर सीसे की लाइनिंग रहती है १५% गंधकाम्ल या ३% क्रोमिकाम्ल भर दिया जाता है। अलुमीनियम के जिस पदार्थ को एनोडाइज़ करना हो उसे अच्छी तरह पालिश किया जाता है और फिर स्निग्धता (Greasiness) हटा दी जाती है। इस पदार्थ को पात्र में डुबाकर धन छोर से जोड़ दिया जाता है अर्थात् पदार्थ को एनोड बना दिया जाता है तथा ऋण छोर पर शुद्ध अलुमीनियम, सीसा या निष्कलंक (स्टेनलेस) इस्पात का कैथोड लगाया जाता है। कम वोल्टेज पर डी० सी० विद्युत् धारा भेजने पर नवजात (Nascent) आक्सीजन एनोड को आक्रांत करता है तथा एनोड की सतह पर आक्साइड की पतली परत बन जाती है। यह परत कड़ी होती है तथा मूल धातु से अलग नहीं की जा सकती। यह कठोर और दृढ़ परत संक्षारित (Corrode) नहीं होती। आरंभ में इस परत के सूक्ष्म छिद्र (Pores) खुले रहते हैं अतः रंग के घोल में डुबाने पर रंग उनमें प्रवेश कर जाता है। बाद में छिद्रों को गरम जल या भाप द्वारा 'सील' (बंद) कर दिया जाता है। उसके बाद रंग कभी नहीं छूटता न पदार्थ की चमक ही कम होती है।

अलुमीनियम का धातु विज्ञान

अलुमीनियम उद्योग की वर्तमान प्रगति का श्रेय हाल और हेरोल्ट नामक धातु विशारदों को है। सन् १८८६ में हाल ने अमेरिका में तथा हेरोल्ट ने फ्रांस में ऐसे द्रव घोल का आविष्कार किया जिससे विद्युत् विश्लेषण द्वारा अलुमीनियम प्राप्त किया जा सका। शुद्ध एलूमिना (Al_2O_3) का विद्युत् विश्लेषण अव्यवहार्य होता है क्योंकि उसका द्रवणांक २०००° सें० से अधिक है। हाल और हेरोल्ट ने यह सुझाया कि पिघले क्रायोलाइट (Cryolite) में ८००° से ६००° सें० तापमान पर पर्याप्त परिमाण में एलूमिना घुल जाता है और इस घोल का विद्युत् विश्लेषण कर अलुमीनियम प्राप्त होता है।

प्रति टन अलुमीनियम के लिए निम्नलिखित चार्ज की आवश्यकता पड़ती है। बाक्साइट ४ टन, क्रायोलाइट ०.१ टन, कार्बन एलेक्ट्रोड ०.७ टन, फ्लक्स (केल्शियम और अलुमीनियम फ्लोराइड) ०.२ टन, कास्टिक सोडा ,०.२ टन, कोयला ५ टन तथा बिजली २५००० यूनिट (K. W. H.)।

बाक्साइट

बाक्साइट $Al_2O_3, 2H_2O$ है। यह संसार के अधिकांश भागों में पाया जाता है तथा अलुमीनियम प्राप्ति का एक मात्र साधन है। भारतवर्ष में यह पर्याप्त परिमाण में कटनी और बिलासपुर (म० प्र०), बेलगाँव तथा कोल्हापुर (बम्बई), राँची (बिहार) और काश्मीर में मिलता है। इन स्थानों के बाक्साइट खनिज के रासायनिक विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं।

	कटनी	बेलगाँव	कोल्हापुर	काश्मीर	राँची
SiO_2	१.२	३.०	१.४	५.०	०.३
TiO_2	८.८	५.०	६.३	...	७.४
Al_2O_3	६०.२	५८.०	६२.३	७५	६६.९
Fe_2O_3	२.६	...	२.६	...	५.९
H_2O	२५.४	...	२६.२	...	२१.४

क्रायोलाइट—यह अलुमीनियम और सोडियम का दोहरा फ्लोराइड

(Na_3AlF_6) है। यह ग्रीनलैंड में बहुत मिलता है और वहीं से सर्वत्र भेजा जाता है। कहीं-कहीं इसको संश्लेषण द्वारा (Synthetically) भी तैयार किया जाता है।

कार्बन एलेक्ट्रोड—कक्ष या सेल (वह पात्र जिसमें विद्युत् विश्लेषण द्वारा अलुमीनियम बनाया जाता है) की लाइनिंग तथा एलेक्ट्रोड शुद्ध ग्रेफाइट या पेट्रोलियम कोक द्वारा बनाये जाते हैं। कोक को पहिले ४५०° सें० पर गरम किया जाता है जिससे वाष्पशील (Volatile) पदार्थ अलग हो जाते हैं तथा कोक का घनत्व और विद्युत् संचालन बढ़ जाता है फिर इसको पीसकर ३ प्रतिशत पिच (Pitch कोलतार) मिलाया जाता है और साँचे में दबा कर एलेक्ट्रोड बनाया जाता है या आधुनिक सोडरबर्ग पद्धति में इसको इसी तरह काम में लाया जाता है। ये एलेक्ट्रोड १३००° सें० पर सेंके जाते हैं। यही पदार्थ सेल की दीवाल तथा फर्श की लाइनिंग में इस्तेमाल किया जाता है।

बिजली—एलूमिना से अलुमीनियम बनाने में अत्यधिक बिजली की आवश्यकता पड़ती है। वस्तुतः बिजली अलुमीनियम उद्योग का सबसे महत्वपूर्ण 'कच्चा माल' है, अतः वह कम खर्च में सुलभ होनी चाहिये। भारत के अधिकांश बाक्साइट खानों के समीप सस्ती बिजली अप्राप्य है इसीलिए अब तक उन स्थानों में अलुमीनियम उद्योग की स्थापना नहीं हो सकी है।

बाक्साइट की शुद्धि—बाक्साइट में बहुधा Fe_2O_3, SiO_2 तथा TiO_2 मौजूद रहते हैं। शुद्ध अलुमीनियम प्राप्त करने के लिये शुद्ध बाक्साइट का प्राप्त होना बहुत आवश्यक है। अशुद्ध एलूमिना का विद्युत् विश्लेषण लाभदायक नहीं होता। एलूमिना शुद्ध करने की कई पद्धतियाँ हैं जिनमें 'बेयर पद्धति' (Bayer's Process) बहुत प्रचलित है। पहिले खनिज के आध-आध इंच के टुकड़े कर लिये जाते हैं। यदि आवश्यक हो तो सिलिका अलग करने के लिए उन्हें धोते हैं। इन टुकड़ों को ५००°–६००° सें० पर कैल्साइन (calcine, गरम करना, पकाना) किया जाता है।

कैल्साइनिंग पात्र ८० या १०० फुट लम्बा और ७ या ८ फुट व्यास वाला होता है तथा एक ओर कुछ झुका रहता है। पूरा पात्र मन्द गति से घूमता है जिससे सब टुकड़े गरम गैस के सम्पर्क में अच्छी तरह आ जाते हैं तथा सरकते हुए नीचे की ओर अग्रसर होते हैं। कैल्साइनिंग कार्बनिक पदार्थों को दूर करने के लिए की जाती है क्योंकि ये पदार्थ अलुमीनियम हाइड्रेट के अवक्षेपन में बाधा पहुँचा सकते हैं। आधुनिक पद्धति में यह क्रिया बहुत आवश्यक नहीं समझी जाती।

कैल्साइन किये हुए टुकड़े बारीक पीसे जाते हैं और यदि उनमें सिलिका की मात्रा अधिक हो तो पीसते समय चूना (CaO) मिला दिया जाता है। यह चूना अघुलनशील कैल्शियम सिलिकेट बनाता है। इस बारीक चूर्ण को सोडियम हाइड्राक्साइड के ४१ प्रतिशत घोल में जिसका आपेक्षिक घनत्व १.४५ होता है, मिलाया जाता है। जिस पात्र में यह मिलाया जाता है उसमें विलोड़न के लिए पंखे लगे रहते हैं। पूरे घोल को अच्छी तरह विलोड़ित कर दूसरे पात्र में स्थानांतरित कर दिया जाता है। यह पात्र 'आटोक्लेव (Autoclave) कहलाता है। इसके चारों ओर नली में वाष्प दौड़ाई जाती है जिससे इसका तापमान १५०° से १६०° सें० रहता है। पात्र के अंदर ५० से ७० पौंड प्रति वर्ग इंच का दबाव रहता है। बाक्साइट का Al_2O_3 घोल के $NaOH$ से आक्रांत होकर सोडियम एलूमिनेट बनाता है :—



$$Al_2O_3 + २NaOH = २NaAlO_2 + H_2O$$

अधिकांश SiO_2, FeO तथा TiO_2, $NaOH$ से अप्रभावित रहते हैं। कुछ सिलिका घुल जाता है तथा एलूमिना और सोडियम आक्साइड को आक्रांत करता है। जिससे अघुलनशील सोडियम अलुमीनियम सिलिकेट बनता है। सिलिका को घुलने से रोकने के लिये बाक्साइट में चूना मिलाया जाता है जिससे बाद में अघुलनशील कैल्शियम सिलिकेट बनता है तथा एलूमिना नष्ट होने से बच जाता है। इस रीति से लगभग ६० प्रतिशत Al_2O_3 घुल जाता है।

इसके बाद घोल को १६००० घन फुट आयतन वाले लौह पात्रों में स्थानांतरित किया जाता है। उसमें पानी मिलाकर उसका आपेक्षिक घनत्व १.४५ से १.२३ किया जाता है तथा चार-पाँच घंटे तक निथरने दिया जाता है जिससे ठोस अशुद्धियाँ अलग हो जाती हैं। इस प्रकार अलग होने वाले पदार्थ में लौह आक्साइड (Fe_2O_3), सिलिका, टाइटेनियम आक्साइड तथा कुछ अघुल अलूमिना रहता है। उसका रंग लाल होता है अतएव उसे 'लाल मिट्टी' (Red Mud) कहा जाता है। लाल मिट्टी बहुधा फेंक दी जाती है लेकिन फेंकने के पहिले उसे धोकर सोडियम हाइड्राक्साइड अलग कर लिया जाता है। जर्मनी में लाल मिट्टी से लाल रंग (पेंट) तैयार किया जाता है।

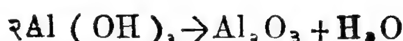
अवक्षेपन

घोल को अब फिल्टर प्रेस द्वारा छानकर ठोस अवलंबित (Suspended) पदार्थों को अलग कर लिया जाता है। स्वच्छ द्रव को लोहे के अवक्षेपक पात्रों में

भेजा जाता है। इनमें द्रव के विलोड़न के लिये पत्तियाँ लगी रहती हैं। ताज़ा तैयार किया हुआ सोडियम हाइड्राक्साइड का थोड़ा सा घोल द्रव में मिला कर पूरे द्रव को विलोड़ित किया जाता है। अलुमीनियम हाइड्राक्साइड अवक्षेपित होता है। इस क्रिया में ६० घंटे तक का समय लग जाता है।

अवक्षेपित अलुमीनियम हाइड्राक्साइड नीचे बैठ जाता है। उसे अलग कर धोया जाता है। तत्पश्चात् फिल्टर प्रेस द्वारा उसका अधिकांश पानी अलग किया जाता है। प्रायः सूखे पदार्थ को निस्तपन के लिये भेजा जाता है। काम में आये हुए सोडियम हाइड्राक्साइड को वाष्पीभवन (Evaporation) द्वारा गाढ़ा कर उसका आपेक्षिक घनत्व १.४५ किया जाता है और उसे पुनः काम में लाया जाता है।

निस्तपन (Calcination)



$$२Al(OH)_3 \rightarrow Al_2O_3 + H_2O$$

निस्तपन नलीनुमा लम्बी और भट्ठी में २२००° से १३००° सें० तापमान पर किया जाता है। इस भट्ठी की लंबाई लगभग १०० फुट तथा व्यास ८ फुट होता



चित्र सं० ६१ कैल्साइनर

है। इसका झुकाव आगे की ओर होता है। ऊपर से नीचे की ओर अलुमीनियम हाइड्राक्साइड तथा नीचे से ऊपर की ओर ज्वाला जाती है। (देखिये चित्र सं० ६१)

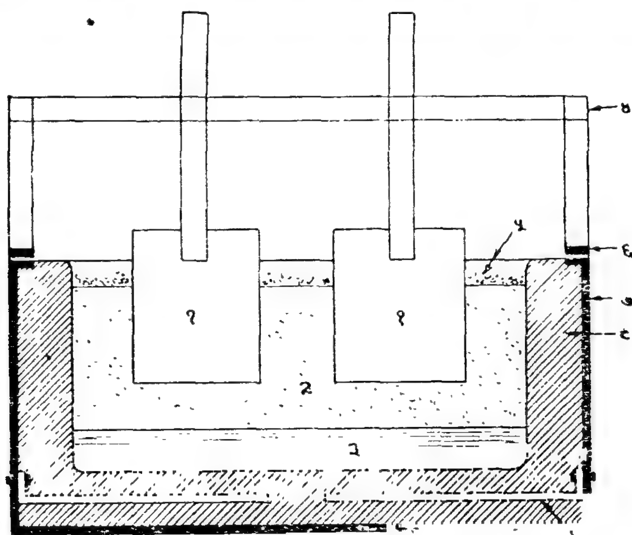
निस्तपन के बाद अलूमिना में ९९.५ प्रतिशत Al_2O_3 रहता है। अशुद्धियों में ०.२ प्रतिशत तक यांत्रिक (Mechanical) जल, ०.५ प्रतिशत

तक यौगिक जल, ०.२ प्रतिशत तक सिलिका, ०.१ प्रतिशत तक लौह (फेरिक) आक्साइड रहता है। अन्य अशुद्धियाँ बहुत कम होती हैं। निस्तपन के पश्चात् अलूमिना विद्युत् प्रक्रिया के लिये पूर्णतः तैयार हो जाता है।

यदि बाक्साइट में सिलिका की मात्रा अधिक हो तो इस पद्धति से अधिक लाभ नहीं होता क्योंकि खनिज में मौजूद प्रति सेर सिलिका पीछे १.५ सेर अलूमिना तथा दो सेर सोडा नष्ट होता है। इस कारण जिस बाक्साइट में ५ प्रतिशत से अधिक सिलिका हो उसका उपचार बेयर पद्धति से नहीं होता। इस पद्धति से सामान्यतः ३ प्रतिशत से कम सिलिका पसन्द किया जाता है।

अलूमिना का लघ्वीकरण

कैल्साइन किये हुए Al_2O_3 से विद्युत् विश्लेषण द्वारा अलुमीनियम निकाला जाता है। यह क्रिया कार्बन की लाइनिंग युक्त कक्ष (सेल) में



चित्र सं० ६२ अलुमीनियम बनाने की भट्ठी। १—कार्बन एनोड, २—चार्ज, ३—द्रव अलुमीनियम।

विद्युद्धारा प्रवाहित कर सम्पन्न की जाती है। बिजली दो काम करती है :— १. एलूमिना का वैद्युत् विश्लेषण तथा २. तापोत्पादन द्वारा एलेक्ट्रोलाइट (Electrolyte) को द्रव रूप में रखना।

अलुमीनियम बनाने की फर्नेस का चित्र नीचे दिया है। इसमें $\frac{3}{8}$ इंच मोटे इस्पात की चद्दर का एक आयताकार खुला हुआ कक्ष होता है जिसकी लंबाई ८ से १० फुट, चौड़ाई ४ से ५ फुट तथा गहराई ढाई फुट होती है।

पहिले इसमें अग्निप्रतिरोधक ईंटों की लाइनिंग दी जाती है तथा उसके ऊपर पेट्रोलियम कोक की। लाइनिंग के बाद गहराई १२ से १५ इंच रहती है। पेंदे की कोक लाइनिंग के अन्दर लोहे की छड़ें धँसाई रहती हैं जो कैथोड का काम देती हैं। एनोड दो प्रकार के होते हैं :—१. कार्बन के कई एलेक्ट्रोड जो दाँतों द्वारा नीचे ऊपर किये जा सकते हैं तथा २. पेट्रोलियम कोक का समूचा ब्लाक (Block) जो लंबाई चौड़ाई में सेल से कुछ ही छोटा होता है। इसे सोडरबर्ग एलेक्ट्रोड कहा जाता है। इस प्रकार का एनोड अधिक प्रचलित हो गया है। सेल के पेंदे में टैप छिद्र रहता है। कहीं कहीं धातु चमचानुमा धरियों द्वारा बाहर निकाली जाती है।

सेल की कार्यप्रणाली

अलुमीनियम निर्माण की सफलता बाथ के नियन्त्रण पर निर्भर रहती है। बाथ का रासायनिक संगठन तथा हालत ऐसी रहनी चाहिये कि :—(१) उसमें २० प्रतिशत Al_2O_3 घुला रहे। (२) Al_2O_3 की अपेक्षा उसका विबन्धन शीघ्र न हो। (३) बाथ और घुला हुआ Al_2O_3 कम तापमान (८००°–९००° सें०) पर द्रव रूप में रहे। (४) बाथ का आपेक्षिक घनत्व अलुमीनियम के आ० घ० से कम हो जिससे अलुमीनियम नीचे बैठता जाए। (५) बाथ में ठोस विबन्ध पदार्थ (Decomposition Product) न बने। (६) वह बिजली का अच्छा परिचालक हो तथा (७) अनाक्सीकृत एलूमिना से उसकी रासायनिक क्रिया न हो।

अच्छे बाथ की बनावट :—

AlF_3—५९ प्रतिशत
NaF —२१ प्रतिशत
CaF_2—२० प्रतिशत

बाथ के विविध घटकों का आ० घ० :—

	ठोस	द्रव
साधारण अलुमीनियम	२·६६	२.५४
क्रायोलाइट	२.९२	२.०८
Al_2O_3 से संयुक्त क्रायोलाइट	२.९०	२.३५

वोल्टेज—साधारण वोल्टेज ५ से ७ तक रहती है। प्रत्येक फर्नेस में अपने आकार के अनुसार १०,००० से २०,००० एम्पियर बिजली लगती है। विद्युत् प्रवाह का घनत्व कैथोड क्षेत्रफल के प्रति वर्ग फुट पीछे ५०० से ७०० एंपियर होता है।

उत्पादन—पहिले एनोड नीचे कर दिये जाते हैं और क्रायोलाइट तथा ५ प्रतिशत एलूमिना या केवल क्रायोलाइट फर्नेस में चार्ज करके बिजली प्रवाहित की जाती है। चार्ज गलने लगता है। जब वह पिघल जाता है तब और चार्ज मिलाकर फर्नेस पूरी पूरी भर दी जाती है।

अब बाथ की शक्ति (Strength) कायम रखने के लिये आवश्यक परिमाण में एलूमिना थोड़ी थोड़ी देर पर चार्ज किया जाता है। यदि एलूमिना अधिक होता है तो बाथ लेई की तरह गाढ़ा हो जाता है तथा अलुमीनियम नीचे न बैठकर ऊपर ही उतराता रहता है जिससे विद्युत् 'शार्ट सर्किट' (Short Circut) हो जाता है। यदि एलूमिना की मात्रा बहुत कम हो जाती है तो चूँकि विद्युद्धारा की मात्रा अपरिवर्तित रहती है इसलिए वोल्टेज ७ से बढ़कर २० तक पहुँच जाती है। इसका निर्देश तुरन्त सुरक्षावत्ती (Pilot lamp) तथा वोल्टमीटर से मिल जाता है। जब यह स्थिति आ जाती है तब तेज गन्ध वाली फ़्लोरीन गैस बनने लगती है और साथ ही कैथोड पर सोडियम जमने लगता है। यह क्रायोलाइट के विद्युत् विश्लेषण के कारण होता है। इस प्रकार की असाधारण स्थिति वाली फर्नेसों में सोडियम निर्मित होकर बाथ की सतह पर पीली ज्वाला के साथ जलने लगता है। फर्नेस को ठीक हालत में लाने के लिये एलूमिना तब तक चार्ज किया जाता है जब तक कि वोल्टेज कम होकर सामान्य स्तर पर (५ से ७ वोल्टेज) न आ जाए। उसके बाद अलुमीनियम का उत्पादन ठीक गति से चलने लगता है।

———

अध्याय २०

राँगा

राँगा मुलायम, चमकदार तथा सफेद रंग की धातु है। इसको सरलता से इच्छित आकार प्रदान किया जा सकता है। इससे पतली चद्दरें और वरक बनाये जाते हैं, यद्यपि पतले तार नहीं खींचे जा सकते। इसके मणिमीकरण का तापमान बहुत कम होता है इसलिए बिना एनील किये (बिना तपाये) इस पर बहुत अधिक काम किया जा सकता है।

भौतिक गुण—राँगा दो रूपों (Allotropic forms) में मिलता है। सफेद या 'बीटा' राँगा जो साधारणतः उपयोग में आता है तथा भूरा 'आल्फा' राँगा। आल्फा राँगा निम्न तापों पर स्थायी रहता है। यह भंजनशील होता है। जब सफेद राँगे की छड़ मोड़ी जाती है तब विशेष प्रकार की 'राँगे की ध्वनि' (Cry of tin) निकलती है। यह ध्वनि रवों के घर्षण के कारण होती है। इसका द्रवणांक २३२° सें० पर उड़ने लगता है। शुद्ध रांगे का आपेक्षिक घनत्व ७.२९ है।

उपयोग—रांगे पर मोर्चा नहीं लगता। अम्ल या क्षारादि का प्रभाव भी बहुत कम पड़ता है इस कारण इसका उपयोग इस्पात पर पतली परत (कलई) लगाने में बहुत अधिक होता है। संसार भर के राँगे का ४० प्रतिशत इस काम में खर्च होता है। 'टीन' के डब्बे, कनस्तर इत्यादि राँगे की कलई युक्त इस्पात की चद्दर से ही बनते हैं। राँगे की पतली परत या कलई कई प्रकार से लगाई जाती। द्रव राँगे में इस्पात को डुबाकर, विद्युत् विश्लेषण द्वारा तथा फुहार (Spray) द्वारा। रसोई के बर्तनों पर कलई करने की पद्धति सभी जानते हैं। वैद्युत् तांबे के तार, जिनपर 'वल्केनाइज्ड' रबर द्वारा इन्सुलेशन चढ़ाना हो, पहिले रांगे द्वारा कलई कर लिए जाते हैं जिससे मौजूद गन्धक से ताँबा खराब न हो।

राँगा महँगा होने के कारण बहुधा उसमें सीसा मिलाकर कलई की जाती है राँगे का दूसरा महत्वपूर्ण उपयोग टाँका (Solder) बनाने में होता है। राँगा युक्त टाँकों में उसका अनुपात ३० से ६५ प्रतिशत तक होता है। राँगे के दूसरे धातुसंकर सफेद बेयरिंग धातु, प्यूटर, टाइप बनाने की धातु;

अल्प तापमान पर गलनेवाले धातुमेल तथा काँसा हैं। शुद्ध राँगे की पन्नी मक्खन इत्यादि खाद्य पदार्थ लपेटने के काम में आती है।

राँगे के धातुसंकर

	राँगा	एंटिमनी	ताँबा	अन्य	उपयोग	विशिष्ट
प्यूटर और ब्रिटानिया धातु (Puter and Britania Metal)	८०	...	...	सीसा २०	कलापूर्ण बर्तन	ये धातुएँ नरम तथा चाँदी के समान सफेद होती हैं।
	९४	५	१			
सफेद धातु या एंटीफ्रिक्शन	८२	१२	६	सीसा तथा जस्ता १ से ३३प्र० श०	एंजिन तथा मशीनरी के बेयरिंग की लाइनिंग	राँगे का सबसे महत्वपूर्ण धातु-संकर। इसकी बनावट विभिन्न प्रकार की होती है।
धातु	५३	११	२			
टाँका	५० से ६७	...	...	सीसा ५० ३३	डब्बे इत्यादि जोड़ने में उपयोग होता है।	सीसे की मात्रा बढ़ने के साथ द्रवणांक भी बढ़ने लगता है।

राँगे का खनिज—राँगे का सबसे महत्वपूर्ण खनिज केसिटेराइट (Cassiterite) है। शुद्ध केसिटेराइट में ७८·६ प्रतिशत राँगा होता है। इसके जमाव मलाया, ईस्ट इंडीज़, स्याम, बोलीविया, नाइजीरिया, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रिका तथा इंग्लैंड में है। भारत में यह कहीं-कहीं (हजारीबाग जिले

के डोम चांच तथा चपटुंड और नरुंग में) मिलता है। बर्मा में यह बहुतायत से मिलता है। बर्मा प्रतिवर्ष ४००० टन 'कन्सेट्रेट' (Concentrate) बनाकर शोधन के लिए मलाया भेजता है। संसार में प्रतिवर्ष २१०००० टन राँगा उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष ३००० टन राँगा खर्च होता है और सब का सब मलाया से आता है।

राँगे का धातु विज्ञान

खनिज में से राँगा शुष्क या तापीय पद्धति द्वारा निकाला जाता है। जलीय या वैद्युत् पद्धतियों का उपयोग स्क्रैप में से राँगा निकालने के काम में होता है।

राँगे के खनिज की ड्रेसिंग

राँगे के खनिजों में बहुधा राँगे का अनुपात इतना कम होता है कि खनिज से सीधे धातु नहीं निकाली जा सकती। उसमें १.२ प्रतिशत राँगा होता है अतः गलाने के पहिले ड्रेसिंग द्वारा राँगे का अनुपात बढ़ाया जाता है। खनिज को गलाने में कम से कम धातुमैल बनाना चाहिये। अतः उसमें विजातीय द्रव्य (सिलिका या चूना) बहुत अधिक नहीं होना चाहिये। खनिज के टुकड़ों को पहिले हाथ से चुन लिया जाता है फिर विविध यांत्रिक क्रियाओं द्वारा अधिक आपेक्षिक घनत्ववाले कैसिटेराइट को अलग किया जाता है।

राँगे की शिला का उपचार

(१) राँगे की शिला विजातीय द्रव्य में बहुत बारीक आकार में वितरित रहती है। साधारणतः राँगा युक्त पदार्थ को ०.०५ इंच आकार के छोटे टुकड़ों में स्टैंप मिल (Stamp mill) में पीसा जाता है।

(२) पिसे हुए पदार्थ को विविध प्रकार से धोकर हल्के विजातीय द्रव्य को अलग किया जाता है। भारी धातु युक्त पदार्थ नीचे बैठ जाते हैं। इनमें कभी कभी लौह पायराइटीज़, ताम्र पायराइटीज़ तथा वुल्फ्रम (टंग्स्टन) वर्त्तमान रहते हैं।

फ्लोटेशन द्वारा इन गंधक युक्त पदार्थों को सरलता से अलग किया जा सकता है। बहुधा गंधक और आर्सेनिक को रोस्टिंग द्वारा अलग किया जाता है।

(३) रोस्टिंग—रोस्टिंग हाथ द्वारा संचालित रिवर्बेरेट्री फर्नेस या घूमने वाली फर्नेसों में ६००° से ७००° सें० पर की जाती है। रोस्टिंग में प्रतिटन कंसेंट्रेट पीछे ढाई हंडरवेट कोयला लगता है।

रोस्टिंग की प्रक्रिया में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं :—

(क) पायराइट का विबंधन होकर SO_2 तथा आर्सेनियस आक्साइड (AS_2O_3) उत्पन्न होते हैं। AS_2O_3 बाहर जानेवाली गैसों में जम जाता है तथा अलग कर लिया जाता है।

(ख) यदि रोस्टिंग का तापमान कम रहता है तो पायराइटीज़ के लोहे तथा तांबे का आक्साइड (और कुछ सल्फेट) में परिवर्तन हो जाता है।

(ग) SnO_2 कुछ अंश सल्फेट बन जाता है। अधिकांश अपरिवर्तित रहता है।

(घ) वुल्फ्रम में कोई परिवर्तन नहीं होता।

(४) रोस्ट किये हुए पदार्थ को विल्फ्ले टेबुल पर धोकर या अन्य प्रकार से अधिक कंसेंट्रेट किया जाता है तथा लौह आक्साइड आदि को अलग कर दिया जाता है। जब ताँबा और बिस्मथ मौजूद रहते हैं तब रोस्ट किये हुए पदार्थ को हल्के गंधक या नमक के तेजाब में छोड़कर इन धातुओं के आक्साइड को घोल लिया जाता है। कैसिटेराइट अप्रभावित रहता है।

वुल्फ्रम का पृथक्करण अधिक कठिन है। अपने अधिक आपेक्षिक घनत्व तथा अम्लों में अघुलनशीलता के कारण उपर्युक्त पद्धतियों द्वारा वह अलग नहीं किया जा सकता। यदि उसको अलग न किया जाय तो वह लोहे और मैंगेनीज़ का टंग्स्टेट (Fe, Mn, WO_4) बनाता है जिससे धातुमैल की तरलता कम हो जाती है। इस कारण उसमें अधिक मात्रा में राँगा नष्ट होता है क्योंकि धातुमैल से धातु भलीभाँति अलग नहीं हो पाती।

पहिले वुल्फ्रम 'आक्सलैंड पद्धति' द्वारा अलग किया जाता था। इस पद्धति में खनिज को रिवर्बेरेट्री फर्नेस में सोडा के साथ गलाकर वुल्फ्रम को विबन्धित किया जाता है और घुलनशील सोडा टंग्स्टेट उत्पन्न होता है।



$$Na_2CO_3 + WO_2 = Na_2WO_3 + CO_2$$

लोहा और मैंगेनीज़ हल्के (Flocculent) आक्साइड के रूप में रह जाते हैं तथा प्रक्षालन क्रिया द्वारा सरलता से अलग हो जाते हैं। यह पद्धति असुविधाजनक और मंहगी है तथा सोडिक स्टैनेट बनने के कारण कुछ राँगा नष्ट होता है।



$$Na_2CO_3 + SnO_2 = Na_2SnO_3 + CO_2$$

संप्रति खनिज में से हाथ द्वारा चुनकर यथासंभव अधिकांश वुल्फ्रम अलग कर लिया जाता है। शेष विशिष्ट प्रकार से रोस्ट किए हुए कंसेन्ट्रेट में से 'विदेरिल चुम्बकीय वियोजक' (Whetherill Magnetic Separator) द्वारा अलग किया जाता है। यह पद्धति सस्ती तथा अधिक फलप्रद है और इसमें राँगा बहुत कम नष्ट होता है। इसलिये इस पद्धति का प्रचलन बहुत अधिक हो गया है। वैद्युत् चुम्बक द्वारा वुल्फ्रम अत्यधिक आकर्षित होता है तथा कैसिटेराइट बहुत कम। रोस्ट किए हुए कन्सेन्ट्रेट को उपयुक्त रीति से चुम्बकीय क्षेत्र में लाया जाता है। वुल्फ्रम चुंबक द्वारा आकर्षित होकर कन्सेन्ट्रेट में से अलग हो जाता है तथा शेष भाग, जिसमें राँगा रहता है, नीचे रखे पात्र में गिर जाता है।

कन्सेन्ट्रेट में रांगे की मात्रा ७० प्रतिशत से अधिक होती है। कन्सेन्ट्रेट (जिसे 'काला राँगा' भी कहा जाता है) में से राँगा निम्नलिखित क्रियाओं द्वारा अलग किया जाता है।

१. अशुद्ध (Crude) राँगा प्राप्त करने के लिए विगलन।

२. अशुद्ध रांगे का शोधन।

३. धातुमैल तथा तलछट (Residues) का विलगन।

विलगन—काले कन्सेन्ट्रेट में से राँगा प्राप्त करने के लिए SnO_2 को कार्बन या CO द्वारा लघ्वी कृत किया जाता है। लघ्वीकरण का तापमान रांगे के द्रवणांक (२३२° सें०) की तुलना में बहुत ऊँचा (१०००° से ११००° सें०) होता है। अतः उसमें मौजूद लोहा तथा अन्य धातुएँ अनाक्सीकृत होकर रांगे में मिश्रित हो जाती है। चूँकि SnO_2 अम्ल और क्षार दोनों की तरह आचरण करने वाला होता है। अतः वह SiO_2 के साथ मिश्रित होकर कठिनता से गलने वाला सिलिकेट बनाता है तथा अतिरिक्त चूने के साथ मिश्रित होकर कैल्शियम स्टैनेट बनाता है। इन दोनों अवस्थाओं में राँगा अधिक मात्रा में धातुमैल में चला जाता है।

अतएव राँगे के शोधन में सबसे पहिले इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चार्ज की बनावट इस तरह संतुलित रखी जाए जिससे गलन क्रिया में कम से कम धातुमैल बने। धातुमैल की मात्रा इतनी अवश्य होनी चाहिए जिससे वह राँगे की आक्सीकरण से रक्षा कर सके। फ्लक्स (फ़ोर स्फार, चूना आदि)

केवल उतना ही इस्तेमाल करना चाहिये जितने से धातुमैल में आवश्यक तरलता आ जाए।

राँगे की गलन क्रिया रिवर्बेरेट्री या ब्लास्ट फर्नेस में होती है। ब्लास्ट फर्नेस की अपेक्षा रिवर्बेरेट्री फर्नेस से निम्नलिखित लाभ होते हैं :—

१. बहुत बारीक खनिज काम में लाया जा सकता है। कन्सेन्ट्रेशन के पश्चात् रांगे का खनिज बहुत बारीक हो जाता है।

२. ईंधन के लिए साधारण कोयला, प्रोड्यूसर गैस, विचूर्ण कोयला या पेट्रोलियम का उपयोग हो सकता है।

३ निर्मित राँगा शुद्धतर होता है क्योंकि फर्नेस के कम तापमान के कारण विजातीय आक्साइडों का अनाक्सीकरण कम होता है।

४. कम तापमान के कारण राँगा उबलकर उड़ने नहीं पाता।

५. रिवर्बेरेट्री फर्नेस में कम शुद्ध खनिज इस्तेमाल किया जा सकता है तथा नियन्त्रण अधिक अच्छा होता है।

इस पद्धति के निम्नलिखित दुर्गुण हैं :—

१. फर्नेस के पेंदे में अधिक मात्रा में राँगा रुका रहता है तथा शोधन क्रिया बन्द होने पर ही वह वापस मिल सकता है।

२. ब्लास्ट फर्नेस के धातुमैल की अपेक्षा इसके धातुमैल में अधिक राँगा रहता है।

३. यह पद्धति लगातार अनवरत रूप से चालू नहीं रखी जा सकती।

इसमें उत्तम कोटि के रिफ्रेक्ट्री पदार्थ तथा अधिक कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है।

ब्लास्ट फर्नेस के लिए दो बातें महत्वपूर्ण हैं :—

१ सस्ता तथा प्रचुर मात्रा में ज्वाला रहित ईंधन, जैसे—कोक या लकड़ी का कोयला सरलता से प्राप्त होना चाहिए।

२. यह पद्धति खनिज के बड़े टुकड़ों तथा शुद्धतर खनिज के साथ अधिक सुविधाजनक और लाभप्रद होती है।

इंग्लैंड, मलाया, टस्मानिया तथा यूरोप में राँगा रिवर्बेरेट्री फर्नेस में गलाया जाता है। ब्लास्ट फर्नेस का उपयोग धातुमैल तथा तलछट को साफ करने के काम में होता है। पूर्वी द्वीपसमूह के बांका तथा बिलिटन में, जहाँ रांगे का खनिज उच्चश्रेणी का होता है, ब्लास्ट फर्नेस द्वारा लकड़ी के कोयले से बहुत शुद्ध राँगा प्राप्त किया जाता है।

रिवर्बेरेट्री फर्नेस में रांगे के खनिज का शोधन

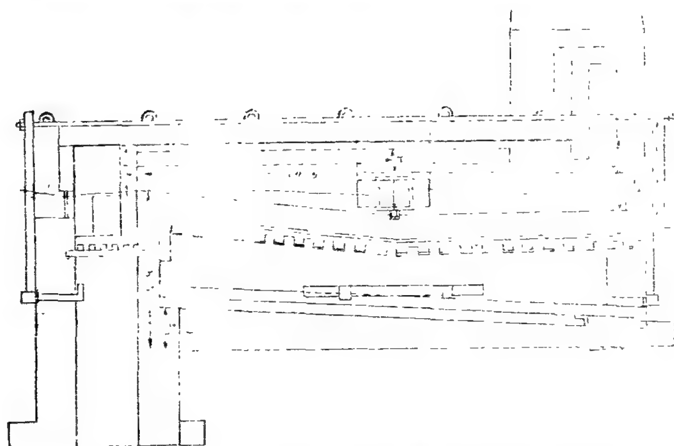
उपर्युक्त विशेषताओं के कारण राँगे का खनिज गलाने में रिवर्बेरेट्री फर्नेस का उपयोग होता है। इसमें दो पद्धतियाँ हैं :—

१. कार्बन या कार्बनमय पदार्थ द्वारा वास्तविक अनाक्सीकरण तथा

२. लोहे के स्क्रैप द्वारा अवक्षेपन।

जिन धातुमैलों में राँगा मौजूद रहता है उनका अनाक्सीकरण केवल कार्बन द्वारा नहीं होता बल्कि कार्बन के साथ-साथ चूना छोड़ना पड़ता है। तब भी अनाक्सीकरण पूरी तरह नहीं हो पाता।

आजकल रिवर्बेरेट्री फर्नेस में २० से ३० टन तक माल गलाया जा सकता है। तेल या प्रोड्यूसर गैस का उपयोग पहिले से गरम की हुई वायु के साथ होता है। आधुनिक ढंग की 'कार्निश' राँगा गलाने की फर्नेस का चित्र नीचे दिया है।



चित्र सं० ६३ राँगा गलाने की रिवर्बेरेट्री फर्नेस

हार्थ १६ से १८ फुट लम्बा तथा ८ से १२ फुट चौड़ा होता है। यह पोली मेहराब के ऊपर बनाया जाता है। बगल की दीवालों में वायु छिद्र बनाए जाते हैं। टैप होल के नीचे कान्ती लोहे का पात्र रखा रहता है जिसमें शुद्ध राँगा एकत्र होता है।

चूँकि राँगा अम्ल और क्षार दोनों की तरह आचरण करता है अतः वह धातुमैल में पर्याप्त परिमाण में नष्ट हो जाता है। धातुमैल की मात्रा कम से कम रखने के लिये शोधन क्रिया दो अवस्थाओं में पूरी की जाती है—

(१) खनिज शोधन—जिसमें शुद्ध धातु तथा राँगा युक्त धातुमैल बनता है।

(२) राँगा युक्त धातुमैल का शोधन—जिसमें अशुद्ध राँगा तथा अल्प धातु युक्त धातुमैल बनता है।

खनिज शोधन

तप्त फर्नेस में ३ टन चार्ज तथा १० से २० प्रतिशत चूर्ण एन्थ्रेसाइट कोयला चार्ज किया जाता है। चार्ज में कुछ शोधन का मैल (Refinery dross) तथा आवश्यकतानुसार चूना भी मौजूद रहता है। चार्ज को हार्थ पर फैलाकर दरवाजों को अग्निप्रतिरोधक मिट्टी से लस दिया जाता है तथा फर्नेस का तापमान बढ़ाया जाता है। बीच-बीच में चार्ज को चलाया जाता है। फर्नेस के अन्दर का तापमान १२५०° सें० रहता है तथा एक ताप में ५ से ८ घंटे लगते हैं। धातुमैल की ऊपरी परत अलग कर फेंक दी जाती है। इसमें राँगा नहीं रहता। दूसरी बार निकाले गये धातुमैल में २० प्रतिशत राँगा रहता है। कान्ती लोहे के पात्र में धातु तथा कुछ धातुमैल एकत्र होते हैं। उसी में वे अलग कर लिये जाते हैं। धातु में ९९ प्रतिशत राँगा होता है। वह परिशोधन के लिए भेज दिया जाता है।

धातुमैल का शोधन

धातुमैल में राँगे की पर्याप्त मात्रा रहती है, इसलिये उसका शोधन कर राँगा निकाला जाता है। खनिज में मौजूद अशुद्धियों की किस्म तथा परिमाण के अनुसार धातुमैल की बनावट भिन्न-भिन्न होती है। 'कार्निश' खनिज शोधन फर्नेस के धातुमैल की बनावट यह है—

SnO_2 २५ प्रतिशत, Al_2O_3 १८ प्रतिशत

SiO_2 ३२ प्रतिशत, Fe_2O_3 १० प्रतिशत

शेष (CaO, MgO आदि)—१५ प्रतिशत।

धातुमैल में राँगा साधारणतः सिलिकेट के रूप में तथा कभी-कभी स्टेनेट के रूप में रहता है। धातुमैल शोधन करने की फर्नेस खनिज शोधन फर्नेस के समान होती है। इसका तापमान अधिक होता है। चार्ज का पंचमांश एन्थ्रेसाइट होता है। धातुमैल में मौजूद राँगे की जगह लेने के लिये फ्लक्स के रूप में कुछ चूना मिलाया जाता है।

इस प्रकार उत्पन्न SnO कार्बन या CO द्वारा अनाक्सीकृत होता है।

कुछ लौह स्क्रैप भी चार्ज में मिलाया जाता है। वह राँगे के सिलिकेट में से राँगा अलग कर देता है।

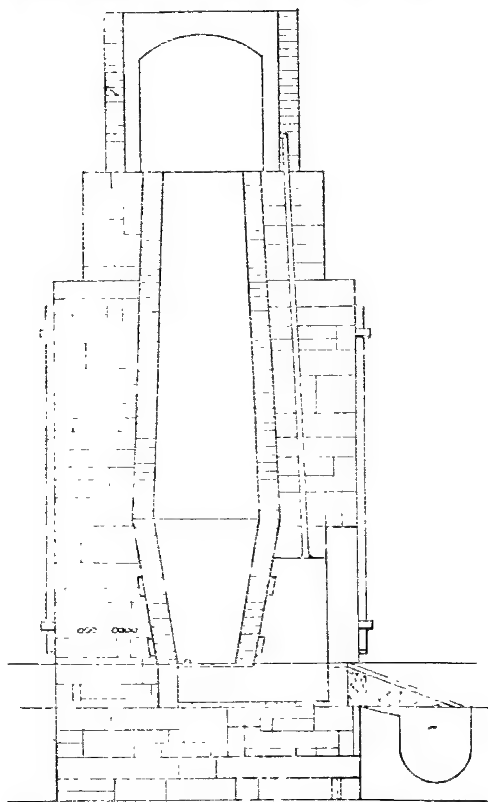


$$Fe + SnO.SiO_2 = FeO\ SiO_2 + Sn$$

धातुमैल के शोधन से प्राप्त राँगे की शुद्धता कम होती है। राँगा निकालने के बाद बचे हुए धातुमैल में राँगे की मात्रा २ प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये। धातुमैल के कुछ भागों में राँगे के टुकड़े फँसे रहते हैं। इन्हें भी शोधन द्वारा निकाला जा सकता है।

ब्लास्ट फर्नेस द्वारा शोधन

खनिज के साथ एकान्तर परतों में लकड़ी का कोयला (ईंधन) चार्ज किया जाता है। ठंडी वायु एक दो या तीन टूयेरों द्वारा अन्दर भेजी जाती है।



चित्र सं० ६४ राँगा गलाने की भट्ठी

राँगा बूँद-बूँद चूकर 'फोर हार्थ' (Forehearth) में एकत्र होता है। शोधन क्रिया से उत्पन्न पदार्थ तीन प्रकार के होते हैं—

(१) ९४ से ९७ प्रतिशत राँगा जिसमें लोहा, ताँबा आदि अशुद्धियाँ भी होती हैं।

(२) धातुमैल जिसमें २० से ३० प्रतिशत राँगा होता है तथा

(३) राँगा और लोहे का धातुमैल जिसमें ३० से ८० प्रतिशत राँगा होता है।

परिशोधन

द्रवीकरण (Liquation)

राँगे में प्रधान अशुद्धियाँ ताँबा, सीसा, लोहा, आर्सेनिक आदि होते हैं। इन अशुद्धियों को अलग करने में इस तथ्य का सहारा लिया जाता है कि इन अशुद्धियों के द्रवणांक शुद्ध राँगे के द्रवणांक से अधिक होते हैं। परिशोधन रिवर्बरेट्री फर्नेस में होता है। फर्नेस का तापमान राँगे के द्रवणांक से कुछ ही ऊपर रखा जाता है। फर्नेस में धुँआ अधिक रखा जाता है जिससे उसका वातावरण अनाक्सीकर रहे। शुद्ध राँगा बहकर नीचे रखे पात्र में एकत्र होता है। मैल को खनिज शोधन फर्नेस में भेज दिया जाता है। इस मैल में लगभग ६५ प्रतिशत राँगा, ११ प्रतिशत लोहा तथा अन्य अशुद्धियाँ होती हैं। इस क्रिया का नाम 'द्रवीकरण' है।

विलोड़न (Tossing)

द्रवित राँगे को लगभग एक घंटे तक पात्र में रहने दिया जाता है। फिर क्रम से नीचे रखे हुए डब्बुओं में उड़ेला जाता है। प्रत्येक डब्बू अपने से पहिले की अपेक्षा २ फुट नीचे रहता है। नीचे आग जलाकर इन डब्बुओं को गरम रखा जाता है। इस विलोड़न क्रिया में कुछ अशुद्धियाँ आक्सीकृत हो जाती हैं। वे मैल के रूप में सतह पर एकत्र हो जाती हैं और अंत में अलग कर दी जाती हैं।

क्वथन

यदि विलोड़न द्वारा राँगा पर्याप्त शुद्ध नहीं हो जाता तो उसे क्वथन (उबाल) द्वारा शुद्ध किया जाता है। क्वथन के लिए हरी लकड़ी के टुकड़ों को भारी

पिंजड़े में रखकर धातु के अंदर नीचे तक डुबाया जाता है। लकड़ी से उत्पन्न वाष्प तथा गैसें द्रव धातु का मंथन कर देती हैं जिससे उसका प्रत्येक भाग वायु के संपर्क में आ जाता है और अशुद्धियाँ आक्सीकृत हो जाती हैं। धातु की सतह पर बना मैल अलग कर दिया जाता है।

द्रवीकरण में १ से २ घंटा, विलोड़न में १ घंटा तथा क्वथन में करीब ३ घंटे का समय लगता है।

रांगे का परिशोधन पूर्ण रूप से सम्पन्न नहीं हो पाता। उसके द्वारा पर्याप्त परिमाण में अशुद्धियाँ अलग नहीं की जा सकतीं। निर्मित रांगे की किस्म बहुत कुछ खनिज की शुद्धता पर निर्भर रहती है। अतः शोधन के पहिले खनिज में से यथा संभव अशुद्धियाँ दूर कर लेना चाहिये।

टिन प्लेट में से राँगे की प्राप्ति

संसार भर के रांगे का ४० प्रतिशत टिन प्लेट बनाने में व्यय होता है। अतः पुराने डब्बों इत्यादि से पर्याप्त परिमाण में राँगा निकाला जा सकता है। इसके लिये दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं।

१. वैद्युत् पद्धति

२. क्लोरीन पद्धति (Chlorine Process)

वैद्युत् पद्धति में टिन प्लेट के राँगे को वायु की उपस्थिति में NaOH द्वारा घोलकर, घोल का वैद्युत् विश्लेषण किया जाता है। इस पद्धति में सबसे बड़ी असुविधा यह होती है कि NaOH वायु मंडल से CO_2 सोखकर निष्क्रिय बन जाता है।

डा० गोल्डस्मिट की क्लोरीन पद्धति बहुत सफल हुई है। इसमें लोहे के खोखले बेलनों में टिन प्लेट के स्क्रैप को रखकर उसे सूखी क्लोरीन गैस द्वारा आक्रान्त किया जाता है। राँगा स्टैनिक क्लोराइड में परिवर्तित हो जाता है। बाद में रांगा अलग कर लिया जाता है।

————

अध्याय २१

सोना

जिन धातुओं का परिचय मानव समाज को सर्वप्रथम हुआ उनमें सोना भी है। अपने आकर्षक रंग और बहुमूल्यता के कारण वह सदैव मनुष्य को प्रिय रहता है। पहिले लोगों ने नदी किनारे की रेत से सोना एकत्र किया होगा। प्रागैतिहासिक काल में खदानों से सोना निकालने के प्रमाण मिले हैं।

भौतिक गुण

यह धातुओं में सबसे अधिक घनवर्धनीय तथा तान्तव होता है। इससे बहुत पतले वरक (०·००००५ इंच) पीटे जा सकते हैं तथा इतने पतले तार खींचे जा सकते हैं कि एक तोले सोने से बीस मील लम्बा तार बन सकता है। इसकी कठोरता चाँदी और राँगे के मध्य में होती है। सोने के दो टुकड़े बिना गरम किये जोड़े जा सकते हैं।

सोने की शुद्धता

सोने की शुद्धता प्रतिशत के रूप में व्यक्त नहीं की जाती। इसके लिए 'कैरेट' (Carat) का प्रयोग होता है। पूर्ण शुद्ध सोना २४ कैरेट होता है। गिनी में २१ कैरेट (या ९१·६६ प्रतिशत) सोना होता है।

उपयोग

इसका प्रधान उपयोग सिक्कों तथा आभूषणों के रूप में होता है। यद्यपि सोने के चालू सिक्के बहुत कम देखने में आते हैं पर प्रत्येक सभ्य सरकार सोने की विशाल राशि अपने खजाने में रखती है तथा उसी के अनुसार कागज के नोट चलाती है।

सोने के धातुसंकर

शुद्ध सोना बहुत शीघ्र घिसता है। तांबे का मेल देने से उसमें कड़ापन आ जाता है तथा रंग अधिक आकर्षक हो जाता है। आभूषणों में इस्तेमाल होने वाले सोने में चांदी और तांबा दोनों मिलाये जाते हैं।

सोना तथा पारा से कई प्रकार के धातुसंकर बनते हैं। जब इनको रिटार्ट में गरम किया जाता है तब पारा उड़कर अलग हो जाता है।

संसार में सोने का उत्पादन

संसार में लगभग तीन करोड़ औंस सोना उत्पन्न होता है जिसमें भारत १·२ प्रतिशत उत्पन्न करता है। संसार के स्वर्ण उत्पन्न करने वाले प्रधान देश ये हैं—

दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, चीन, भारत, सीलोन, जापान, साइबेरिया, यूराल पर्वत, हंगरी, स्वीडेन, स्पेन, इटली, अलास्का, ब्रिटिश, कोलम्बिया, केलिफोर्निया, मेक्सिको, बोलीविया, पेरू, चिली, कोलम्बिया और ब्राजिल।

दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया संसार के प्रधान स्वर्ण निर्माता हैं।

सोने का जमाव

किसी-किसी नदी के किनारे उसकी रेत में सोने के कण मिलते हैं। आस-पास के गरीब लोग लोहे के तसलों में निथार कर बड़े परिश्रम से सोना अलग करते हैं पर दिन भर के परिश्रम के बाद भी इतना कम सोना मिलता है कि यह उद्योग प्रायः बन्द सा हो गया है। संसार का अधिकांश सोना खदानों से निकाला जाता है। स्वर्णयुक्त शिला में सोना अत्यन्त बारीक कणों के रूप में वितरित रहता है। उसमें विभिन्न मात्राओं में चाँदी भी मिलती है। उत्तम कोटि की प्रतिटन स्वर्णयुक्त शिला में एक से दो औंस तक सोना निकलता है।

भारत में सोने की उत्पत्ति

भारत का ९९ प्रतिशत सोना मैसूर रियासत की कोलार खदान से प्राप्त होता है। यहाँ चार ब्रिटिश कम्पनियाँ :—मैसूर कम्पनी, चैम्पियन रीफ, अरगम तथा नन्दी दुग, जो सबकी सब इंग्लैंड में स्थापित हुई हैं, सारा सोना निकालती हैं।

चैम्पियन रीफ तथा अरगम की खदानें ९८०० फुट की गहराई तक पहुँच गई हैं और दुनियाँ की सबसे गहरी खदानों में गिनी जाती हैं।

स्वर्णयुक्त शिला रिफ्रेक्ट्री नहीं होती तथा 'ब्लैंकेट कन्सेन्ट्रेशन' (Blanket Concentration), संरसावरण (Amalgamation) और सायनाइडेशन द्वारा सोना अलग किया जाता है।

इन चारों खदानों से ३,२०,००० फाइन औंस सोना निकलता है।

सोने की धारी (Gold Veins)

कठोर आग्नेय (Igneous) शिलाओं में सोने के अत्यन्त बारीक कण वितरित रहते हैं। इस प्रकार के सोने से विश्व की अधिकांश स्वर्ण राशि प्राप्त होती है। इन शिलाओं को तोड़कर बारीक पीसा जाता है तथा चूर्ण में से संरसावरण और फिर सायनाइडेशन क्रियाओं द्वारा सोना प्राप्त किया जाता है। तांबे तथा शीशे के खनिज के साथ भी कुछ सोना निकलता है।

संरसावरण (Amalgamation)

पारे के धातु-मिश्रण द्वारा सोने के कणों को पकड़ने की क्रिया 'संरसावरण' या 'अमल्गमेशन' कहलाती है। यह क्रिया उन खनिजों के लिये सुविधाजनक होती है जिनमें सोने के कण कुछ बड़े होते हैं। बहुत बारीक कणों के संरसावरण में समय अधिक लगता है। सायनाइडेशन द्वारा बारीक कण कम खर्च और कम समय में निकल आते हैं।

संरसावरण के पूर्व खनिज की ड्रेसिंग की जाती है। पहिले मजदूर हाथों द्वारा स्वर्णयुक्त पत्थरों को चुनकर अलग कर लेते हैं। फिर जाली द्वारा छोटे और बड़े टुकड़े अलग अलग किये जाते हैं। बड़े टुकड़ों को तोड़ कर छोटा (२ इंच) किया जाता है। तोड़ने के लिये 'ब्लेक' 'डाज' या 'जायरेट्री' क्रशर (Crusher) का उपयोग किया जाता है।

क्रशर के बाद 'स्टैम्प बैटरी' में टुकड़ों को पीसकर २० से ४० मेश किया जाता है। इसी बीच पानी मिलाकर पतली लेई बना ली जाती है।

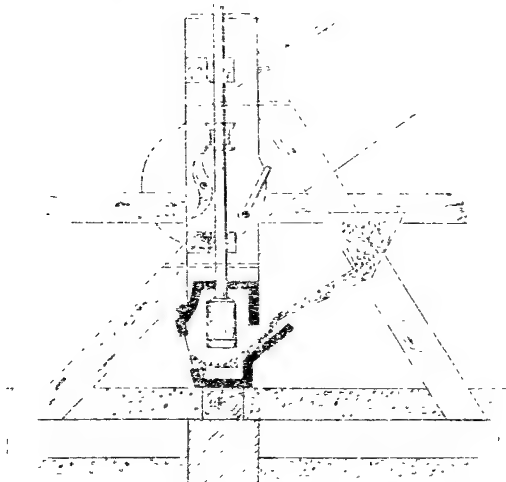
इस लेई को स्टैम्प बैटरी के बाहर अमलगमेटिंग टेबुल पर बहाकर संरसावरण की क्रिया की जाती है।

स्टैम्प बैटरी

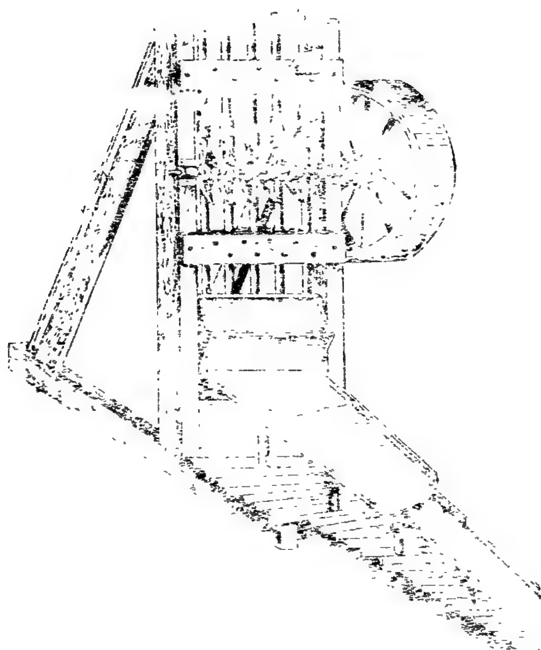
इसमें एक पंक्ति में पाँच स्टैम्प लगे रहते हैं। प्रत्येक स्टैम्प करीब १५०० पौंड वजन का होता है। उसके निम्न भाग में एक धन (हथौड़ा) लगा रहता है। यह हथौड़ा एक निहाई पर टकराता है। विशिष्ट प्रबंध द्वारा जल के साथ खनिज के टुकड़े निहाई पर गिरते हैं तथा हथौड़े की चोट से टूट जाते हैं।

पाँचों हथौड़े एक साथ न चलकर क्रम से (पहिला, चौथा, दूसरा, पाँचवाँ तथा अंत में तीसरा) चलते हैं।

बक्स के सामने अमलगमेटिंग टेबुल लगी रहती है। देखिए चित्र सं० ६५

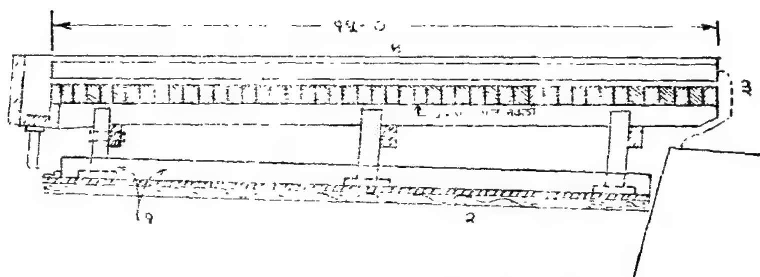


चित्र सं० ६५   स्टैम्प बैटरी (बगल से)



चित्र सं० ६६   स्टैम्प बैटरी (सामने से)

इस टेबुल की लंबाई ६ से १५ फुट तक होती है। बारीक स्वर्ण कणों में लंबाई अधिक लगती है। टेबुल को पीतल (६० प्रतिशत, ताँबा ४० प्रतिशत जस्ता) या ताँबे की एक सूत मोटी चद्दर से ढका जाता है। टेबुल का झुकाव प्रति फुट १ इंच या २ इंच होना है।



चित्र सं० ६७ **अमलगमेटिंग टेबुल**

धातु की चद्दर एनील करने के बाद एमरी कागज से रगड़ कर अच्छी तरह पालिश की जाती है तथा कास्टिक सोडा से धोकर उसकी चिकनाहट मिटा दी जाती है। तब उसपर नौसादर के साथ पारा रगड़ा जाता है। फिर चाँदी या सोने का संरसावरण उसके ऊपर रगड़ा जाता है। इस प्रकार टेबुल स्वर्ण कणों को पकड़ने के लिये तैयार हो जाती है।

प्रत्येक तीन या चार घंटे के बाद चद्दर को पानी से अच्छी तरह धोकर कड़े ब्रश या रबर से रगड़ा जाता है। कुछ संरस अलग हो जाता है तथा ताजा पारा रगड़ा जाता है। पानी का बहाव इस प्रकार नियंत्रित रहता है कि पतली लेई लहराती हुई टेबुल के ऊपर से बहती है। यदि पारा या संरस पानी के साथ बह जाय तो विशेष प्रबंध द्वारा उसे टेबुल के अंत में पकड़ लिया जाता है।

यदि स्वर्ण खनिज में सोपस्टोन, गेलिना, स्टिबनाइट, आर्सेनिकल पायराइट या चिकनाहट मौजूद हो तो कुछ समय में पारा कमजोर हो जाता है अर्थात् पारे के छोटे-छोटे कण बन जाते हैं जो आपस में मिलकर एक नहीं होते तथा पानी के साथ बह जाते हैं।

समय-समय पर टेबुल पर से स्वर्ण-संरस अलग किया जाता है तथा 'शेमा लैदर' नामक चमड़े के थैलों में भरा जाता है। अतिरिक्त पारा निचोड़कर अलग किया जाता है तथा बचे पदार्थ को, जिसमें ३५ से ४० प्रतिशत सोना और शेष पारा होता है कांती लोहे के रिटार्ट में रखकर गरम किया जाता है। पारा उड़कर

अलग हो जाता है। बचे हुए सोने को ग्रेफाइट की घरिया में गलाकर ढाल दिया जाता है।

सायनाइडेशन

सोना पोटेशियम या सोडियम सायनाइड के निर्बल घोल में शीघ्रता से घुल जाता है। जस्ते के टुकड़ों द्वारा सरलता से उसका अवक्षेपन हो जाता है। अवक्षेप को रोस्ट कर फ्लक्स के साथ गलाया जाता है। इससे सोना प्राप्त होता है।

सायनाइड पद्धति के प्रचलन से वे स्वर्ण खनिज जो संरसावरण के योग्य न होने से बेकार समझे जाते थे या संरसावरण के बाद रद्द किये हुए अवशेष (जिनमें थोड़ा बहुत सोना मौजूद रहता है) काम में लाये जाने लगे और उनमें से सोना निकाला जाने लगा।

सायनाइड पद्धति निम्नलिखित प्रकार के खनिजों के लिये उपयुक्त है :—

१—जिनमें सोने के कण बहुत बारीक होते हैं। जब कुछ सोना बड़े टुकड़ों में तथा कुछ बारीक टुकड़ों में मौजूद रहता है तब बड़े टुकड़ों को संरसावरण पद्धति द्वारा तथा छोटे टुकड़ों को सायनाइड पद्धति द्वारा अलग किया जाता है।

२—जिनमें सामान्य धातुओं (Fe, Ca, Sb, Bi) के यौगिकों की मात्रा कम होती है।

३—जिनमें चाँदी अधिक मात्रा में मौजूद रहती है।

इस पद्धति में निम्नलिखित पाँच क्रियाएँ होती हैं —

१—खनिज को चूर्ण कर तैयार करना।

२—बारीक पिसे हुए चूर्ण को सोडियम या पोटेशियम सायनाइड के घोल में घुलाना।

३—स्वर्णमय घोल को छानकर अवांछित पदार्थों से अलग करना।

४—जस्ते के बक्सों में घोल को छोड़कर सोने का अवक्षेपन करना तथा

५—अवक्षेपित सोने को गलाकर व्यापारिक सोने की गुल्लियाँ बनाना।

बारीक चूर्ण तैयार करना

पहिले खनिज को स्टैम्पबैटरी में (२० या २५ मेश तक) पीसकर संरसावरण द्वारा सोना अलग किया जाता है। बाद में बचे हुए पदार्थ को 'ट्यूब मिल' में पीसकर बहुत बारीक (२०० मेश) किया जाता है।

कैल्डिकाट शंकु (Caldecott Cone)

संरसावरण के बाद बची हुई पतली लेई 'कैल्डिकाट शंकु' नामक शंकाकार पात्रों में भेजी जाती है। इनमें २०० मेश से छोटे कण बहकर अलग हो जाते हैं तथा कुछ बड़े कण नीचे बैठ जाते हैं जिन्हें ट्यूबमिल में पीसकर बारीक किया जाता है।

ट्यूब मिल

यह इस्पात का बना ५ फुट व्यास वाला बेलनाकार पात्र होता है जिसकी लम्बाई १२ से १५ फुट होती है तथा अन्दर कठोर कान्ती लोहे की धारियाँ बनी होती हैं। उसे २० चक्कर प्रति मिनट की गति से १०० हार्स पावर वाली मोटर से घुमाया जाता है। इसके अन्दर फ्लिन्ट या कार्ट्ज़ की अत्यन्त कठोर गोलियाँ रहती हैं जो लगभग आधी मिल को भरे रहती हैं। शेष स्थान में पीसा जाने वाला पदार्थ रहता है।

पिस जाने के बाद पदार्थ को पुनः कैल्डिकाट शंकु में भेजा जाता है। यहाँ बारीक कण बहकर अलग हो जाते हैं तथा मोटे कण पुनः ट्यूब मिल को वापस भेज दिये जाते हैं।

संग्राहक पात्र (Collecting Vats)

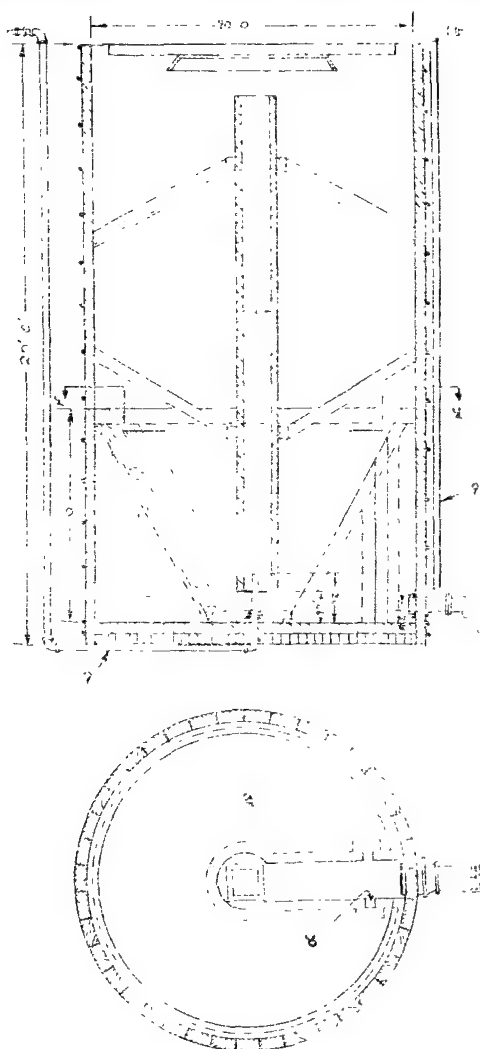
कैल्डिकाट शंकु से बहकर जाने वाले द्रव को २४० फुट व्यास तथा १० फुट गहराई वाले 'संग्राहक पात्र' में एकत्र किया जाता है। उसमें तरल लेई को निथरने का अवसर दिया जाना है। स्वच्छ जल निथार कर स्टैम्प बैटरी या ट्यूब मिल को भेजा जाता है। नीचे बैठी हुई लेई को प्रक्षालन या 'लीचिंग' विभाग में पम्प द्वारा रद्दी सायनाइड घोल के साथ भेजा जाता है।

प्रक्षालन या 'लीचिंग' (Leaching)

यंत्र द्वारा हिलने वाले पात्र या 'पचूका पात्र' में तरल लेई को रखकर ५ प्रतिशत सोडियम या पोटेशियम सायनाइड का घोल तथा प्रतिटन (सूखी) लेई पीछे ढाई पौंड चूना मिलाया जाता है फिर सबको विलोड़ित किया जाता है।

'पचूका पात्र'

यह बेलकार पात्र ४० फुट ऊँचा और १२ फुट व्यास वाला होता है। इसका पेंदा शंक्वाकार होता है। नीचे से दबाव पर वायु भेजी जाती है। पूरे



चित्र सं० ६८ पचूका पात्र

घोल में वायु के बुदबुदे उठते हैं जिससे नीचे से ऊपर तक संपूर्ण घोल अच्छी

तरह विलोड़ित हो जाता है। प्रत्येक पात्र में ८० टन तरल लेई समाती है तथा ८ घंटे में प्रक्षालन समाप्त होता है।

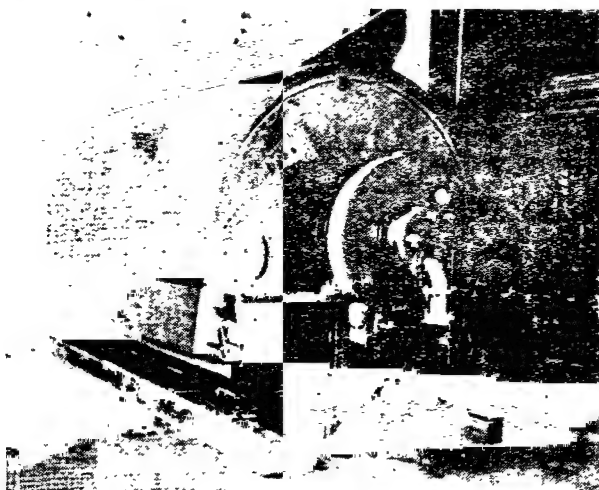
इस अवधि में सब सोना घुल जाता है तथा घोल में $AuKCN_2$ के रूप में रहता है। इस घोल को संग्राहक पात्र के समान ही दूसरे पात्र में एकत्र किया जाता है। इस पात्र से वह आवश्यकतानुसार छानने के लिये पम्प द्वारा 'निःस्यन्दन प्लान्ट' में भेजा जाता है।

निःस्यन्दन प्लान्ट (छनाई विभाग)

छानने के काम में आने वाले यंत्र को निःस्यन्द यंत्र या 'फिल्टर' कहा जाता है। इसमें पम्प द्वारा वायु बाहर निकाल कर शून्य (Vacuum) उत्पन्न किया जाता है जिससे निःस्यन्दन क्रिया शीघ्रता से सम्पन्न होती है। फिल्टर कई प्रकार के होते हैं। इनमें 'ओलिवर फिल्टर' (Oliver Filter) अधिक प्रचलित है।

ओलिवर फिल्टर

यह पोला और बेलनाकार होता है जिसका व्यास १० फुट तथा लम्बाई ८ फुट होती है। यह क्षैतिज धुरी पर मंदगति से घूमता है। इसका निचला ⅓ भाग



चित्र सं० ६६ ओलिवर फिल्टर

एक पात्र में डूबा रहता है जिसमें छानने के लिये आया हुआ द्रव भरा रहता

है। बेलन के धरातल में बहुत से छिद्र रहते हैं। उसके ऊपर नारियल की चटाई तथा केनवास लपेटा रहता है। पम्प द्वारा बेलन के अन्दर की हवा खींची जाती है जिससे साफ सायनाइड घोल अन्दर चला जाता है और वहाँ से पम्प द्वारा अवक्षेपन के लिये भेज दिया जाता है। सूखा पदार्थ जो केनवास के ऊपर जाता है, स्क्रेपर द्वारा खरोंचकर अलग किया जाता है जिससे पात्र में द्रव के प्रवेश करने के पूर्व बेलन की सतह साफ हो जाती है और निःस्यन्दन क्रिया अबाध गति से चालू रहती है। बेलन चार मिनट में एक चक्कर लगाता है तथा २४ घंटे में ४० टन पदार्थ अलग करता है।

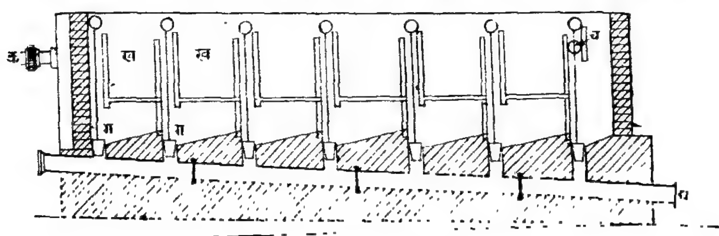
कहीं-कहीं 'बटर्स फिल्टर' (Butter's Filter) का उपयोग होता है।

सोने का अवक्षेपन

फिल्टर से लाया हुआ सायनाइड घोल इस्पात के ३० फुट व्यास वाले बड़े पात्र में एकत्र किया जाता है। इसके पेंदे में ठोस चद्दर की जगह छड़ें लगी रहती हैं जिनपर नारियल की चटाई और जूट के बोरे बिछे रहते हैं। जूट के ऊपर मोटी रेत की १२ इंच ऊँची तह लगी रहती है। सायनाइड घोल धीरे-धीरे इसमें से छनकर नीचे रखे जस्ते के बक्सों में एकत्र होता है। इन्हीं बक्सों में सोने का अवक्षेपन होता है।

जस्ते के बक्स (Zinc Boxes)

ये १५ फुट लम्बे और ५ फुट चौड़े होते हैं। ये बक्स लम्बाई के रुख में ढाई-ढाई फीट के पाँच भागों (कक्षों) में बँटे रहते हैं। प्रत्येक कक्ष पूर्व कक्ष



चित्र सं० ७० जस्ते के बक्स

से ½ इंच प्रति फुट के हिसाब से नीचा रहता है जिससे घोल आसानी से निचले कक्षों की ओर बहता है। कक्षों के बीच के विभाजन पट (Separating

screen) इस प्रकार रखे जाते हैं जिससे सायनाइड घोल ऊपर जाते समय लोहे की जाली में से होकर जाता है। जाली पर जस्ते की बारीक छिलकन (Shavings) रखी जाती है। अन्तिम कक्ष बहुधा खाली रखा जाता है जिससे यदि कुछ स्वर्ण अवक्षेप आगे बढ़ जाय तो उसमें इकट्ठा हो सके। कभी-कभी उसमें रेत की परत भी बिछा दी जाती है। सायनाइड घोल धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। अधिकांश सोने का अवक्षेपन प्रथम तीन कक्षों में हो जाता है। इन कक्षों में जब जस्ता नीचे बैठ जाता है तब बाद के कक्षों से जस्ता इनमें स्थानान्तरित कर दिया जाता है तथा उनमें नया जस्ता छोड़ा जाता है। जस्ते की मोटाई १।५०० इंच के लगभग होती है। बक्सों में छोड़ने के पहिले उन्हें 'लैड एसिटेट' (Lead acetate) के घोल में डुबाया जाता है क्योंकि शुद्ध जस्ते की अपेक्षा सीसा-जस्ता का युग्म स्वर्ण अवक्षेपन में अधिक सहायक होता है।

सफल अवक्षेपन के लिये निम्नलिखित परिस्थितियाँ होनी चाहिये—

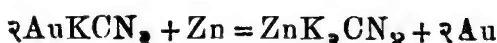
१. सायनाइड घोल में आलस्त (तैरते हुए) घन पदार्थों का अभाव।

२. घोल में स्वतन्त्र क्षार की पर्याप्त मात्रा में उपस्थिति।

३. सायनाइड घोल में लोहे और तांबे के लवणों का अभाव।

सायनाइड घोल की शक्ति ०.२ प्रतिशत KCN से कम नहीं होने देना चाहिये।

प्रत्येक सप्ताह बक्सों में जस्ते को नए सिरे से व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक औंस सोने के लिये १२ औंस जस्ता लगता है। सोने का अवक्षेपन निम्नलिखित रासायनिक क्रिया के अनुसार होता है—



$$२AuKCN_2 + Zn = ZnK_2CN_4 + २Au$$

इस अवक्षेप में कुछ जस्ता, सीसा तथा ताँबा मौजूद रहते हैं। अवक्षेप में सावधानीपूर्वक शोरा मिलाकर और लोहे की तश्तरियों में रखकर उसे मफल फर्नेस में रखा जाता है। जब वह सूख जाता है तब फर्नेस का तापमान बढ़ाया जाता है जिससे जस्ते का आक्साइड बनता है। रोस्ट किये हुए पदार्थ को फिर सोहागा, सोडा, शोरा तथा रेत (ये सब फ़्लक्स का काम करते हैं) के साथ मिलाकर ग्रेफाइट की घरिया में गलाया जाता है। मैल को अलग कर स्वच्छ सोना ढाल दिया जाता है। यह व्यापारिक सोना (बुलियन) है।

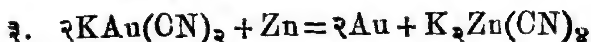
सायनाइड पद्धति का रसायन विज्ञान

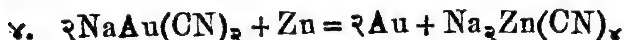
पोटेशियम सायनाइड (KCN) या सोडियम सायनाइड (NaCN) के साथ सोने का घोल निम्नलिखित क्रियाओं के अनुसार बनता है।


१ $४Au + ८KCN + O_२ + २H_२O = ४KAu(CN)_२ + ४KOH$


२. $४Au + ८NaCN + O_२ + २H_२O = ४NaAu(CN)_२ + ४NaOH$

जस्ते द्वारा इसका अवक्षेपन इस प्रकार होता है:—


३. $२KAu(CN)_२ + Zn = २Au + K_२Zn(CN)_४$


४. $२NaAu(CN)_२ + Zn = २Au + Na_२Zn(CN)_४$

क्रिया १ और २ के अनुसार चार्ज को लीचिंग पात्र में वायु के सम्पर्क में लाना आवश्यक है। इसलिये दबाव के साथ वायु भेजी जाती है जो द्रव को विलोड़ित भी करती है।

प्रारम्भिक परख

कोई स्वर्ण खनिज सायनाइड पद्धति के योग्य है या नहीं इसका निर्णय करने के लिये प्रयोगशाला में बहुत से प्रारंभिक प्रयोग किये जाते हैं। इन प्रयोगों में पहिले निश्चित समय तक सायनाइड घोल में खनिज का प्रक्षालन किया जाता है। फिर द्रव को फिल्टर किया जाता है तथा घन पदार्थ (Tailings) का रासायनिक विश्लेषण कर निष्कर्षण (Extraction) का हिसाब लगाया जाता है। घोल की शक्ति (Strength) विविध परखों में भिन्न-भिन्न रखी जाती है जिससे सर्वोत्तम परिस्थिति का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सके।

———

अध्याय २२

सीसा

सीसे का द्रवणांक बहुत कम होता है तथा वह खनिज में से सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है। इसलिए सीसे का धातु-विज्ञान प्राचीन काल से लोगों को मालूम है। मिस्रवासी आज से ७००० वर्ष पूर्व तथा फोनेशियन ४००० वर्ष पूर्व से इस धातु का उपयोग करते आ रहे हैं। सीसे का धातुविज्ञान चाँदी के निष्कर्षण से बहुत सम्बन्धित रहा है क्योंकि अधिकांश सीसे के खनिजों में चाँदी न्यूनाधिक मात्रा में मौजूद रहती है।

भौतिक गुण

साधारण उपयोग में आने वाली धातुओं में सीसा सबसे भारी तथा कोमल होता है। यह नाखून से खरोंचा जा सकता है। आर्सेनिक, एन्टीमनी, ताँबा आदि की मौजूदगी से इसकी कोमलता कम हो जाती है। सीसे को हथौड़े से ठोकने पर मन्द ध्वनि निकलती है। यह ध्वनि जितनी ही मन्द होगी, सीसा उतना ही शुद्ध होगा। कागज पर इससे लकीर खींची जा सकती है। लकीर के रंग की श्यामता सीसे की शुद्धता की मात्रा के साथ बढ़ती जाती है। दबाव (extrusion) के द्वारा इसे सुगमतापूर्वक अपेक्षित आकार प्रदान किया जा सकता है। इसका पुनर्मणिभीकरण का तापमान (Recrystallisation Temperature) इतना कम है कि अत्यधिक ठोंक-पीट के बाद भी यह कठोर (Work hardened) नहीं होता। द्रवणांक कम होने से यह सरलतापूर्वक जोड़ा जा सकता है।

उपयोग

सीसा अम्लादिकों के प्रभाव से शीघ्र खराब नहीं होता इसलिए रासायनिक पात्र, उपकरण आदि बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है। इसमें ताँबा, गिलट या टेलूरियम की अल्प मात्रा मिलाकर इसका यह गुण और भी बढ़ाया जा सकता है। ०.१ प्रतिशत कैल्शियम युक्त सीसे का उपयोग स्टोरेज बैटरी के प्लेट

बनाने तथा तांबे के तार पर पतली परत चढ़ाने में होता है। एलेक्ट्रोप्लेटिंग व्यवसाय में सीसे का उपयोग पात्र की लाइनिंग और एनोड के काम में होता है।

ऊँची अट्टालिकाओं के इस्पात के ढाँचे तथा नींव के बीच सीसे की गद्दी दी जाती है जिससे इमारत पर धक्कों का असर कम पड़ता है। सीसे के यौगिकों से रंग (पेन्ट) बनाये जाते हैं।

सीसे में अशुद्धियों की मात्रा बहुत कम (०.०२ या ०.०३ प्रतिशत) होती है। इन अशुद्धियों में ताँबा, एन्टीमनी, बिस्मथ, लोहा तथा जस्ता होते हैं।

सीसे के धातुसंकर

	सीसा प्रतिशत	एन्टीमनी प्रतिशत	रांगा प्रतिशत	अन्य प्रतिशत	अभीष्ट गुण
बैटरी प्लेट	९४ ९९.४	६ ...	... ...	 ०.१	दृढ़ता तथा संक्षारणावरोध
बेयरिंग धातु	८१ ८७	१२ ७	६ ६	१	कोमल क्षेत्र (Matrix में) Cu_3Sn तथा SbSn के कड़े यौगिक
टाइप धातु	५८ ६० ८३	१५ ३० १२	२६ १० ५	१	द्रव रूप से घन रूप में आने पर आयतन बढ़ जाता है।
सोल्डर	६७	...	३३		घनीकरण में पर्याप्त समय लगता है।

सीसे के धातुसंकर					
	सीसा प्रतिशत	एन्टीमनी प्रतिशत	रांगा प्रतिशत	अन्य प्रतिशत	अभीष्ट गुण
छर्रे की गोलियाँ	६६.६	...	...	०.२ As ०.२ Cu	कठोरता तथा सुडौल गोलाई
सीसा ब्रांज़	७०	...	...	३० Cu	सरलतापूर्वक इच्छित आकार प्रदान किया जा सकता है।

सीसे के खनिज

खनिज के जमावों में सीसा और जस्ता बहुधा मिले जुले रहते हैं। कहीं-कहीं सीसे की खदानें अधिक गहराई पर पहुँचकर जस्ते की खानों में परिवर्तित हो गई हैं।

सीसे का प्रधान खनिज गेलिना (PbS) है। इसका आपेक्षिक घनत्व ७.५ है। यह कड़कीला होता है। शुद्ध गेलिना में ८६.४ प्रतिशत सीसा होता है। कभी-कभी इसमें पर्याप्त मात्रा में चांदी मौजूद रहती है। कम महत्व के खनिज सेरुसाइट (Cerussite, $PbCO_3$) है जिसके शुद्ध यौगिक में ७७.५ प्रतिशत सीसा होता है। सीसे के खनिज में SiO_2, Fe, CaO, Zn, Sb तथा As प्रधान अशुद्धियों के रूप में मौजूद रहते हैं। भारत की खपत का अधिकांश सीसा, जस्ता तथा चांदी उत्तरी बर्मा की बाडविन खान से उपलब्ध होती है। यह खान संसार की बड़ी खानों में गिनी जाती है तथा संसार में सीसे के उत्पादन का ६ प्रतिशत भाग यहाँ उत्पन्न होता है। यहाँ के खनिज में २४ प्रतिशत सीसा, १५ प्रतिशत जस्ता, ८ प्रतिशत तांबा तथा प्रतिटन १८ औंस चांदी होती है। इस खान तथा इसके शोधन विभाग द्वारा प्रतिमास सात हजार टन सीसा तथा ७ लाख औंस चांदी उत्पन्न की जाती है।

भारतवर्ष में सम्प्रति सीसे का उत्पादन अत्यल्प होता है। गेलिना के छोटे जमाव गढ़वाल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा तथा राजपूताने में पाये जाते हैं। उदयपुर की जावर खान से प्रतिवर्ष दो-तीन सौ टन सीसा प्राप्त होता है।

सीसे का धातुविज्ञान

रोस्टिंग और स्मेल्टिंग करने के पूर्व सीसे के खनिज को विभिन्न क्रियाओं द्वारा कंसेंट्रेट (Concentrate) किया जाता है। सीसे के खनिज के साथ जस्ते का खनिज भी मिला जुला रहता है। ये दोनों गंधक युक्त (सल्फाइड) खनिज हैं। दोनों को 'फ्राथ फ्लोटेशन' द्वारा इस प्रकार अलग किया जाता है कि पहिले गेलिना (सीसे का खनिज) उठकर ऊपर आ जाता है। स्फेलेराइट (जस्ते का खनिज) पोटेशियम सायनाइड या जस्ते के सल्फेट द्वारा दबाकर नीचे बैठा दिया जाता है। इस तलछट में अधिकांश स्फेलेराइट मौजूद रहता है। इसे निकाल कर दूसरे पात्र में नीलेथूथे के द्वारा सक्रिय (Activate) किया जाता है और फ्लोटेशन द्वारा समस्त स्फेलेराइट ऊपर उठाकर अलग कर लिया जाता है।

इस प्रकार प्राप्त कंसेंट्रेट को गलाने की दो पद्धतियाँ हैं :—

१—ब्लास्ट फर्नेस पद्धति जिसमें PbS को रोस्टकर PbO बनाया जाता है और फिर PbO को कार्बन या CO द्वारा लघ्वीकृत किया जाता है।

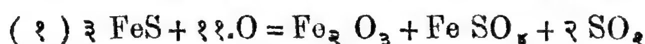
२—रिवर्बेरेट्री फर्नेस पद्धति या 'खनिज हार्थ स्मेल्टिंग' जिसमें PbS तथा $PbSO_4$ (या PbO) की रासायनिक क्रिया द्वारा सीसा तथा SO_2 बनते हैं।

चाँदी युक्त खनिज या ऐसा खनिज जिसमें सीसे का परिमाण ६० प्रतिशत से कम हो, दूसरी पद्धति द्वारा नहीं गलाया जा सकता। इसलिए संसार का अधिकांश सीसा ब्लास्ट फर्नेस पद्धति से प्राप्त किया जाता है।

ब्लास्ट फर्नेस पद्धति

चूँकि PbS तथा कार्बन में रासायनिक क्रिया नहीं होती इसलिए गलन के पहले सल्फाइड खनिज को पूर्णतः आक्साइड में परिवर्तित कर लेना चाहिये। यदि खनिज में ताँबा उपस्थित न हो तो अधिक से अधिक गंधक तथा आर्सेनिक को रोस्टिंग द्वारा अलग कर देना चाहिये जिससे ब्लास्ट फर्नेस में बहुत कम मैट बने। यदि खनिज में ताँबा मौजूद हो तो इतना गंधक बचा रहना चाहिये जिससे मैट बन सके।

पायराइटिक खनिज[१] की रोस्टिंग में निम्नलिखित क्रियाएँ होती हैं—


(१) ३ $FeS + ११.O = Fe_2 O_3 + Fe SO_4 + २ SO_2$


(२) २ $Fe SO_4 = Fe_2 O_3 + SO_2 + SO_3$


(३) ३ $CuS + ९.O = Cu_2 O + CuSO_4 + २ SO_2$


(४) २ $PbS + ७.O = PbO + PbSO_4 + SO_2$

आर्सेनिक और एंटीमनी का कुछ भाग उड़ जाता हैं तथा शेष आक्साइड ($As_2 O_5$ और $Sb_2 O_5$) बन जाता है।

रोस्टिंग फर्नेस

रोस्टिंग के लिये कई प्रकार को फर्नेस काम में लाई जाती है पर 'हंटिंग्टन हेबर्लीन' तथा 'ड्वाइट लायड' पद्धतियाँ अधिक प्रचलित हैं। इनमें बारीक खनिज भी काम में आ सकता है।

जिस खनिज में प्रतिटन पीछे १०० औंस से अधिक चाँदी मौजूद हो उसकी रोस्टिंग नहीं की जाती क्योंकि चान्दी के नष्ट हो जाने का डर रहता है।

इन पद्धतियों में चार्ज के गन्धक की मात्रा १६ प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि गंधक अधिक हो तो पूर्व रोस्टिंग द्वारा 'वेज फर्नेस' (Wedge Furnace) में उसकी मात्रा घटाकर १६ प्रतिशत कर ली जाती है या फिर इस खनिज को कम गन्धक युक्त खनिज के साथ उचित अनुपात में मिलाकर काम निकाला जाता है।

हंटिंग्टन हेबरलीन पद्धति

इसमें गन्धक की अभीष्ट मात्रा १२ प्रतिशत है। वेज या मैकडूगल फर्नेस में पूर्व रोटिंग द्वारा गन्धक की मात्रा घटाकर १२ प्रतिशत की जाती है।

खनिज में चूने का पत्थर, सिलिका युक्त फ्लक्स तथा लौह खनिज उचित मात्रा में (यदि खनिज में ये मौजूद न हों तो) मिलाए जाते हैं। जिस पात्र में रोस्टिंग की जाती है वह कान्ती लोहे का बना रहता है। उसका व्यास १० फुट तथा गहराई ५ फुट होती है। उसमें ८ से १० टन तक माल समाता है।

यह फर्नेस आगे या पीछे झुकाई जा सकती है। इसके ऊपर चुंगीनुमा ढक्कन लगा रहता है जिससे गन्धक युक्त धुआँ बाहर निकलता है। पेंदे

१—पायराइटिक खनिज—इसमें Pb, Fe, Cu तथा S विद्यमान रहते हैं।

में एक छिछला पात्र होता है जिसके ऊपर जाली लगी रहती है। वायु का झोंका इसी मार्ग से चार्ज के अन्दर प्रवेश करता है। फर्नेस में चार्ज छोड़ने के पहिले कुछ जलती हुई लकड़ियाँ छोड़ी जाती हैं, उनके ऊपर गरम चार्ज रखा जाता है और अन्त में क्रमशः पूर्ण चार्ज छोड़ा जाता है। वायु के झोंके में मौजूद आक्सीजन PbS को PbO में परिवर्तित कर देता है और इससे जो रासायनिक ताप उत्पन्न होता है वह इतना अधिक होता है कि क्रिया को चालू रखने के लिये अतिरिक्त ताप की आवश्यकता नहीं पड़ती। वायु का दबाव १५ औंस प्रतिवर्ग इंच होता है।

चार छः घंटों में गन्धक की मात्रा ३ प्रतिशत हो जाती है। चार्ज पिघलकर आपस में मिल जाता है। अन्त में एक बड़ी और कड़ी राशि तैयार हो जाती है। इसको बाहर निकाल कर ब्लास्ट फर्नेस में चार्ज करने के निमित्त छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ा जाता है। इसमें ८ प्रतिशत CaO होना चाहिये।

ड्वाइट लायड सिन्टरिंग मशीन

इस चार्ज में गन्धक की मात्रा १८ प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये। आधुनिक प्रणाली में अधिक गन्धक युक्त खनिज को पहिले दूसरी फर्नेस में रोस्ट कर गन्धक की मात्रा १८ प्रतिशत की जाती है फिर इस फर्नेस में रोस्टकर २ प्रतिशत की जाती है। जो खनिज विविध ड्रेसिंग क्रियाओं के कारण बारीक हो जाता है उसके लिये यह पद्धति बहुत उपयुक्त है। इसमें प्रतिदिन १०० टन चार्ज रोस्ट किया जा सकता है। रोस्टिंग करते समय छोटे टुकड़े मिलकर बड़े टुकड़े बन जाते हैं जिससे ब्लास्ट फर्नेस में सुविधा होती है।

ब्लास्ट फर्नेस

सीसा गलाने की ब्लास्ट फर्नेस ताँबे की ब्लास्ट फर्नेस की भाँति आयताकार होती है। उसकी चौड़ाई ४० से ६० इंच तक होती है। स्टैक नीचे की ओर सकरा होता जाता है जिससे गैस ऊपर जाकर फैल जाती है और उसका तापमान कम हो जाता है। वरिया और स्टैक के बीच का भाग जल प्रवाह द्वारा ठंडा रखा जाता है। टूयर रेखा के २० फुट ऊपर चार्जिंग द्वार होता है। टूयरों की संख्या फर्नेस के विस्तार पर निर्भर रहती है। अधिकांश फर्नेसों में साइफन प्रबन्ध द्वारा गलित धातु अबाध रूप से बाहर निकाली जाती है। वायु के झोंके का दबाव ३० से ६० औंस प्रति वर्ग इंच होता है।

ब्लास्ट फर्नेस चार्ज में निम्नलिखित वस्तुएँ होती हैं :—

१—रोस्ट किया हुआ सल्फाइड खनिज।

२—कच्चा सल्फाइड खनिज जिसमें सोना या चाँदी मौजूद हो।

३—चूने का पत्थर।

४—लौह खनिज।

५—लोहे का स्क्रैप।

६—धातुमैल जिसमें सीसे की पर्याप्त मात्रा हो तथा

७. कोक आदि।

ब्लास्ट फर्नेस में से जो वस्तुएँ निकलती हैं उनकी सूची आपेक्षिक घनत्व के क्रम से नीचे दी गई है :—

१. गलित सीसा ;

२. 'स्पाइस' (Speiss) जिसमें प्रधानतः लोहे का आर्सेनाइट तथा कुछ मात्रा में सीसा, तांबा, गन्धक आदि रहते हैं।

३. 'मैट', जिसमें लोहे तथा सीसे के सल्फाइड रहते हैं।

४. धातुमैल, जिसमें प्रधानतः लोहा तथा कैल्शियम के सिलिकेट होते हैं।

५. बाहर जाने वाली गैसें तथा धुआँ।

कोक का खर्च चार्ज के १२ से १५ प्रतिशत के बराबर होता है। कोक और चार्ज एकान्तर क्रम से रहते हैं। चार्जिंग द्वार पर तापमान १२०° सें० तथा ट्यूयर के पास १२००° से १३००° सें० रहता है।

यदि चार्ज में सीसा PbS के रूप में रहता है तो उसमें से सीसा निकालने में कठिनाई होती है क्योंकि PbS मैट में मिल जाता है और कार्बन द्वारा आक्रान्त नहीं होता। चार्ज में लौह खनिज या लौह स्क्रैप पर्याप्त मात्रा में मिलाकर यह कठिनाई दूर की जा सकती है।

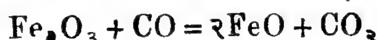
इस प्रकार लोहा PbS के सीसे की जगह ले लेता है। ब्लास्ट फर्नेस पद्धति की प्रमुख रासायनिक क्रियाएँ ये हैं :—



$$२PbO + C = २Pb + CO_2$$



$$PbO + CO = Pb + CO_2$$



$$Fe_2O_3 + CO = २FeO + CO_2$$

'स्पाइस', मैट और धातुमैल को अग्निप्रतिरोधक ईंटों के बने एक बड़े पात्र में एकत्र किया जाता है। इसमें ये कुछ समय तक निर्विघ्न पड़े रहते हैं तथा धीरे-धीरे अलग-अलग तहों में विभक्त हो जाते हैं।

गलित सीसा जिसको 'बेस बुलियन' या 'वर्क लैड' (Work lead) कहा जाता है, इंगटों में ढाल दिया जाता है। इसमें शुद्ध सीसा ९८.५ प्रतिशत ताँबा, एण्टीमनी और आर्सेनिक १ प्रतिशत तथा चाँदी प्रतिटन ९० औंस तक रहती है। इसे शोधन (Refinery) विभाग में भेजा जाता है जहाँ चाँदी अलग की जाती है। स्पाइस में चाँदी, गिलट, ताँबा, सीसा आदि मौजूद हो सकते हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिये 'स्पाइस' का उपचार किया जाता है। धातुमैल मोनो-सिलिकेट होता है। उसमें २ प्रतिशत सीसा, ३५ प्रतिशत FeO, १२ प्रतिशत CaO, २० प्रतिशत ZnO, ३० प्रतिशत SiO_2, आदि होते हैं। वह फेंक दिया जाता है।

रिवर्बेरेट्री पद्धति

इस पद्धति का सिद्धान्त यह है कि जब PbS को PbO या $PbSO_4$ या दोनों के सम्पर्क में इस अनुपात में लाया जाता है जिससे इन पदार्थों में मौजूद गन्धक तथा आक्सीजन SO_2 में विद्यमान गन्धक और आक्सीजन के अनुपात के बराबर हो जाएँ तब गन्धक का लव्वीकरण पूर्ण रूप से होता है।

यह पद्धति निम्नलिखित शुद्ध तथा मूल्यवान खनिजों के लिए उपयुक्त है :—

१. ऐसा खनिज जिसमें सीसे की मात्रा कम से कम ५८ प्रतिशत हो।

२. ऐसा खनिज जिसमें अधिक से अधिक ४ प्रतिशत SiO_2 हो।

SiO_2 अत्यन्त गलनशील सिलिकेट बनाता है जो खनिज कणों को आवृत कर लेता है तथा इस प्रकार उन्हें आक्सीकृत होने से रोकता है। सीसे के सिलिकेट सुगमता से लव्वीकृत नहीं होते।

३ खनिज को एण्टीमनी, ताँबा तथा पायराइट से यथा संभव मुक्त रहना चाहिए।

रिवर्बेरेटरी फर्नेस

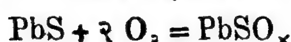
करीब १० फुट लम्बा हार्थ गर्डर पर स्थित रिफ्रेक्ट्री मेहराबों पर बनाया जाता है। मेहराब के कारण सीसा नींव में नहीं सोखने पाता। लाइनिंग के लिए अग्नि-प्रतिरोधक ईंटों का उपयोग होता है पर उसकी ऊपरी सतह भूरे धातुमैल की (जो पद्धति के दौरान में बनता है) बनी होती है। हार्थ का झुकाव एक

ओर बने कूप (Well) की ओर होता है। फर्नेस में छः द्वार होते हैं। तथा चार्ज ऊपर बनी बड़ी चुङ्गी (Hopper) से छोड़ा जाता है। फर्नेस पहिले के ताप से गरम रहती है। उसमें डेढ़ टन चार्ज हार्थ के ऊँचे भाग पर छोड़ा जाता है। तापमान इस प्रकार नियन्त्रित रखा जाता है जिससे चार्ज न गलने पावे। दो तीन घंटों में खनिज आक्सीकृत होकर PbO तथा $PbSO_४$ में परिवर्तित हो जाता है।

इसके बाद तापमान बढ़ाकर चार्ज को गलाया जाता है। गलकर वह कूप में एकत्र होता है। खनिज के आक्सीकृत भाग अनाक्सीकृत भाग के द्वारा आक्रान्त होते हैं और सीसा बनता है।



$$२PbS + ३ O_२ = २ PbO + २ SO_२$$



$$PbS + २ O_२ = PbSO_४$$

इसके बाद तापमान बढ़ाया जाता है। चार्ज गलकर कूप में एकत्र होता है। खनिज का आक्सीकृत भाग अनाक्सीकृत भाग से मिलकर सीसा उत्पन्न करता है—



$$२ PbO + PbS = ३ Pb + SO_२$$



$$PbSO_४ + PbS = २ Pb + २ SO_२$$

कुछ बेल्चे चूना झोंक कर धातुमैल गाढ़ा कर दिया जाता है तथा हार्थ के ऊँचे भाग की ओर ठेल दिया जाता है। वहाँ वह ठंडा किया जाता है जिससे छोटे टुकड़ों में तोड़ा जा सके। धातुमैल में पर्याप्त सीसा PbS और PbO के रूप में मौजूद रहता है। करीब एक घंटे तक धातुमैल को आक्सीकृत होने दिया जाता है और फिर गलाया जाता है। इस प्रकार कुछ और सीसा प्राप्त होता है।

यदि खनिज शुद्ध हो तो धातुमैल को एक बार उपर्युक्त विधि से गलाकर क्रिया पूर्ण हो सकती है। पर यदि खनिज अशुद्ध हो तो यह क्रिया कई बार की जाती है।

अन्त में धातुमैल को कुछ और चूना मिलाकर गाढ़ा किया जाता है तथा उसको लेई के रुप में फर्नेस के बाहर निकाल लिया जाता है। सीसे को कान्ती लोहे के पात्र में एकत्र किया जाता है। सीसे की सतह पर बनने वाले मैल (Skimmings) को अलग कर फर्नेस में भेज दिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त सीसा बहुत शुद्ध होता है।

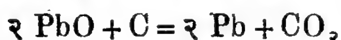
धातुमैल में इस अवस्था तक इतना सीसा बचा रहता है कि उसे फेंका नहीं जा सकता। दूसरी रिवर्बरेट्री फर्नेस में धातुमैल को कार्बन युक्त पदार्थों

तथा लौह स्क्रेप के साथ गलाया जाता है। लोहा PbS के साथ मिल कर सीसा उत्पन्न करता है—

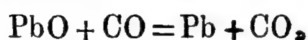


$$PbS + Fe = Fe\,S + Pb$$

कार्बन युक्त पदार्थ सीसे के आक्साइड को लघ्वीकृत करते हैं—



$$२\,PbO + C = २\,Pb + CO_२$$



$$PbO + CO = Pb + CO_2$$

इस प्रकार प्राप्त सीसा अशुद्ध होता है अतः उसका परिशोधन किया जाता है। अन्ततः बने धातुमैल में २ प्रतिशत सीसा रहता है और वह फेंक दिया जाता है।

सीसे के बेस बुलियन का मृदु करण[१], उसमें से चांदी का अलगाव तथा परिशोधन :—

सीसा बहुमूल्य धातुओं का अच्छा ग्रहण कर्त्ता है। अतः उसके खनिज में मौजूद ये सब वस्तुएँ बेस बुलियन में आ जाती हैं। बेस बुलियन में प्रायः गन्धक, तांबा, आर्सेनिक, एन्टीमनी, रांगा इत्यादि अशुद्धियाँ होती हैं। बहुमूल्य धातुओं को निकालने के पूर्व इन अशुद्धियों को अलग करना आवश्यक हो जाता है। चाँदी अलग करने के पूर्व सीसे को शुद्ध करने के निमित्त उसे मृदु (Soft) किया जाता है।

सीसे के मृदुकरण की क्रियाएँ रिवर्बेरेट्री फर्नेस में की जाती है। फर्नेस की लाइनिंग अग्निप्रतिरोधक ईंटों की होती है। उसमें १०० से २०० टन तक बेस बुलियन समा सकता है।

मृदुकरण का सिद्धान्त यह है कि सीसे की अपेक्षा अशुद्धियां शीघ्रतर आक्सीकृत होती हैं। सीसे के पिग फर्नेस में चार्ज कर दिए जाते हैं। फिर गला कर उन्हें अपेक्षाकृत कम तापमान पर रखा जाता है। बाथ को अच्छी तरह चलाया (Rabble) जाता है। इससे अधिकांश तांबा, तथा कुछ सीसा, आर्सेनिक और गन्धक आक्सीकृत होकर सतह पर आ जाते हैं। इन्हें समेट कर अलग कर दिया जाता है। इस क्रिया का नाम 'ड्रासिंग' (Drossing) है।

---

१ मृदु करण (Softening)—बेस बुलियन को शुद्ध करने की क्रिया।

अब तापमान बढ़ाया जाता है और फर्नेस की सतह को आलोड़ित कर उसे वायु के घनिष्ट सम्पर्क में लाया जाता है। इस बार आर्सेनिक तथा एन्टीमनी आक्सीकृत होकर अलग होते हैं।

तीसरी बार में शेष आर्सेनिक एन्टीमनी तथा अन्य धातुएँ आक्सीकृत होकर सीसे के एन्टीमोनेट, आर्सेनेट, स्टेनेट इत्यादि के रूप में अलग हो जाती हैं। फर्नेस में कुछ 'लिथार्ज' (PbO) मिलाकर अशुद्धियों का आक्सीकरण शीघ्रता से किया जा सकता है। अन्त में मैल (Skimmings) में केवल 'लिथार्ज' निकलता है जो इस बात का संकेत करता है कि सीसा 'मृदु' हो गया है। फिर सीसे को दूसरे पात्र में भर दिया जाता है।

सीसे के मृदुकरण में, अशुद्धियों की मात्रा के अनुसार, १४ से १६ घंटे तक लगते हैं। इस प्रक्रिया में एन्टीमनी के कारण बहुत देर लगती है। मृदुता सीसे की शुद्धता की सूचक है। अशुद्ध सीसा कठोर होता है।

इस प्रकार सीसे की शुद्धि क्रिया का नाम 'मृदुकरण' रखा गया है।

चाँदी अलग करना

अधिकांश सीसे के खनिजों में चाँदी इतनी मात्रा में मौजूद रहती है कि उसे लाभपूर्वक निकाला जा सकता है। वास्तव में चांदी की अनुपस्थिति में कई स्थान के खनिज बेकार-से हो जाते हैं। सीसे में से चांदी निकालने की दो पद्धतियाँ हैं :—

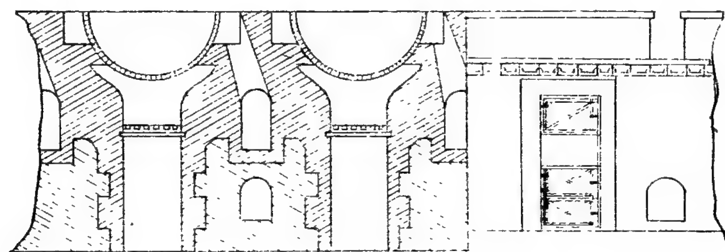
(१) पैटिन्सन पद्धति (Pattinsons Process)

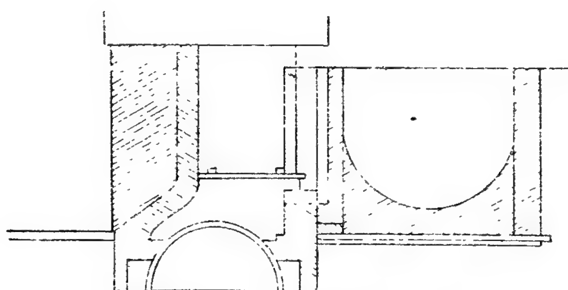
(२) पार्क्स पद्धति (Parke's Process)

पैटिन्सन पद्धति

इस पद्धति का सिद्धान्त यह है कि जब रजतमय द्रव सीसे को ठंडा किया जाता है तब चांदी पहिले जमने वाले भाग में कम और बाद में जमने वाले भाग में क्रमशः अधिक होती जाती है। इस प्रकार यदि बाद वाले भाग को, जो अधिक समय तक द्रव रूप में रहता है दूसरे पात्र में फिर से गलाया जाय तो यही बात पुनः लागू होती है और इस बार बाद के भाग में चांदी की मात्रा और भी अधिक होती है। इस क्रिया को बारबार करने से अधिकांश चांदी थोड़े से सीसे में केन्द्रीभूत हो जाती है।

जिन पात्रों में यह क्रिया होती है वे संख्या में १२ होते हैं तथा एक पंक्ति में रखे जाते हैं। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक पात्र में हर बार





चित्र सं० ७१ पैटिन्सन पात्र

ऐसा सीसा भरा जाए जिसमें चाँदी का परिमाण पूर्ववत् हो। मृदुकरण के बाद द्रव सीसे को उसकी चांदी की मात्रा के अनुसार उपयुक्त संख्या वाले पात्र में भरा जाता है। उसे धीरे-धीरे ठंडा होने दिया जाता है। लगभग दो तिहाई सीसा रवों के रूप में अलग हो जाता है। शेष एक तिहाई सीसा उस पात्र में द्रव रूप में बचा रहता है। इस सीसे में प्रारम्भिक द्रव सीसे की अपेक्षा चांदी की मात्रा दूनी होती है तथा रवे बने हुए दो तिहाई भाग में पहिले की अपेक्षा आधी। द्रव सीसे को बाईं ओर रखे बगल वाले पात्र में स्थानान्तरित किया जाता है तथा रवे बने हुए सीसे को दाहिनी ओर वाले पात्र में। यह क्रिया बार-बार की जाती है। बाईं ओर के अन्तिम पात्र में प्रतिटन ३०० से ५०० औंस चाँदी होती है। इसको 'क्यूपेलेशन' (Cupellation) द्वारा अलग किया जा सकता है।

इन पात्रों का व्यास ५ फुट तथा गहराई ३ फुट होती है। प्रत्येक में ११ से १५ टन तक सीसा समाता है। यदि सीसा अशुद्ध हो तो रवे बहुत छोटे बनते

हैं और मैल बहुत अधिक बनता है। अतः चाँदी के निष्कर्षण के पूर्व सीसे का मृदुकरण अत्यावश्यक है।

इस पद्धति की एक विशेषता यह है कि प्राप्त सीसा मृदु और शुद्ध होता है क्योंकि अशुद्धियाँ सदैव द्रव भाग में चली जाती हैं। बिस्मथ चाँदी युक्त भाग में केन्द्रित हो जाता है और बाद में उसे प्राप्त किया जा सकता है। इस पद्धति द्वारा प्रति टन सीसे में यदि १५ औंस चाँदी भी हो तो उसे अलग किया जा सकता है।

पार्क्स पद्धति

इस पद्धति ने अधिकांश में पैटिन्सन पद्धति की जगह ले ली है। यह पद्धति निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है :—

१. द्रव अवस्था में सीसा और जस्ता आपस में अघुलनशील (Immiscible) हैं।
२. सीसे की अपेक्षा जस्ता अधिक चाँदी और सोना घोल सकता है।
३. सीसे की अपेक्षा जस्ता हल्का होता है तथा
४. सीसे की अपेक्षा जस्ते का द्रवणांक अधिक होता है।

यदि बहुमूल्य धातुओं वाले द्रव सीसे में द्रव जस्ता मिला दिया जाय तो चाँदी और सोना सीसे को छोड़कर जस्ते में घुल जाते हैं तथा रजत-जस्ता और स्वर्ण-जस्ता धातुसंकर सीसे में अघुलनशील होने के कारण उससे अलग होकर ऊपर की सतह पर आ जाते हैं। सीसा नीचे बैठ जाता है क्योंकि उसका आपेक्षिक घनत्व अधिक होता है। जस्ते का द्रवणांक अधिक होने के कारण वह द्रव रूप में रहता है तथा सतह पर पपड़ी (Crust) के रूप में प्रगट होता है। इस पपड़ी को अलग कर लिया जाता है। इसके साथ कुछ सीसा भी चला जाता है। जब इस पपड़ी को रिटार्ट में गरम किया जाता है तब जस्ता उड़ जाता है और सीसा, चाँदी तथा सोने का मिश्रण रिटार्ट में बच रहता है। क्यूपेलेशन द्वारा चाँदी और सोना अलग कर लिए जाते हैं।

ताँबा, आर्सेनिक तथा एन्टीमनी आदि अशुद्धियों के कारण जस्ता अधिक खर्च होता है इसलिए पहिले सीसे को मृदु कर लेना आवश्यक है।

पद्धति

मृदु द्रव सीसे को ३० से ६० टन वाले कान्ती लोहे के पात्रों में उड़ेला जाता है। जस्ते की पटियाँ (Slabs) दो बार में छोड़ी जाती हैं तथा विद्युत्

प्रबंध द्वारा पूरे बाथ को विलोड़ित किया जाता है। फिर निथरने का अवसर दिया जाता है। द्रव की सतह पर जस्ते की पपड़ी बनने लगती है। प्रथम पपड़ी में अधिकांश सोना तथा कुछ चाँदी आ जाती है। दुबारा जस्ता छोड़ने पर सब सोना तथा चाँदी अलग हो जाती है और सीसे में प्रतिटन केवल ०.७ प्रतिशत जस्ता तथा ५ औंस चाँदी बच रहती है। इसको रिवर्बेरेट्री फर्नेस में शोधन कर पिग में ढाल दिया जाता है और फिर बाजार में भेज दिया जाता है।

क्यूपेलेशन (Cupellation)

जस्ते के रिटार्ट या पैटिन्सन पद्धति के पात्रों द्वारा प्राप्त बहुमूल्य धातुयुक्त सीसे में से क्यूपेलेशन द्वारा चाँदी तथा सोना अलग किये जाते हैं।

क्यूपेलेशन का सिद्धान्त यह है कि जब द्रव रजत-स्वर्ण-सीस धातुसंकर को वायु के झोंके के सम्पर्क में लाया जाता है तब सीसा आक्सीकृत होकर 'लिथार्ज' (PbO) बन जाता है। सोना और चाँदी अप्रभावित रहती है।

क्यूपेलेशन छोटी रिवर्बेरेटरी फर्नेस में की जाती है। क्यूपेल (घरिया या पात्र) अंडाकार होती है तथा बीच में गहरी रहती है। जिसमें द्रव धातु भरी जाती है। यह चूने के पत्थर, अग्निप्रतिरोधक मिट्टी, मैग्नेसाइट सीमेंट इत्यादि कई पदार्थों को मिलाकर बनाई जाती है। इसको पहियेदार गाड़ी पर रखा जाता है। छत स्थायी रहती है। आवश्यकतानुसार उसे हटाया चढ़ाया जाता है।

क्यूपेलेशन की क्रिया

क्यूपेल की गाड़ी फर्नेस में लगा दी जाती है तथा उसे धीरे-धीरे गरम किया जाता है। जब वह गरम हो जाती है तब उसमें स्वर्ण-रजत-सीस धातुसंकर छोड़कर गलाया जाता है। और सीसा मिलाकर क्यूपेल भर दी जाती है। अब तापमान १०००° सें० तक बढ़ाकर द्रव धातु में वायु का झोंका भेजा जाता है। लिथार्ज (PbO) का निर्माण होकर वह बाहर बह जाता है तथा ताजा सीसा मिलाया जाता है जिससे धातु की सतह एक सी रहे। यह क्रिया तब तक चालू रहती है जब तक सीसे में चाँदी का अनुपात ६० से ७० प्रतिशत नहीं हो जाता।

इस धातु का परिशोधन उसी फर्नेस में या दूसरी फर्नेस में किया जाता है। रजत-सीस-धातुसंकर को द्रव रखने के लिये तापमान और बढ़ा दिया जाता है। अन्त में शेष बची अशुद्धियों को आक्सीकृत करने के लिये सोडियम नाइट्रेट

मिलाया जाता है। शोधित चाँदी शुद्धता में ६६५ (अर्थात् ९९·५ प्रतिशत) होती है। क्यूपेलेशन में १ प्रतिशत चाँदी नष्ट हो जाती है।

पैटिन्सन और पार्क्स पद्धतियों की तुलना :—

पैटिन्सन पद्धति	पार्क्स पद्धति
१ प्राप्त चाँदी के शोधन की आवश्यकता नहीं होती। बहुत शुद्ध सीसा मिलता है।	१. चाँदी के निष्कर्षण के बाद सीसे का परिशोधन करना पड़ता है।
२ प्राप्त सीसा क्यूपेलेशन के लिये अधिक उपयुक्त नहीं होता क्योंकि उसमें चाँदी की मात्रा कम (३०० से ५०० औंस प्रतिटन) होती है।	२. सीसे में चाँदी की मात्रा २००० से ५००० औंस प्रतिटन तक होती है अतः यह क्यूपेलेशन के लिये बहुत उपयुक्त है।
३. सोने के निष्कर्षण के उपयुक्त नहीं है।	३. सोने के निष्कर्षण के उपयुक्त है।

उपर्युक्त गुणों के कारण पार्क्स पद्धति अधिक प्रचलित है।

बर्मा कार्पोरेशन का सीसे का कारखाना

इस कार्पोरेशन की पूँजी १८ करोड़ रुपये की है। खनिज उत्तम कोटि का है। खदानें वाडविन (उत्तरी बर्मा) में स्थित हैं तथा कारखाना १३ मील दूर नामट्ठ नामक स्थान में है। यहाँ रोस्टिंग तथा परिशोधन प्लान्टों सहित १३ ब्लास्ट फर्नेस हैं। ग्राइंडिंग मिल तथा फ्लोटेशन प्लान्ट में प्रतिदिन १००० टन खनिज की ड्रेसिंग होती है। नामायो नदी पर बने जल-विद्युत् प्लांट से बिजली प्राप्त की जाती है।

अध्याय २३

जस्ता

दो शताब्दी पूर्व तक जस्ता स्वतंत्र धातु के रूप में सुलभ नहीं था, यद्यपि जस्ते के आक्साइड तथा ताम्र खनिज को एक साथ गलाकर पीतल बनाया जाता था। भारतवर्ष में जस्ते के छोटे जमाव कई जगह हैं पर बड़ा कहीं नहीं है।

भौतिक गुण

इसका रंग नीलापन लिये हुए सफेद होता है। द्रवणांक ४१९° सें० है। यह ९४०° सें० पर उबलता है तथा सरलतापूर्वक स्रावित किया जा सकता है। साधारण तापमान पर यह अधिक घनवर्धनीय तथा तांतव नहीं होता परंतु ११०° से १५०° सें० तापमानों के बीच यह सरलता से बेला जा सकता है तथा तार खींचे जा सकते हैं। जस्ते में १ प्रतिशत सीसा मिला देने से बेलाई में सुगमता होती है। लगभग २००° सें० पर जस्ता बहुत भंजनशील हो जाता है। ढली हुई हालत में इसके तनाव की दृढ़ता २ टन प्रतिवर्ग इंच होती है तथा तार खींचने पर वह ७ या ८ टन हो जाती है। यह संक्षारणावरोधक होता है। यह सीसे से हल्का होता है।

उपयोग

संक्षारणावरोध अर्थात् वायुमंडल के प्रभाव से मोर्चा धब्बे आदि न पड़ने के कारण संसार के जस्ते का अधिकांश भाग इस्पात की सतह पर पतली परत चढ़ाने में—स्प्रेइंग (Spraying), शेरर्डाइज़िंग तथा गेल्वेनाइज़िंग में—खर्च होता है। पीतल तथा डाइकास्टिंग (Die casting) धातुमैल के निर्माण में भी बहुत-सा जस्ता खर्च होता है। जस्ते की चद्दरों का उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। ZnO का उपयोग रंग के निर्माण में होता है। संसार में प्रतिवर्ष लगभग १६ लाख टन जस्ता उत्पन्न होता है।

जस्ते के धातुसंकर

पीतल के निर्माण में बहुत अधिक जस्ता खर्च होता है। विभिन्न प्रकार के पीतलों का वर्णन ताँबे के अध्याय में किया जा चुका है। जस्ते के अन्य धातुसंकर ये हैं :—

नाम	जस्ता प्रतिशत	राँगा प्रतिशत	ताँबा प्रतिशत	अन्य धातुएँ प्रतिशत
डाइकास्टिंग धातुसंकर	८५	८	४	३
बेयरिंग धातु	६५	३०	५	
ब्रेज़िंग सोल्डर (पीतल का टाँका)	५७,४९	...	३४, ४९	८, १० गिलट

जस्ते के खनिज

जस्ते के दो प्रधान खनिज हैं :—

१. 'स्फेलेराइट' या 'जिंकब्लेन्ड'

यह जस्ते का सल्फाइड (ZnS) है। शुद्ध स्फेलेराइट में ६७ प्रतिशत जस्ता होता है। जस्ते का अधिकांश इसी खनिज से प्राप्त होता है। इसके साथ बहुधा गेलिना तथा ताम्र-लौह-पायराइट मिलेजुले रहते हैं। इसका आपेक्षिक घनत्व ३.५ है।

२. कैलेमीन (Calamene) यह जस्ते का कार्बोनेट ($ZnCO_3$) है। इसमें ५२ प्रतिशत जस्ता रहता है।

खनिजों के जमाव

पहिले बताया जा चुका है कि खनिज जमावों में सीसा और जस्ता बहुधा साथ-साथ मिलते हैं। वायुमंडल के प्रभाव से स्फेलेराइट गेलिना की अपेक्षा शीघ्रतर विबन्धित होता है और भूगर्भ के जल प्रवाह द्वारा बहकर नीचे (गहराई

में) चला जाता है। यही कारण है कि कई वर्तमान जस्ते की खदानें पहिले सीसे और चांदी की खदाने थीं। सीसे की खदानें पुरानी होने पर उनमें से जस्ता निकलने लगता है। जस्ते का उत्पादन इन देशों में होता है :—

सं० रा० अमेरिका, जर्मनी, कनाडा, आस्ट्रेलिया, इटली, स्पेन, अल्जीरिया, ट्यूनिस, ग्रीस तथा स्वीडन।

भारत और बर्मा में जस्ते के खनिज का वितरण

बाडविन खान (बर्मा) के सीसा, चांदी तथा जस्ता के जमाव विस्तार तथा उत्तमता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इनमें लगभग ४० लाख टन खनिज है, जिसमें १५ प्रतिशत जस्ता है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व प्रतिवर्ष करीब ८०,००० टन जस्ते के कंसेन्ट्रेट जिनमें ५७ प्रतिशत जस्ता होता था, जस्ते के निर्माण के लिये बेल्जियम, जापान तथा जर्मनी भेजे जाते थे। चूंकि टाटा के लोहे और इस्पात के कारखाने द्वारा बहुत अधिक परिमाण में जस्ता तथा गन्धकाम्ल इस्पात की चद्दरों को गेल्वेनाइज़ करने में खर्च होता है इसलिये यह विचार किया गया कि टाटानगर के पास ही एक कारखाना खोलकर प्रतिवर्ष २५००० टन उच्चकोटि का जस्ते का कंसेन्ट्रेट गलाकर जस्ता और गन्धकाम्ल बनाया जाय। इस कारखाने में प्रतिवर्ष १९००० टन जस्ता तथा २५००० टन गन्धकाम्ल उत्पन्न होता और इस प्रकार भारत में इन दोनों वस्तुओं की खपत के अधिकांश भाग की पूर्ति हो जाती। किन्तु इस उद्योग को स्थापना के विरुद्ध तत्कालीन विदेशी सरकार द्वारा निम्नलिखित दलीलें पेश को गईं :—

१. भारतीय मजदूर जस्ते की फर्नेस चार्ज करने के बिलकुल योग्य नहीं है।

२. भारतीय कोयला निम्नकोटि का है।

३. भारत में रिटार्ट बनाने योग्य उच्चकोटि की मिट्टी अभी तक नहीं खोजी जा सकी है।

ये दलीलें लचर हैं और आशा है राष्ट्रीय सरकार इस ओर ध्यान देगी। इस समय भारतवर्ष में जस्ता उत्पन्न नहीं होता यद्यपि जस्ते के छोटे जमाव उदयपुर-रियासत, कश्मीर तथा सिक्किम में पाये जाते हैं। भारत सरकार उदयपुर स्थित खदान के विकास में सहायता दे रही है।

उदयपुर के अन्तर्गत जावार की सीसे-जस्ते की खदानें १७ वीं शताब्दी में चालू थीं और बड़ी महत्वपूर्ण समझी जाती थीं। सन् १८१२ में पश्चिमी भारत में भीषण अकाल पड़ा। उसी समय ये खदानें बन्द कर दी गईं। खनिज कैलेमीन

किस्म का है। सन् १८७२ में इन खदानों की नाप जोख (प्रास्पेक्टिंग) फिर आरम्भ हुई पर खदानों में भरा हुआ पानी खाली नहीं किया जा सका। अतः योजना स्थगित कर दी गई। द्वितीय महायुद्ध में बर्मा के पतन के बाद 'जियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया' की देखरेख में फिर काम चालू किया गया था। अब एक कंपनी खनिज निकाल रही है।

सिक्किम में कैलेमीन तथा स्फेलेराइट तांबे की खनिज के साथ-साथ मिलते हैं।

जस्ते का आयात

हमारा देश आस्ट्रेलिया, अमेरिका, जर्मनी तथा बेल्जियम से प्रतिवर्ष लगभग २२००० टन जस्ता आयात करता है। उद्योग धन्धों के विकास के साथ आयात का परिमाण दिनोदिन बढ़ता जा रहा है।

जस्ते का निष्कर्षण (Extraction)

खनिज से जस्ता प्राप्त करने की पुरानी तापीय पद्धति अब भी प्रचलित है। हाल ही में यह संभव हो सका है कि सल्फाइड खनिज की रोस्टिंग की प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाले SO_2 से गन्धकाम्ल तैयार किया जा सके। ऐसा होने से जस्ते के निष्कर्षण का व्यय अंततः बहुत कम हो जाता है। रोस्ट किए पदार्थ को क्षैतिज (Horizontal) रिटार्टों में उच्च तापमान पर कार्बन द्वारा लब्धीकृत किया जाता है। फर्नेस में जस्ते का वाष्प बनता है। इसे फर्नेस के बाहर द्रवीकरण पात्रों (Condensers) में ठंडा कर द्रव प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार उत्पन्न जस्ता ९८ प्रतिशत शुद्ध होता है। इसका व्यापारिक नाम 'स्पेल्टर' (Spelter) रखा गया है।

हाल में जस्ते के धातुविज्ञान में बहुत प्रगति हुई है तथा अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध धातु का निर्माण होने लगा है। इस धातु के गुण स्पेल्टर की अपेक्षा उत्कृष्ट होते हैं। इस शुद्ध धातु की उत्पत्ति के फलस्वरूप जस्ते के विविध उपयोग तथा मांग बढ़ गई है।

वैद्युत् पद्धति में (जो अब पर्याप्त विकसित हो चली है) रोस्ट किए हुए खनिज को गंधकाम्ल में घोल दिया जाता है तथा घोल को शुद्ध करने के बाद जस्ता विद्युत् विश्लेषण द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह धातु ९९.९५ प्रतिशत शुद्ध होती है।

ताँबा, सीसा, राँगा इत्यादि साधारण धातुओं की अपेक्षा जस्ते की रासायनिक क्रियाशीलता अधिक होती है और यह शीघ्रता से आक्सीकृत हो जाता है। फर्नेस के वातावरण में १०००° से तापमान के ऊपर १ प्रतिशत CO_2 भी इसको आक्सीकृत करने के लिए पर्याप्त हैं। ब्लास्ट फर्नेस तथा रिवर्बरेट्री फर्नेस में CO_2 की मात्रा इतनी कम करना संभव नहीं है। छोटे, बन्द रिटार्ट में, जो बाहर से गरम किया जाता है, आक्सीजन तथा CO_2 की मात्रा सूक्ष्मतापूर्वक नियंत्रित की जा सकती है।

जस्ते के निष्कर्षण की दो प्रधान पद्धतियाँ हैं :—

१—तापीय पद्धति (Pyrometallurgical) तथा
२—जलीय पद्धति (Hydrometallurgical)

तापीय पद्धति

जस्ते की खनिज गलाने की कला में गत कुछ वर्षों में बहुत प्रगति हुई है। खनिज ड्रेसिंग की उन्नत रीतियों, विशेषत: 'डिफरेंशल फ्लोटेशन' (Differential flotation) पद्धति के विकास से जो सीसा-जस्ता-खनिज पहिले निकृष्ट कोटि का समझा जाता था तथा उसका उपयोग नहीं होता था, अब लाभप्रद ढंग से उसे काम में लाया जा रहा है।

जस्ते के गलाने में तीन स्थितियाँ (Stages) होती हैं।

१—ब्लेन्ड (ZnS) को रोस्टकर ZnO बनाना।

२—कार्बन युक्त पदार्थ के साथ ZnO का स्रावण और धातु जस्ते का निष्कर्षण।

३—धातु जस्ते का शोधन।

रोस्टिंग

ZnS को पूर्णत: रोस्ट करना सहज नहीं है। रोस्टिंग ZnS को ZnO में परिवर्तित करने के लिये की जाती है क्योंकि जो ZnS बच रहता है वह रिटार्ट में स्रावण होते समय लव्वीकृत होकर धातु जस्ता नहीं बन सकता। रोस्टिंग में निम्नलिखित रासायनिक क्रियाएँ होती हैं।


$$२\ Zns + ३ \cdot O_2 = २\ ZnO + २\ SO_2$$

$$२\ ZnS + ७ \cdot O = ZnO + ZnSO_4 + SO_2$$

$$ZnSO_4 = ZnO + SO_3 \text{ (उच्च तापमान पर)}$$

सफल रोस्टिंग के लिये फर्नेस की छत नीची होनी चाहिये तथा तापमान ८००° सें० से अधिक न होना चाहिये।

कम तापमान पर बना जस्ते का सल्फेट ($ZnSO_4$) ७६०° सें० पर सरलतापूर्वक वायु के सम्पर्क में विबन्धित होने लगता है। यदि तापमान ८००° सें० से अधिक रहता है तो जस्ता उड़कर नष्ट हो जाता है तथा चाँदी भी (यदि मौजूद हो तो) नष्ट हो जाती है।

रोस्ट किए हुए खनिज में गन्धक की मात्रा १ प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये।

रोस्टिंग के लिए कई प्रकार की फर्नेस होती हैं जिनमें निम्नलिखित अधिक लोकप्रिय हैं :—

१—रिवर्बेरेट्री फर्नेस (हाथ या यंत्र द्वारा विलोडित)।

२—हीगेलर मल्टी मफल फर्नेस (Hegeler Multimuffle Furnace)।

३—स्पर्लेट फर्नेस (Spirlet Furnace) तथा।

४—ड्वाइट लाएड सिन्टरिंग मशीन (Dwight Loyed Sintering Machine)।

रिवर्बेरेट्री फर्नेस

इस फर्नेस में चार्ज को हाथ से या यंत्र द्वारा चलाया जाता है। इसका उपयोग उस समय किया जाता है जब SO_2 से गन्धकाम्ल न बनाना हो क्योंकि गन्धकाम्ल के निर्माण के निमित्त गैसों में कम से कम ५ प्रतिशत SO_2 होना चाहिये। पर इस फर्नेस की गैस में यह २ प्रतिशत ही होता है। यदि कारखाना शहर के पास हो तो ऐसी फर्नेस का उपयोग न करना चाहिये क्योंकि SO_2 के जहरीले धुएँ से जनता का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। शहर से दूर निर्जन स्थान में ही इसका उपयोग उचित है।

हीगेलर फर्नेस

यह फर्नेस अमेरिका में बहुत प्रचलित है। इसमें कई मफल[1] रहते हैं।

---

१. मफल (Muffle) ऐसे बन्द दहन कक्ष को जिसमें चार्ज ईंधन या गैसों के सम्पर्क में नहीं आता मफल या मफल फर्नेस कहा जाता है। देखिए चित्र संख्या २८ पृष्ठ ६१।

चूँकि ईंधन की गैसें फर्नेस के अन्दर नहीं आने पातीं इसलिये रोस्टिंग द्वारा प्राप्त SO_2 की मात्रा ५ प्रतिशत से अधिक रहती है। अतः इस पद्धति के अन्तर्गत गन्धकाम्ल का निर्माण हो सकता है।

इस फर्नेस में चौदह मफल होते हैं। खड़ी मध्यरेखा के दोनों ओर सात-सात मफल होते हैं। ये एक के ऊपर एक बने रहते हैं। ऊपर के चार मफल तप्त गैस (flue) द्वारा आवृत्त नहीं रहते। दोनों ओर के पाँचवें मफल के नीचे गैस मार्ग रहता है तथा छठवें और सातवें मफल नीचे और ऊपर दोनों ओर से तप्त गैसों द्वारा गरम होते हैं। प्रोड्यूसर गैस का उपयोग ईंधन की तरह होता है। तप्त गैस ऊपर उठती है और मफल के बीच में बने मार्ग से ऊपर उठती हुई मफलों को बाहर से गरम करती है। मफल ५ फीट चौड़े तथा ७० से ८० फीट लम्बे होते हैं। मफल के पार्श्व में ऐसा प्रबन्ध रहता है जिससे चार्ज को चलाया (raffle) जाता है। प्रत्येक मफल के छोर पर छेद होता है जिससे चार्ज नीचे के मफल में गिराया जाता है। खनिज और गैस के बढ़ाव की दिशाएँ एक दूसरे के विरुद्ध होती हैं। रोस्टिंग की क्रिया तापक्षेपक (Exothermic) होती है अतः ऊपर के चार मफल में बाहरी ताप की आवश्यकता नहीं होती। ऊपर के मफल में गन्धक की मात्रा सबसे अधिक होती है इसलिए रासायनिक ताप भी सबसे अधिक उसी में उत्पन्न होता है।

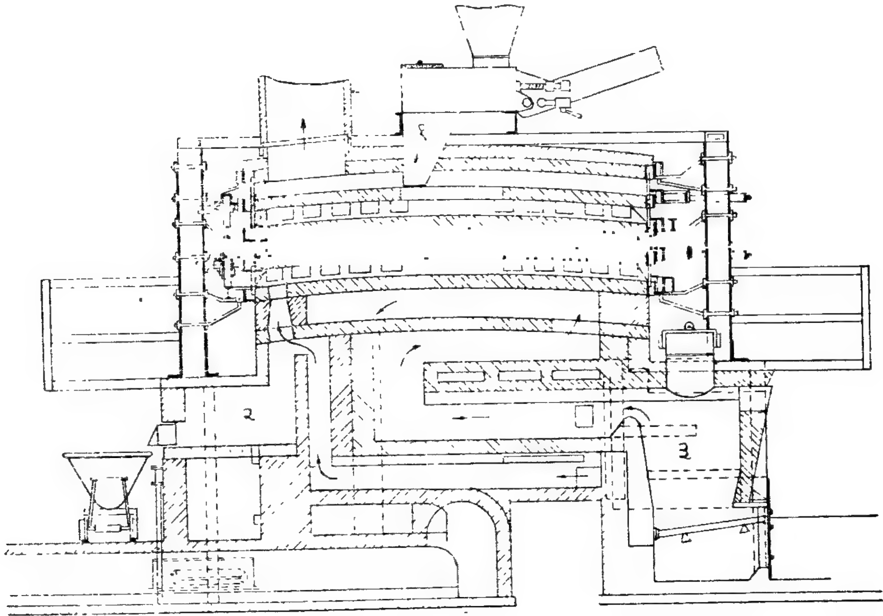
ऊपर के मफल में ZnS आक्सीकृत होकर ZnO तथा $ZnSO_4$ बनता है। नीचे के मफल में अधिक तापमान के कारण $ZnSO_4$ विबन्धित होकर ZnO तथा SO_3 बनता है।

७५ फुट लम्बी फर्नेस में प्रतिदिन ४०-५० टन खनिज रोस्ट किया जाता है। उसका चतुर्थांश कोयला प्रोड्यूसर गैस बनाने में खर्च होता है।

स्पलेंट फर्नेस

इस फर्नेस का उपयोग अधिकांश योरोपीय देशों में होता है। इसमें एक के ऊपर एक चार वृत्ताकर हार्थ होते हैं जिनमें ऊपर के तीन केन्द्रीय धुरी के चारों ओर घूमते हैं। ये हार्थ किंचित् मेहराबदार होते हैं। सबसे नीचे का हार्थ नहीं घूमता। हार्थ के नीचे की ओर दाँते लगे रहते हैं जो हार्थ के घूमने पर नीचे वाले हार्थ पर स्थित खनिज को चलाते (आलोड़ित करते) जाते हैं। ऐसा प्रबन्ध रहता है कि एक हार्थ में खनिज सरक कर केन्द्र की ओर बने छेद

के पास एकत्र होता है तथा दूसरे में बाहरी छोर के पास। इस प्रकार इन छेदों में से खनिज नीचे के हार्थ पर गिरता है। २४ घण्टे में ५ टन खनिज रोस्ट



चित्र सं० ७२ स्पर्लेट फर्नेस

१. खनिज चार्ज करने का स्थान; २. रोस्ट किया हुआ खनिज बाहर निकलने का स्थान; ३. दहन कक्ष। वाण द्वारा ज्वाला की दिशा दिखाई गई है।

होता है। गैसों में SO_2 की मात्रा ५ से ८ प्रतिशत होती है जिससे गन्धकाम्ल बनाया जा सकता है।

हीगेलर फर्नेस की अपेक्षा स्पर्लेट फर्नेस में ये विशेष गुण होते हैं :—

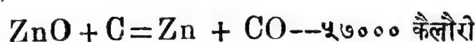
(१) अधिक ताप (२) कम शक्ति का व्यय
(३) कम धूल (४) गैस में अधिक SO_2 तथा
(५) कम मजदूरों की आवश्यकता।

ड्वाइट लाएड सिंटरिंग मशीन

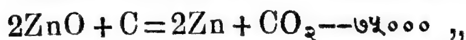
इसमें रोस्ट करने के पहिले दूसरी फर्नेस में खनिज को रोस्टकर उसके गंधक की मात्रा १० प्रतिशत कर ली जाती है। फिर उसे इस फर्नेस में रोस्ट किया जाता है। इस फर्नेस में रोस्ट किया हुआ खनिज स्रावण होने पर अधिक जस्ता उत्पन्न करता है। कम ईंधन खर्च होता है तथा रिटार्ट कम खराब होते हैं।

स्रावण

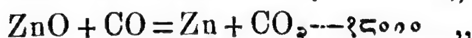
जस्ते का क्वथनांक ६४०° सें० है पर स्रावण शीघ्रतापूर्वक संपन्न करने के लिये १२००° सें० से १४००° सें० तक तापमान बढ़ाया जाता है। चूँकि ZnO के लघ्वीकरण की सभी रासायनिक क्रियाएँ तापशोषक होती हैं अतः बाहर से गर्मी पहुँचायी जाती है।



$$ZnO + C = Zn + CO \text{ -- ५७००० कैलौरी}$$



$$2ZnO + C = 2Zn + CO_2 \text{ -- ७५००० ,,}$$



$$ZnO + CO = Zn + CO_2 \text{ -- १८००० ,,}$$



$$CO_2 + C = 2CO \text{ -- ३६००० ,,}$$

स्रावण के समय वह जस्ता जो सल्फाइड या सल्फेट के रूप में रहता है, लघ्वीकृत नहीं होता। जस्ते के सिलिकेट और फेराइट लघ्वीकृत हो जाते हैं।

रोस्ट किये हुए खनिज का स्रावण तीन पद्धतियों से होता है :--

१—बेल्जियन पद्धति।

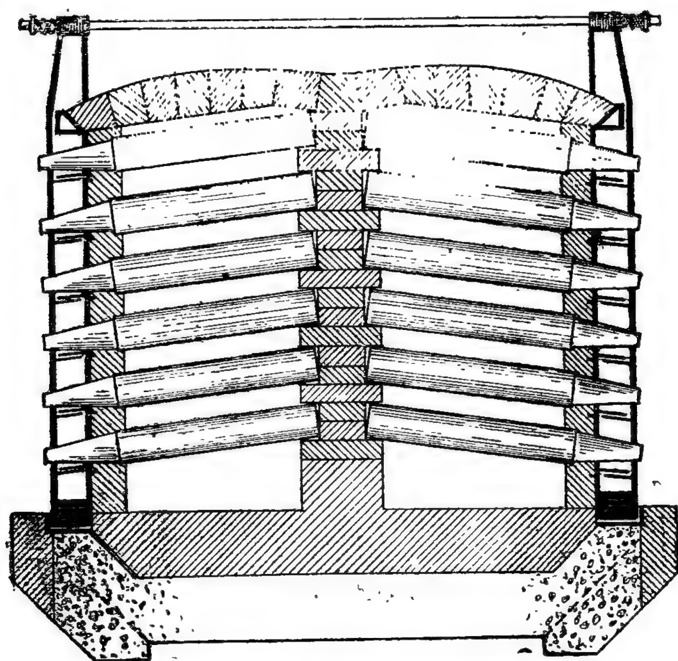
२—साइलेशियन पद्धति तथा

३—बेल्गो-साइलेशियन या रेनिश पद्धति।

बेल्जियन पद्धति

इस पद्धति में अंडाकार रिटार्ट इस्तेमाल किये जाते हैं। ये रिटार्ट अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टी तथा कोक चूर्ण से बनाये जाते हैं। रिटार्ट की बड़ी धुरी ९ इंच और छोटी ६ इंच होती है तथा दीवाल की मोटाई १ इंच होती है। रिटार्ट की लम्बाई लगभग ४ फुट होती है। फर्नेस सकरी, ऊँची और मेहराबदार होती है।

उसमें रिटार्टों की दो पंक्तियाँ रहती हैं। प्रत्येक पंक्ति में नीचे से उपर तक पाँच या छः रिटार्ट होते हैं।



चित्र सं० ७३ आधुनिक अमेरिकन फर्नेस

रिटार्ट का बन्द छोर फर्नेस के अन्दर तथा मुख बाहर की ओर होता है। मुख के पास वह फर्नेस की दीवाल पर सँभला रहता है। रिटार्ट मुख की ओर थोड़ा झुका रहता है। फर्नेस तेल या गैस से जलाई जाती है। इस पद्धति का स्थान अब बेल्गो-साइलेशियम पद्धति ले रही है।

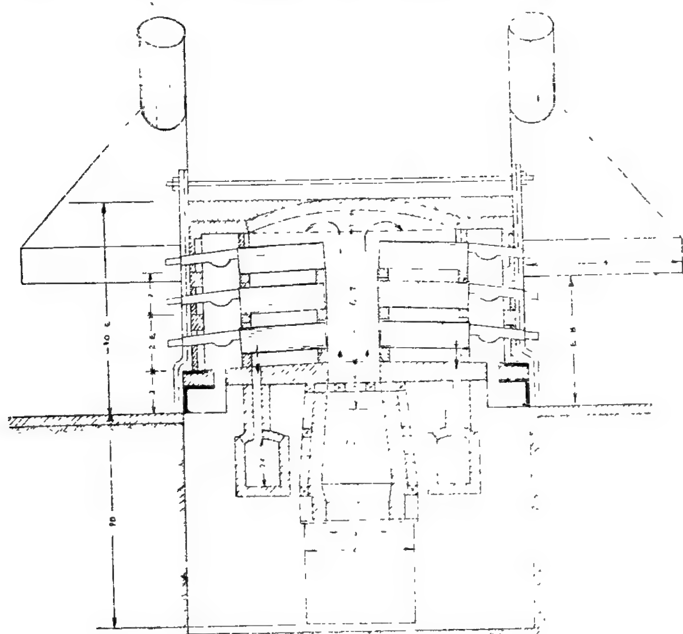
साइलेशियन पद्धति

यह पद्धति भी अब समाप्त हो चली है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें बड़े रिटार्ट मफल के रूप में काम में लाये जाते हैं। फर्नेस में सिर्फ एक पंक्ति होती है। साइलेशियन रिटार्ट की लम्बाई ५ फुट ऊँचाई ३ फुट, चौड़ाई ७ इंच तथा दीवाल की मोटाई करीब एक इंच होती है।

बेल्गो साइलेशियन या रेनिश पद्धति

इसमें उपर्युक्त दोनों तद्धतियों की अच्छी बातें निहित हैं। इसकी बनावट बहुत कुछ साइलेशियन ढंग की होती है तथा रिटार्ट बेल्जियन पद्धति के रिटार्ट

की तरह होते हैं। रिटार्ट जंजीर की कड़ी के आकार का होता है जिसकी चौड़ाई अन्दर से ७ इंच तथा ऊँचाई १२ इंच होती है। एक पंक्ति में एक दूसरे के ऊपर तीन रिटार्ट होते हैं। अधिकांश फर्नेस रीजेनरेटिव ढंग की होती है।



चित्र सं० ७४ रेनिश फर्नेस।

स्रावण के चार्ज में रोस्ट किया हुआ खनिज तथा लघ्वीकर पदार्थ (कोयला) रहता है। खनिज में ७–८ प्रतिशत से अधिक लोहा न होना चाहिये अन्यथा गलनशील सिलिकेट बनते हैं जो रिटार्ट को हानि पहुँचाते हैं। सीसा १२ प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिये यद्यपि कई स्थानों पर वह १४ से २० प्रतिशत तक होता है। लघ्वीकर पदार्थ अर्थात् कोयला, कोक या एन्थ्रेसाइट में राख तथा गन्धक कम होना चाहिये। कोयला या कोक की मात्रा चार्ज के ४०–५० प्रतिशत के करीब होती है जो सैद्धान्तिक परिमाण की तीन चार गुनी है।

चार्ज को मिश्रित करने वाले यंत्र में अच्छी तरह मिश्रित किया जाता है तथा रिटार्ट में चार्ज करने के पूर्व उसे आर्द्र कर लिया जाता है। जस्ते का स्रावण आरम्भ होने के पूर्व आर्द्रता उड़ जाती है। प्रत्येक रिटार्ट में ६० से ६० पौंड चार्ज भरा जाता है।

स्रावण की पद्धति

रिटार्टों में से पहिले के चार्ज की बची हुई वस्तुओं को निकालकर नया चार्ज चम्मचों से भरा जाता है। सफाई और चार्जिंग में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। टूटे हुए रिटार्ट हटाकर नए लगाए जाते हैं। रिटार्टों को भरने के बाद उनके मुखों पर कन्डेन्सर फिट किए जाते हैं। जोड़ को अग्नि प्रतिरोधक मिट्टी से लसा जाता है। इन सब क्रियाओं में पाँच घंटे लगते हैं। प्राथमिक लम्बीकरण का काल अब आरम्भ हो जाता है तथा आर्द्रता, हाइड्रो कार्बन इत्यादि उड़कर अलग हो जाते हैं और जस्ते को छोड़कर अन्य धातुओं (जैसे लोहा, सीसा आदि) के आक्साइड अनाक्सीकृत होते हैं। रिटार्ट का तापमान अब क्रमशः बढ़ाया जाता है। कन्डेन्सर में से सबसे पहिले कोयला गैस बाहर निकलती है। यह कन्डेन्सर के मुख पर प्रकाशमान ज्वाला के साथ जलती है। इस अवस्था में CO_2 की मात्रा अधिक होती है अतः जस्ता भी अधिक आक्सीकृत होता है। जैसे जैसे धातुओं के आक्साइड अनाक्सीकृत होते जाते हैं और CO की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे वैसे ज्वाला का प्रकाश कम होता जाता है तथा अन्त में बैंगनी रंग का हो जाता है। जस्ते का स्रावण आरम्भ होने पर हरा नीला प्रकाश निकलता है। उस समय कन्डेन्सर पर नोकदार पाइप लगाया जाता है। इस स्थिति तक आने में तीन घंटे लगते हैं।

इसके बाद करीब १३ घंटे तक जस्ता तेजी से अनाक्सीकृत होकर स्रावित होता है। फिर करीब साढ़े चार घंटे तक बचे हुए जस्ते का स्रावण मन्द गति से होता है। इस समय तापमान बढ़ाया जाता है। नोकदार पाइप के मुख पर बैंगनी (Purple) रंग का प्रकाश पुनः दिखने पर जस्ते के स्रावण का अन्त हो जाता है। स्रावण समाप्त होने पर नोकदार पाइप तथा कन्डेन्सर हटा कर साफ किये जाते हैं। रिटार्टों को खरोंच कर साफ किया जाता है तथा टूटे हुए रिटार्ट बदले जाते हैं। फर्नेस नया चार्ज ग्रहण करने के लिए तैयार की जाती है। पूरी क्रिया में २४ घंटे का समय लगता है।

जस्ते के धूम्र का द्रवीभवन (Condensation of zinc fumes)

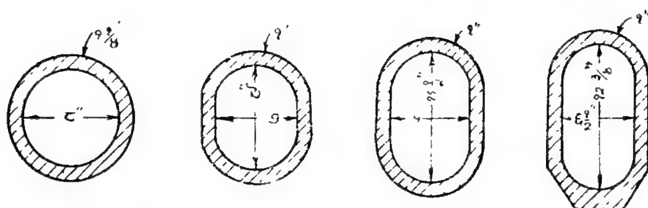
जस्ते के धूम्र को द्रव रूप में प्राप्त करना कठिन काम है। द्रवीभवन का तापमान ४१५° सें० और ५५०° सें० के बीच होना चाहिए। ४१५° सें० के नीचे वह सीधे जस्ते के कणों के रूप में जमता है। ये कण जस्ते के आक्साइड से आवृत्त हो जाते हैं। ५५०° सें० के ऊपर वह बिल्कुल द्रवीभूत नहीं होता।

यदि जस्ते का वाष्प अन्य धातुओं के संपर्क से बहुत पतला (Dilute) हो जाता है तो जस्ता द्रव रूप में न आकर धूम्र बन जाता है। इस धूम्र में ८५ प्रतिशत जस्ता, १२ प्रतिशत जस्ते का आक्साइड तथा शेष में अन्य पदार्थ (कैडमियम आक्साइड, सीसा आदि) रहते हैं। कुछ समय बाद यह धूम्र द्रवीभूत होता है। कण्डेन्सर में से द्रव जस्ता पूरे समय (२४ घंटे) में तीन बार नोकदार पाइप हटाकर निकाला जाता है। उसे कान्ती लोहे के पात्र में भरकर ऊपर से कोक या एन्थ्रेसाइट का चूर्ण छिड़क दिया जाता है जिससे आक्सीकरण न हो। बाद में सतह पर जमे मैल (Skimmings) को हटाकर जस्ता इंगटों के रूप में ढाला जाता है।

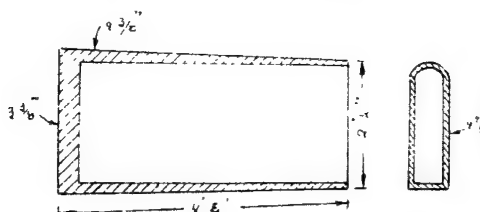
बचे हुए पदार्थ खनिज की किस्म के अनुरूप होते हैं। जिस खनिज में सीसा और चाँदी अधिक होती है उसमें सबकी सब चाँदी तथा अधिकांश सीसा अवशिष्ट (Residue) में रह जाता है।

रिटार्ट का निर्माण

उच्चकोटि की अग्निप्रतिरोधक मिट्टी तथा कोक को उचित अनुपात में मिलाकर रिटार्ट बनाया जाता है। यदि खनिज का विजातीय द्रव्य अम्लीय गुण वाला हो



बेल्जियन रिटार्ट बेल्गो-साइलेशियन रिटार्ट



साइलेशियन रिटार्ट

चित्र सं० ७५ जस्ते के रिटार्टों के आकार

तो रिटार्ट की बनावट में सिलिका भी मिला दिया जाता है जिससे उसकी अम्लता बढ़ जाती है। यदि विजातीय द्रव्य क्षारीय गुण वाला हो तो अलुमीनियम युक्त

अग्निप्रतिरोधक मिट्टी मिलाई जाती है। रिटार्ट की ताप संचालकता बढ़ाने के लिये कोक मिलाया जाता है।

पहिले रिटार्ट हाथ से बनाये जाते थे पर अब हाइड्रालिक यंत्र द्वारा बनाये जाते हैं क्योंकि ये हाथ के बने रिटार्टों से अच्छे होते हैं। अच्छे रिटार्ट ३०-४० बार काम देते हैं।

खड़े रिटार्ट

साधारणतः रोस्ट किया हुआ खनिज अबाध गति से स्रावित नहीं होता क्योंकि प्रति २४ घंटे बाद रिटार्टों को खोलकर नया चार्ज भरना पड़ता है। इसमें समय और श्रम नष्ट होता है। खड़े (Vertical) रिटार्टों का उपयोग कर स्रावण अबाधगति से चालू रखने का प्रयास किया गया है और उसमें सफलता भी मिली है।

स्रावण में जस्ते की हानि

खनिज में मौजूद जस्ते का ८५ से ९० प्रतिशत स्रावण द्वारा प्राप्त होता है। शेष नष्ट हो जाता है। यह हानि निम्नलिखित प्रधान कारणों से होती है :—

१—सबसे अधिक हानि रिटार्ट में उस जस्ते के कारण होती है जो लघ्वीकृत नहीं होता। असफल रोस्टिंग के कारण बचा हुआ गंधक जस्ते को अवरुद्ध कर कर लेता है। इस हानि को दूर करने के लिये खनिज की पूर्ण रोस्टिंग बहुत सावधानी पूर्वक होनी चाहिये।

२—रिटार्ट कुछ जस्ते को सोख लेता है। पुराना रिटार्ट अपने वजन का ७ प्रतिशत जस्ता सोख सकता है।

३—टूटे या चटखे रिटार्टों में से जस्ते का कुछ वाष्प बाहर निकल जाता है।

४—जस्ते के वाष्प का द्रवीभवन पूर्णतः नहीं होता। कुछ वाष्प (५ प्रतिशत तक) धूम्र के रूप में जमता है।

अशुद्ध जस्ता

जस्ते के स्रावण की प्रक्रिया में कुछ सीसा भी स्रावित हो जाता है। अधिक तापमान पर इसकी मात्रा अधिक होती है। अमेरिका में, जहाँ स्रावण का तापमान कम होता है, जस्ता अपेक्षाकृत शुद्धतर होता है और इंगट में ढालकर

बाजारों में भेज दिया जाता है परंतु योरोप में स्रावण का तापमान अधिक होने से २.५ से ३ प्रतिशत सीसा तथा ०.३ प्रतिशत लोहा जस्ते में मौजूद रहता है। बाजार में भेजने के पूर्व इन्हें अलग करना पड़ता है। जस्ते में आर्सेनिक और एंटीमनी के स्वल्पांश भी हो सकते हैं।

अशुद्ध जस्ते (स्पेल्टर) का परिशोधन

इस कार्य के लिये तीन पद्धतियाँ प्रचलित है: —

१—रिवर्बेरेट्री पद्धति। २—वैद्युत् पद्धति। ३—अशुद्ध जस्ते का पुनर्स्रावण।

रिवर्बेरेट्री पद्धति

इस पद्धति का सिद्धान्त यह है कि जब सीसे जस्ते का धातुसंकर, जिसमें जस्ता अधिक हो, गलाया जाता है तब ऐसा धातुसंकर बनकर जिसमें सीसा अधिक और जस्ता कम होता है फर्नेस के पेंदे में बैठ जाता है। उसके ऊपर द्रव जस्ता रहता है जिसमें सीसे की मात्रा केवल १ प्रतिशत तक होती है। चूंकि सीसा जस्ते की अपेक्षा मन्द गति से आक्सीकृत होता है और जस्ता ०.८ प्रतिशत सीसा घन विलयन के रूप में रोक रखता है इसलिये अन्ततः जस्ते में सीसे को मात्रा कम से कम ०.८ प्रतिशत बच रहती है। इस पद्धति में सीसा इससे कम नहीं किया जा सकता।

परिशोधक रिवर्बेरेट्री फर्नेस की लम्बाई १३ फुट और चौड़ाई ६ फुट होती है तथा एक बार में उसमें २० टन माल समाता है। चार्ज को गलाने में ४८ घंटे का समय लगता है। फर्नेस का वातावरण यथा संभव लघ्वीकर रखा जाता है अन्यथा जस्ते में अधिक सीसा घुल सकता है। सतह पर बनने वाला मैल हटा दिया जाता है। एक तिहाई द्रव जस्ता निकालकर ढाल दिया जाता है तथा तौल में उतना ही अशुद्ध जस्ता फर्नेस में छोड़ा जाता है। फर्नेस के पेंदे में जमा होनेवाले सीसा-जस्ता धातुसंकर में अधिकांश सीसा तथा ६ प्रतिशत जस्ता होता है।

पेंदे में एकत्र हुए सीसा जस्ता धातुसंकर को चाँदी निकालनेवाली पार्क्स पद्धति में खर्च किया जा सकता है अथवा तापमान बढ़ाकर जस्ते को आक्सीकृत कर उड़ा दिया जाता है। सीसा बच रहता है।

वैद्युत् परिशोधन

इस पद्धति द्वारा बहुत शुद्ध जस्ता तैयार होता है। इसमें अशुद्धियों का स्वल्पांश (Trace) भर रहता है। पर यह जस्ता मँहगा पड़ता है इसलिए वैद्युत् पद्धति द्वारा यह अधिक परिमाण में तैयार नहीं किया जाता।

अशुद्ध जस्ते का पुनर्स्रावण

यह उद्योग बहुत बढ़ चला है। इसके द्वारा ६६·६ प्रतिशत शुद्ध जस्ता तैयार होता है। जस्ते के इंगट साधारण स्रावण-फर्नेस के रिटार्टों में चार्ज किए जाते हैं। अंतर केवल यह रहता है कि इन रिटार्टों का झुकाव ऊपर (बंद छोर) की ओर होता है। तापमान जस्ते के क्वथनांक (९४०° सें०) से कुछ ही ऊपर रखा जाता है। कंडेंसर अपेक्षाकृत बड़े होते है क्योंकि जस्ते के वाष्प की मात्रा अधिक होती है। पुनर्स्रावण में होनेवाली जस्ते की हानि रोस्ट किए हुए खनिज के स्रावण से कम होती है।

जलीय धातुविज्ञान तथा वैद्युत् विश्लेषण

जलीय पद्धति की सहायता से जस्ते के निष्कर्षण की विधि ने जस्ते के धातुविज्ञान में नया युग ला दिया है। इसके द्वारा मिश्रित (Complex) खनिज काम में लाए जाते हैं। इस पद्धति से निम्नलिखित लाभ होते हैं।

१—इसमें मिश्रित खनिज, जिसमें ३०–४० प्रतिशत जस्ता हो, काम में लाया जा सकता है।

२—खनिज में विद्यमान सब धातुओं को प्राप्त किया जा सकता है।

३—कम परिश्रम तथा कम चतुर मजदूरों से काम चलता है।

४—जस्ते की किस्म उच्चकोटि की होती है।

इस पद्धति में कुछ दोष भी हैं :—

१—कार्बोनेट और सिलिकेट खनिजों में अधिक मात्रा में उपस्थित घुलनशील सिलिका के कारण इस पद्धति में बाधा पड़ती है।

२—प्रारंभिक पूँजी अधिक लगती है।

३—अधिक बिजली की आवश्यकता होती है।

इस पद्धति की रूप-रेखा—

१—प्रक्षालन के लिये खनिज को तैयार करना तथा रोस्ट करना।

२—रोस्ट किए हुए खनिज या कंसेंट्रेट (Concentrate) को उपयुक्त विधियों से तैयार करना जिससे जस्ते के शुद्ध लवण का घोल तैयार हो सके।

३—वैद्युत् विश्लेषण द्वारा शुद्ध जस्ता प्राप्त करना।

खनिज को तैयार करना

यदि खनिज स्फेलेराइट हो तो उसकी प्रारंभिक रोस्टिंग की जाती है जिससे ZnS (जो घोल में अघुलनशील है) घुलनशील ZnO तथा $ZnSO_4$ में परिवर्तित हो जाता है। $ZnSO_4$ वैद्युत् घोल में गंधकाम्ल की कमी पूरी करता है।

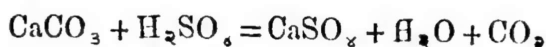
प्रारम्भिक रोस्टिंग के लिए 'वेज' (Wedge) फर्नेस का सुधरा हुआ रूप काम में लाया जाता है। इसमें एक के ऊपर एक सात हार्थ होते हैं। हार्थ का व्यास २१ फुट होता है तथा केन्द्र में ५ फुट व्यास वाला पोला शाफ्ट रहता है। खनिज ऊपर के हार्थ से नीचे के हार्थ में क्रमशः गिरता हुआ सबसे नीचे के हार्थ में पहुँचता है। फर्नेस के निम्नभाग में अग्नि स्थान रहता है। ऐसी फर्नेस प्रतिदिन ३०-३५ टन खनिज रोस्ट करती है। $ZnSO_4$ बनाते समय ध्यान रखना चाहिए कि वह अधिक परिमाण में न बन जाए अन्यथा वैद्युत् घोल में गन्धकाम्ल का अनुपात बढ़ जाता है।

रोस्टिंग में ज़िंक फेराइट ($ZnO\ Fe_2O_3$) नहीं बनने देना चाहिये क्योंकि यह गरम पतले (Dilute) गंधकाम्ल में अघुलनशील होता है। वैद्युत् पद्धति में जस्ते की हानि इसी ज़िंक फेराइट के कारण होती है। ज़िंक फेराइट बनना रोकने के लिये रोस्टिंग का तापमान पहिले ६००° सें० से नीचे रखना चाहिये जिससे सब लौह-आक्साइड पूर्णतः रोस्ट हो जाए। बाद में तापमान अधिक बढ़ाकर स्फेलेराइट को रोस्ट करना चाहिए। यदि आरंभ से ही तापमान अधिक रखा जाए तो दोनों साथ-साथ रोस्ट होते हैं और ज़िंक फेराइट बनने का अवसर मिलता है। खनिज में लोहे के अधिक अनुपात से तथा रोस्टिंग अधिक समय तक होने से भी ज़िंक फेराइट अधिक बनता है।

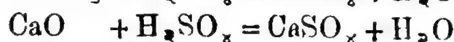
प्रक्षालन और शुद्धि (Leachnig and Purification)

रोस्ट किए हुए खनिज को 'पचूका पात्र' (Pachuka vats) में गंधकाम्ल द्वारा धोया जाता है। इन पात्रों का व्यास ८ से १० फुट तथा गहराई २० से ३० फुट होती है। २० से ३० पौंड प्रतिवर्ग इंच के दबाव पर वायु पात्र के अंदर भेजी जाती है जिससे संपूर्ण द्रव विलोडित होता रहता है और प्रक्षालन अच्छी तरह होता है।

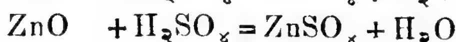
सब ZnO तथा $ZnSO_4$ घुल जाता है। कुछ अवांछित पदार्थ जैसे लोहा, अलूमिना, सिलिका, आर्सेनिक इत्यादि भी घुल जाते हैं। अतः इन्हें दूर करने के लिये घोल को शुद्ध करना पड़ता है। शुद्धि के लिये पहिले घोल को चूने के पत्थर, CaO या ZnO द्वारा तटस्थ (Neutralise) किया जाता है।



$$CaCO_3 + H_2SO_4 = CaSO_4 + H_2O + CO_2$$



$$CaO + H_2SO_4 = CaSO_4 + H_2O$$



$$ZnO + H_2SO_4 = ZnSO_4 + H_2O$$

इस तटस्थ घोल को बाद में तेज अम्ल द्वारा घोला जाता है।

आर्सेनिक तथा एंटीमनी अलग करने के लिये कैल्साइन को फेरस सल्फेट तथा मैंगेनीज़ डाइ आक्साइड के साथ घुलाया जाता है। वे फेरिक आर्सेनेट तथा एंटीमोनेट बनकर अलग हो जाते हैं। यदि बहुत शुद्ध जस्ता प्राप्त करना है तो अन्य अशुद्धियों को उपयुक्त विधियों से अलग कर देना चाहिये।

वैद्युत् विश्लेषण

उचित शुद्धिकरण पद्धतियों के पश्चात् प्राप्त घोल में अशुद्धियाँ केवल नाम मात्र को रह जाती हैं। यदि अशुद्धियाँ अधिक होती हैं तो वे भी जस्ते के साथ कैथोड पर जमा होने लगती हैं।

विश्लेषण पात्र (Electrolysis vat) लकड़ी या कांक्रीट का बना रहता है। लकड़ी के पात्र में अंदर की ओर रासायनिक सीसे की लाइनिंग रहती है तथा कांक्रीट के पात्र में 'सल्फरसैंड' (Sulphur sand cement) की लाइनिंग रहती है। यह पदार्थ तेजाब से खराब नहीं होता। साथ ही यह विद्युत् का अवरोधक भी है। एलेक्ट्रोड अलुमीनियम की चद्दर के बने रहते हैं। पात्रों को जमीन से शीशे की पट्टियों द्वारा अलग (Insulated) रखा जाता है।

आरंभ में संचित जस्ता स्पंज सदृश (Spongy) होता है क्योंकि घोल की अम्लता कम होती है। बाद में जब अम्ल का अनुपात बढ़ता है तब संचय अधिक एकरूप होता है।

वैद्युत् विश्लेषण के लिये ३.३ से ३.५ वोल्ट तथा २० से ३० एम्पियर प्रतिवर्ग फुट के हिसाब से बिजली लगती है। जस्ता कैथोड पर संचित होता है। वैद्युत् जस्ते को गलाकर इंगटों में ढाल कर बाजार में भेजा जाता है। गलाने के लिये रिवर्बेरेट्री फर्नेस काम में लाई जाती है।

प्रतिटन जस्ते के लिये ३२०० यूनिट बिजली खर्च होती है।

